उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

तुलनात्मक एवं भारतीय साहित्य

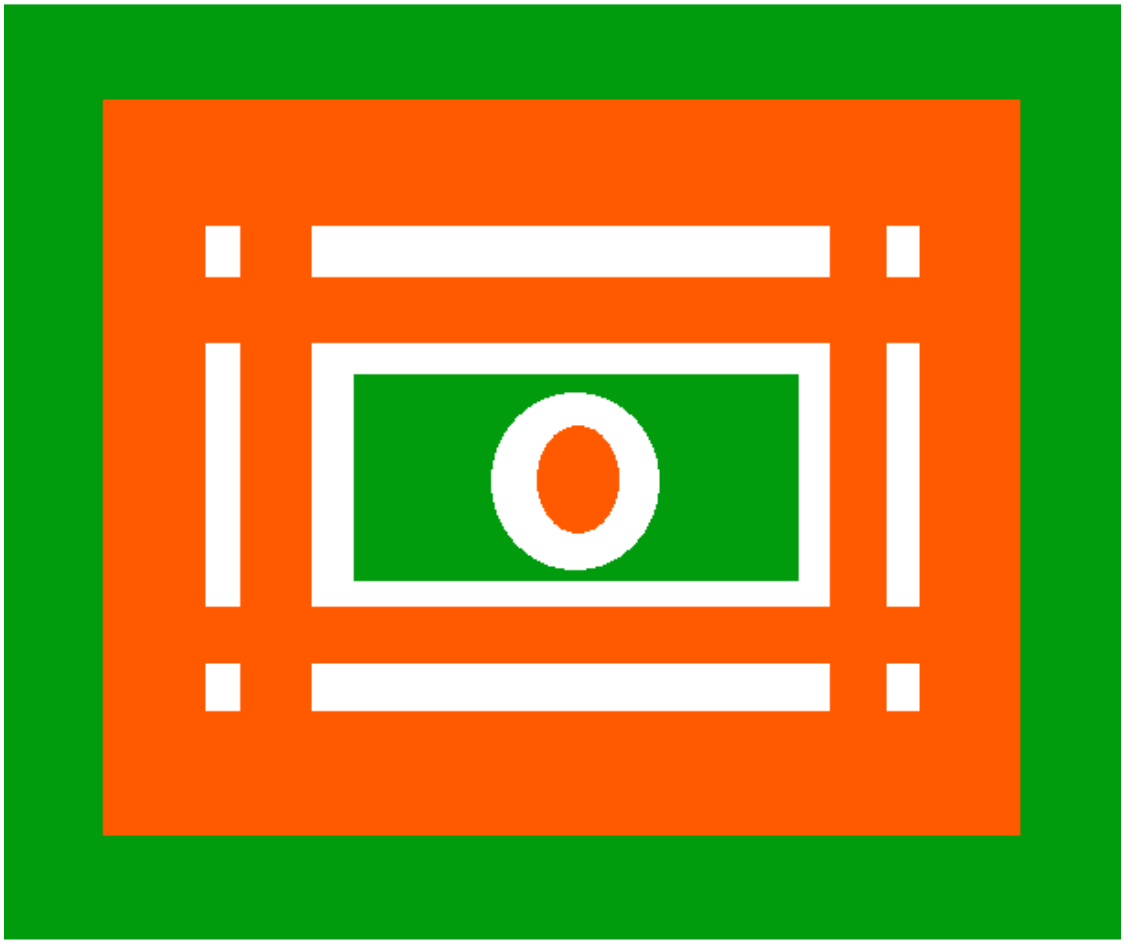

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एच0पी0 शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो0 सत्यकाम हिन्दी विभाग इग्नू, नई दिल्ली
प्रो.आर.सी.शर्मा हिन्दी विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय,अलीगढ़	
डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा0 राजेन्द्र कैड़ा एकेडेमिक एसोसिएट हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा0 राजेन्द्र कैड़ा एकेडेमिक एसोसिएट हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	1,2,3,4,5
डा. सुषमा देवी हिन्दी विभाग, विवेकवर्धिनी महाविद्यालय जामबाग हैदराबाद	6,7
डा0 हेमचन्द्र दुबे हिंदी विभाग,रा.स्ना.महाविद्यालय गरुड़ बागेश्वर, उत्तराखंड	8,9
डा0 नागेन्द्र प्रसाद ध्यानी उप-निदेशक, उत्तराखंड भाषा संस्थान देहरादून	10,11
डा0 राजेन्द्र सिंह टोकी अध्यक्ष हिन्दी विभाग ए.एस.कॉलेज खन्ना, पंजाब	12
डा.मीता शर्मा अध्यक्ष,हिन्दी विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा ,राजस्थान	13

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2014
सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
ISBN - 978-93-84632-74-8

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

तुलनात्मक एवं भारतीय साहित्य MAHL-204

खण्ड 1 – तुलनात्मक साहित्य	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 1 तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा	1-9
इकाई 2 तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियाँ	10-18
खण्ड 2 – भारतीय साहित्य की अवधारणा	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 3 भारतीय साहित्य की अवधारणा	19-26
इकाई 4 भारतीय साहित्य की व्यापकता	27-38
इकाई 5 भारतीय साहित्य का इतिहास	39-52
खण्ड 3 – भारतीय साहित्य : प्रायोगिक उपक्रम	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 6 तेलुगु साहित्य का इतिहास एवं परिचय (1)	53-88
इकाई 7 तेलुगु साहित्य का इतिहास एवं परिचय (2)	89-115
इकाई 8 कुमाऊँनी लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप	116-133
इकाई 9 कुमाऊँनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	134-151
इकाई 10 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप	152-166
इकाई 11 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएँ	167-181
इकाई 12 पंजाबी साहित्य का इतिहास एवं परिचय	182-208
इकाई 13 राजस्थानी साहित्य का इतिहास एवं परिचय	209-238

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

इकाई 1 तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 पाठ का उद्देश्य
1.3 तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा
1.3.1 तुलनात्मक साहित्य: परिभाषा
1.3.2 तुलनात्मक साहित्य: स्वरूप
1.4 तुलनात्मक साहित्य का इतिहास
1.5 तुलनात्मक साहित्य की विशेषता / महत्त्व
1.6 तुलनात्मक साहित्य: सांस्कृतिक कार्य
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

तुलनात्मक पद्धति साहित्य और अकादमिक जगत की बहुप्रचलित पद्धति है। तुलनात्मक पद्धति के कारण साहित्य के अंतर्जगत और साहित्य जगत दोनों का विस्तार होता है। तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा पर लिखते हुए डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी ने लिखा है, तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है। एक स्वतंत्र विद्याशाखा के रूप में विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इसे अध्ययन- अध्यापन के कार्य को आजकल विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। तुलनात्मक साहित्य का सर्वप्रथम प्रयोग मैथ्यम ऑर्नल्ड ने सन् 1848 में अपने एक पत्र में सबसे पहले किया था। वस्तुतः तुलनात्मक साहित्य में दो देश, दो भाषा या दो रचनाकारों की कृतियों को एक दूसरे के सापेक्ष रखकर देखाजाता है। तुलनात्मक पद्धति का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में एक दूसरे को रखकर नई अर्थवत्ता की तलाश करना होता है। इस ढंग से तुलनात्मक पद्धति साधन है, साध्य नहीं। हैनरी एच.एच. रेमार्क ने भी तुलनात्मक साहित्य की विशेष ताओं के स्पष्ट किया है। उनके अनुसार साहित्य की विशेष तत्त्वों को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार एकक राष्ट्रों की परिधि से परे दूसरे राष्ट्रों के साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन है तथा यह अध्ययन कला, इतिहास, समाज विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों का ज्ञान है। रेमार्क ने दो राष्ट्र के संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य की उपयोगिता निर्धारित की है। किन्तु यह एक राष्ट्र, दो भाषा या एक ही भाषा के दो कवियों/लेखकों पर भी लागू हो सकती है। व्यापक रूप से दो विधाओं की कृतियों के वर्गीकरण को भी इसमें समेट लिया जाता है।

तुलनात्मक साहित्य के इतिहास के संदर्भ में यदि हम बात करें तो एक अनुशासन के रूप में इसका विकास पश्चिम में, आधुनिक काल में हुआ। हाँलाकि यह साहित्यिक प्रवृत्ति प्राचीन काल से ही मिलनी शुरू हो जाती है।

1.2 पाठ का उद्देश्य

'तुलनात्मक एवं भारतीय साहित्य' संबंधी पाठ्य पुस्तक की यह प्रथम इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप जानेंगे कि-

- तुलनात्मक शब्द के मूल अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य पर विभिन्न विद्वानों के मतों को जान सकेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य के इतिहास का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य की विशेष ता से परिचित हो सकेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य और संस्कृति के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।

1.3 तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा

1.3.1 तुलनात्मक साहित्यः परिभाषा

ज्ञान के अन्य अनुशासनों के समान तुलनात्मक साहित्य की भी क्या कोई मुकम्मल परिभाषा दी जा सकती है? हर व्यक्ति, अध्येता अपनी दृष्टि को परिभाषा में जोड़ देता है, इसलिए हर परिभाषाएँ भिन्न-भिन्न स्वरूप को प्राप्त हो जाती है। यहाँ हम भारतीय और पाश्चात्य कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओं के संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य को समझने का प्रयास करेंगें। क्लाइव स्कॉट के अनुसार- '' तुलनात्मक साहित्य में विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्यों अथवा उनके संक्षिप्त घटकों की साहित्यिक तुलना होती है और यही उसकी आधार तत्व है। इस परिभाषा के अनुसार साहित्यिक प्रतिमानों के आधार पर साहित्य की तुलना की जाती है। रेमाक ने तुलनात्मकता को वह सांश्लेषिक दृष्टि बताया है जिसके द्वारा भौगोलिक एवं जातीय स्तर पर साहित्य का अनुसंधानात्मक विश्लेषण संभव हो पाता है। इस परिभाषा में दो विभिन्न संस्कृतियों के स्तर पर एक संस्कृति दूसरे से किस प्रकार भिन्न है और उसके कारण क्या हैं। इसी प्रकार एक परिभाषा प्रो. लेन कपूर की है। उनके अनुसार तुलनात्मक साहित्य, साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की पंक्ति अभिव्यक्ति है। यह परिभाषा भी अपर्याप्त व अधूरी है, क्योंकि इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि तुलना किस रूप में और किनके बीच ? साहित्य की तुलना के मापदण्ड क्या होंगे? यह भी स्पष्ट नहीं है। हाँलाकि एक परिभाषा में यह संभव भी नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से तुलनात्मक साहित्य के कुछ मापदण्ड है। जैसे एक ही भाषा में लिखित दो कवियों/लेखकों की तुलना , एक ही संस्कृति की दो भाषाओं के साहित्य की तुलना या दो संस्कृतियों की दो भाषाओं या साहित्य की तुलना ..... इसमें दूसरी व तीसरी स्थिति ही तुलनात्मक साहित्य के लिए उपयोगी है। डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी ने अपनी पुस्तक 'तुलनात्मक साहित्य' भारतीय परिप्रेक्ष' में उलरिच वाइनस्टाइन की पुस्तक का संदर्भ किया है, जिसमें तुलनात्मक साहित्य की परिभाषाओं को दो वर्गों में बाँटा गया है। (क) वर्ग में पॉल वा टिगहैम, ज्याँ-मारि कारे तथा मारिओस फ्रांस्वास गुईयार्द जैसे विद्वान हैं। इस वर्ग की परिभाषाओं के अनुसार तुलनात्मक साहित्य को सौन्दर्यमूलक प्रतिमानों के आधार पर नहीं बल्कि ऐतिहासिक अनुशासन के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। (ख) वर्ग में रेने वेलेक, रेमाक, ऑस्टिन वारेन तथा प्रावर जैसे विद्वान हैं । जिन्होंने तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को ऐतिहासिक अनुशासनों से इतर काव्यशास्त्रीय या सौन्दर्यशास्त्रीय प्रतिमानों के आधार पर देखने की पहल की है।

1.3.2 तुलनात्मक साहित्य: स्वरूप

तुलनात्मक साहित्य से संबंधि परिभाषाओं का आपे अध्ययन किया। परिभाषाओं की परम्परा के क्रम में आपने देखा कि तुलनात्मक साहित्य में विभिन्न भाषा एंव संस्कृति को ऐतिहासिक एवं साहित्यिक प्रतिमानों के आधार पर जाँचा जाता है और उस बहाने दो भाषा - संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलनात्मक साहित्य की निम्न स्थितियाँ प्रकट होती है।-

तुलनात्मक साहित्य

1. एक ही भाषा के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन
2. दो भाषा के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन(एक संस्कृति)
3. दो भाषा के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन (दो संस्कृति एक भाषा परिवार)
4. दो भाषा के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन (दो संस्कृति दो भाषा परिवार)

इसी प्रकार तुलनात्मक साहित्य की परिभाषाओं को दो वर्गो में रिक्त विभक्त किया गया है-

तुलनात्मक साहित्य

(क)	(ख)
ऐतिहासिक अनुशासन	सौन्दर्यशास्त्रीय अनुशासन
(पॉल वां टिगहैम, ज्याँ-मारि कारे,	(रेने वेलेक, रेमाक,
मारिओस फ्रांस्वास गुइयार्द)	ऑस्टिन वारेन, प्रावर)

तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा और स्वरूप पर भ्रम इस कारण भी है क्योंकि एक अनुशासन के रूप में यह अपेक्षाकृत नया है, और स्पष्ट रूप से इस पर कोई स्पष्ट राय नहीं बन पाई है। मोटे रूप में साहित्यिक बिन्दु, समस्या को वैज्ञानिक और विश्लेषणत्मक ढंग से विश्लेषित किया जाता है। रेविनाख ने तुलनात्मक साहित्य पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- विभिन्न साहित्यों के अन्यान्य प्रभाव से युक्त शोध ही तुलनात्मक साहित्य है। यह क्षेत्रीय भाषाओं से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय भाषा तक अपना स्वरूप ग्रहण कर चुका है। डॉ. इन्द्रनाथ चौथुरी ने तुलनात्मक साहित्य के स्वरूप पर विचार करते हुए इसके प्रमुख क्षेत्र निर्धारित किए हैं-

1. काव्यशास्त्र या साहित्य में काव्यशास्त्रीय सौन्दर्यमूलक मूल्यों का प्रयोग और उनका कलापरक विश्लेषण।
2. इसमें साहित्यिक आन्दोलनों का अध्ययचन एवं उनकी मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक एवं शैली-वैज्ञानिक प्रवृत्ति यों का अध्ययन .....।
3. साहित्य में अभिव्यक्त व्यक्तित्व या अर्मूत विचारो के विभिन्न रूपान्तरों की विभिन्न दृष्टियों से प्रयोग एवं विश्लेषण.....।
4. काव्य रूपों का अध्ययन
5. साहित्यिक सम्बन्धों का अध्ययन।

अभ्यास प्रश्न 1

क- सही / गलत में उत्तर दीजिए।

1. तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'कम्पैरटिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है।
2. तुलनात्मक साहित्य का सर्वप्रथम प्रयोग मैथ्यू ऑर्नल्ड ने किया।
3. तुलनात्मक साहित्य का मूल उद्देश्य दो रचनाकारों की तुलना करना है।
4. क्लाइव स्कॉट के अनुसार तुलनात्मक साहित्य में विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्यों अथवा उनके संक्षिप्त घटकों की तुलना होती है।

5. तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य' पुस्तक के लेखक इन्द्रनाथ चौधुरी है।

ख - टिप्पणी लिखिए।

1. तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा
2. तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र।

1.4 तुलनात्मक साहित्य का इतिहास

तुलनात्मक साहित्य के इतिहास के प्रश्न पर यह समझना उचित होगा कि सभी देशों में इसका विकास अलग-अलग समय तथा भिन्न-भिन्न परिस्थिति में हुआ है। यहाँ हम प्रमुख रूप से भारतीय साहित्य के संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य के इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा और विश्व साहित्य की अपधारणा का निकट का सम्बन्ध है। इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि गेटे के 'वर्ल्ड लिटरेचर' की परिकल्पना के बाद ही तुलनात्मक साहित्य और विश्व साहित्य में भेद है। रेमाक ने दोनों अनुशासनों का भेद स्पष्ट करते हुए लिखा है- तुलनात्मक साहित्य के लिए किसी भी साहित्यिक कृति, लेखक, प्रवृत्ति या थीम अथवा ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के साथ वास्तविक तुलना आवश्यक है मगर इसके विपरीत विश्व साहित्य के अंतर्गत शेक्सपीयर, बाल्जॉक, रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे लेखकों की कृतियों को शामिल कर लेते है। कहने का अर्थ यह है कि विश्व साहित्य और तुलनात्मक साहित्य में साम्यता होते हुए भी दोनो में पर्याप्त अन्तर है। हांलाकि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 1907 में तुलनात्मक साहित्य के लिए 'विश्व साहित्य' शब्द का ही प्रयोग किया था। उनके तर्क के अनुसार - प्रत्येक कृति को उसकी संपूर्ण इकाई में देखना चाहिए क्योंकि संपूर्ण इकाई या मनुष्य की शाश्वत सृजनशीलता की पहचान विश्व साहित्य के द्वारा ही हो सकती है।

जहाँ तक भारतीय तुलनात्मक साहित्य का प्रश्न है, उसक विकास 17वी-18वीं सदी में विशेष तौर पर हुआ। मैक्स मूलर व विलियम जोन्स जैसे विद्वानों ने भारतीय साहित्य का अनुवाद योरोपीय भाषाओं में किया, जिससे तुलनात्मक साहित्य की प्रवृत्ति को बल मिला। सन् 1753 में राबर्ट लाउथ ने 'ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑफ पोयट्री' में हिब्रू कविता के साथ यूनानी साहित्य की प्रवृत्ति को बल मिला। 19 वीं शताब्दी तक तुलनात्मक साहित्य की प्रवृत्ति को बल मिलने लगा था। माइकल मधुसूदन दत्त ने वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, होमर, वर्जिल, दांते, टेसो, मिल्टन.... जैसे साहित्यकारों को एक -दूसरे के समानान्तर रख कर देखा है। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि यूरोपीय नाटक यथार्थ , उदात्त आवेग तथा वीरता को लेकर चलते हैं तो भारतीय नाटक प्रेम और कोमलता लिए हुए हैं.....। यह अपने ढंग का पहला भारतीय प्रयास था। हांलाकि माइकेल ने इसे कोई सैद्धान्तिक स्वरूप नहीं प्रदान किया, लेकिन परम्परा की दृष्टि से उन्होंने एक प्रवर्तन अवश्य किया है। इसी क्रम में 1773 ई. में बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 'शकुंतला , मिरांडा तथा डेसडोमना' शीर्षक एक निबंध लिखा। बंकिम ने एक ओर जहाँ

शेक्सपियर व कालिदास की तुलना की वहीं दूसरी ओर वायरन, शैली की कविताओं की तुलना वैदिक गीतों से.....। बंकिमचन्द्र चटर्जी ने इसी क्रम में भवभूति और शेक्सपियर की तथा कुमारसंभव तथा पैराडाइज लॉस्ट की तुलना की। इसी क्रम में आगे चलकर वारेन हैस्टिंग्स ने गीता व ईसाई मुक्ति भावना की तुलना की। उसने गीता व इलियड , ओडेसी तथा पैराडाइज लॉस्ट की भी तुलना की..... इसी संदर्भ में राबर्ट काल्डवेल तथा जे.बीम्स ने पुस्तक लिखकर इस संदर्भ को व्यवस्थित करने का कार्य किया। 19वीं शताब्दी के प्रमुख कार्यों को हम इस प्रकार देख सकते हैं-

- चार्ल्स ई. ग्रोवर - 'द फोक सौंग्स ऑफ सदर्न इंडिया (1871) तमिल साहित्य के साथ कन्नड़, तेलगु, मलयालम तथा कूर्ग भाषाओं के गीतों का तुलनात्मक अध्ययन।
- जी0 यू0 पोप कुरल के अनुवाद - तमिल कविता व यूनानी कविता का अंतर
- प्रियरंजन सेन - 'इन्फ्लूएंस आफ वेस्टर्न लिटरेचर इन द डेवलपमेंट ऑफ बेंगाली नॉवेल (1932)
- आलब्रेस बेवर - 'द हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर (1852) - संस्कृत नाटक /यूनानी नाटक की तुलना
- मैक्समूलर - 'ए हिस्ट्री ऑफ एन्शेंट संस्कृत लिटरेचर' (1859) - संस्कृत/युनानी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
- आलबर्ट स्वाइट्सर - 'इंडियन थॉट एंड इट्स डेवलपमेंट'- भारतीय आर्य/ईरानी-यूरोपीय संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन
- ए0बी.कीथ -'द संस्कृत ड्रामा' (1924) - कालिदास व संस्कृत नाटकारों की तुलना यूरोपीय नाटक एवं नाटककारों से

1.5 तुलनात्मक साहित्य की विशेषता/महत्त्व

तुलनात्मक साहित्य के महत्त्व को आधुनिक युग में सभी देशों में स्वीकार कर लिया गया है। क्योंकि तुलनात्मक साहित्य आधुनिक सभ्यता का प्रमुख विमर्श बन गया है। तुलनात्मक साहित्य या तुलनात्मक पद्धति आज की एक प्रमुख साहित्यिक 'पद्धति है, जिसके माध्यम से दो भाषा- संस्कृति की अंतर्तिहित विशेषाताओं को एक-दूसरे की सापेक्षता में रखकर विश्लेषित किया जाता है। इस प्रकार इस पद्धति के माध्यम से साहित्यिक कृतियों को परखने के सूत्र तलाशे जाते हैं। तुलनात्मक साहित्य की विशेषाता से पूर्व हमें यह समझना भी आवश्यक है कि तुलनात्मक साहित्य के लेखक के लिए अनिवार्य धर्म क्या है? आजकल व्यावसायीकरण के दबाब में प्रायः लेखक तुलनात्मक आलोचना में प्रवृत्त हो जाते हैं.....इस प्रकार से यह तुलनात्मक साहित्य की गंभीरता को देखते हुए बहुत हल्का प्रयास ही का जा सकता है। तुलना

करने के लिए लेखक को केवल दो भाषा ही आनी अनिवार्य नहीं है, वरन् उन भाषाओं के व्याकरण, अर्थ संस्कार व उस क्षेत्र की संस्कृति को जानना भी आवश्यक है।

तुलनात्मक साहित्य का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। राजनीतिक विस्तार के लिये अनुवाद कार्य को छोड़ दिया जाये तो भी तुनात्मक साहित्य का महत्त्व कई दृष्टियों से महत्त्व पूर्ण है। तुलनात्मक साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य, साहित्य के विस्तार की दृष्टि से है। एक साहित्य एक विशेष प्रकार की ऊर्जा व लोकरंग से निर्मित होता है। दूसरे देश के साहित्य का परिवेश उस पर विचारात्मक एवं संवेदनागत प्रभाव डालता है..... इस ढंग से तुलनात्मक साहित्य का प्राथमिक कार्य साहित्यिक विस्तार का परिवेश निर्मित करना है। तुलनात्मक साहित्य के माध्यम से साहित्यिक प्रतिमानों के विस्तार को गति मिलती है। आज हम यूनानी साहित्य व अरस्तु के नाट्य विवेचन के बाद नाटक की विशेषताओं के नये प्रतिमान आ चुके हैं। साहित्य का एक महत्त्व पूर्ण कार्य चूँकि सम्यता का प्रसार करना है, तो तुलनात्मक साहित्य उसमें हमारी सहायता करता है। सभ्यता विस्तार के बाद तुलनात्मक साहित्य का सर्वाधिक महत्पूर्ण कार्य सांस्कृतिक विस्तार करना है। दो भाषा, दो परिवेश, दो प्रकार का साहित्य अपने संस्कृति में वैविध्य लिये हुए होते हैं, अतः दोनों को उनकी सापेक्षता में ग्रहण कर एक दूसरे को समझने की दृष्टि का विस्तार किया जाता है।

1.6 तुलनात्मक कार्य : सांस्कृतिक कर्म

तुलनात्मक साहित्य के महत्त्व व लोकप्रियता का सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण कारण मनुष्य के सांस्कृतिक विस्तार की आकांक्षा है। दिन-प्रतिदिन हमारा भौतिक विस्तार होता जा रहा है..... मनुष्य -मनुष्य के निकट आता जा रहा है.... लेकिन क्रमश: सांस्कृतिक अवमूल्यन का प्रश्न भी तीव्र होता जा रहा है। सभ्यता के प्रसार ने सांस्कृतिक संकट को नये सिरे से खडा कर दिया है, फलतः सांस्कृतिक समृद्धि व विस्तार के लिए सांस्कृतिक कर्म के रूप में तुलनात्मक साहित्य की महत्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. तुलनात्मक व विश्वसाहित्य में .....ने भेद किया है। (रेमाक/गेटे/मैक्समूलर)
2. रवीन्द्रनाथ टैगौर ने .....ई. में विश्व साहित्य शब्द का प्रयोग किया। (1910/1907/1905)।
3. 'ऑक्फोर्ड लेक्चर्स ऑफ पोयट्री' लेखक .....हैं। (राबर्ट लाउथ/गेटे मैक्षमूलर)
4. भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम ..... ने तलुनात्मक साहित्य से संबंधित (बंकिमचन्द्र/रवीन्द्रनाथ/ प्रेमचन्द)।
5. 'द फोक सौंग्स ऑफ सदर्न ईडिया' के लेखक .....है। (प्रियरंजन सेन/चार्ल्स ई. ग्रोवर/गेटे)।

1.7 सारांश

यह प्रथम इकाई - तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा पर केन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन से अपने जाना कि -

- तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के कम्पेरेटिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है।
- तुलनात्मक साहित्य पद का सबसे पहला प्रयोग मैथ्यू ऑर्नल्ड ने सन् 1848 में लिखे एक पत्र में किया था।
- तुलनात्मक पद्धति का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में दो भिन्न भाषाओं की कृतियों को रखकर नई अर्थवत्ता की तलाश करना होता है।
- तुलनात्मक साहित्य के कई क्षेत्र हैं, जैसे एक भाषा के अंतर्गत, दो भाषा परिवार के अंतर्गत दो भाषा एवं दो भाषा परिवार के अंतर्गत दो भाषाओं का अध्ययन।
- तुलनात्मक साहित्य एवं विश्व साहित्य का निकट का सम्बन्ध है। विश्व साहित्य पद का सर्वप्रथम प्रयोग गेटे ने किया था।

1.8 शब्दावली

- कम्पैरेटिव लिटरेचर - तुलनात्मक साहित्य का अंग्रजी पर्याय।
- अनुशासन - व्यवस्थित तरीका, विशेष प्रकार की व्यवस्था।
- मुक़म्मल - पूरी, पूर्ण
- घटक - अवयव, तत्व
- प्रतिमान - पैमान, आदर्श
- सांश्लेषिक दृष्टि - विश्लेश णात्मक दृष्टि, जो परस्पर तुलनात्मक हो।
- भाषा परिवरि - भाषा वैज्ञानिक तत्वों के आधार पर कई भाषाओं का एक समूह।
- भाषा परिवरि - कला एवं साहित्य क सौन्दर्य की वृद्धि के कारणों की खोज करने वाला शास्त्र।
- काव्यशास्त्र - साहित्य का व्याकरण, अनुशासन
- वर्ल्ड लिटरेचर - विश्व साहित्य।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(क) 1. सत्य

3. सत्य

4. असत्य
5. सत्य
6. सत्य

अभ्यास प्रश्न 2

1. रेमाक
2. 1907
3. राबर्ट लाउथ
4. बंकिमचन्द्र
5. चार्ल्स ई. ग्रोवर

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिपेक्ष्य-चौधुरी, इन्द्रनाथ, वाणी प्रकाशन,द्वितीय संस्करण 2010
2. तुलनात्मक अध्ययन (भारतीय भाषाएँ और साहित्य) - (सं) राजूरकर, भ.ह, बोरा, राजमल

1.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ - (सं) राजूरकर, भ.ह. एवं बोरा, राजमल, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2013

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा पर निबंध लिखिए।
2. तुलनात्मक साहित्य के इतिहास की रूपरेखा का वर्णन कीजिए।

इकाई 2 तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियां

इकाई की रूप रेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियाँ
2.3.1 तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया
2.3.2 सामग्री विश्लेषण प्रक्रिया
2.4 तुलनात्मक अध्ययन एवं भारतीय साहित्य
2.5 तुलनात्मक अध्ययन और अनुवाद का प्रश्न
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई 'तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा' का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आपने तुलनात्मक साहित्य की पृष्ठभूमि एवं अवधारणा को समझ लिया है। इस इकाई में हम तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियाँ एवं सामग्री विश्लेषण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करेंगे।

तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियों में तुलना करने की पद्धति व प्रक्रिया का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन पद्धति को आज गंभीरता से लिया जाने लगा है, इसे अनुसंधान के समकक्ष रखकर देखने की भी परिपाटी प्रचलित होती जा रही है। एक स्वतंत्र आलोचना प्रविधि के रूप में भी इसका विस्तार हुआ है। फलतः तुलनात्मक पद्धति के कई 'स्कूल' प्रचलित हो गये हैं। जर्मन, फ्रांसीसी, अमेरिकी..... इत्यादि। अतः तुलनात्मक पद्धति ने वैश्विक स्वरूप ग्रहण कर लिया है। वैश्विक स्वरूप के ग्रहण के प्रश्न के संदर्भ में ही तुलनात्मक साहित्य व अनुवाद का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। भारत जैसे बहुभाषी देश में जहाँ अलग-अलग भाषा परिवार की भाषाओं का अस्तित्व है, वहाँ भी अनुवाद कार्य का महत्त्व है, और वैश्विक परिदृश्य में इसकी उपयोगिता से तो हम परिचित ही है।

2.2 पाठ का उद्देश्य

एम0ए0एच0एल0-204 पाठ्य पुस्तक की यह दूसरी इकाई है। इस इकाई में आप तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियाँ के बारे में अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जानेंगे कि-

- प्रमुख तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियाँ कौन सी है, इसको जान सकेंगें।
- तुलनात्मक आलोचना प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- तुलनात्मक अध्ययन प्रक्रिया के माध्यम से सामग्री विश्लेषण को समझ सकेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य के सम्प्रदाय के बारे में जानेंगे।
- तुलनात्मक अध्ययन में अनुवाद की भूमिका को समझ सकेंगे।

2.3 तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियाँ

2.3.1 तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया

तुलनात्मक अध्ययन के संदर्भ में भारी भ्रम यह है कि इसकी कोई पद्धति नहीं है। किसी भाषा दूसरी भाषा की कृतियों की तुलना कर देने मात्र से ही तुलनात्मक साहित्य का कार्य पूरा हो जाता है। लेकिन क्या वाकई ऐसा है? जिस प्रकार लेविस ने आलोचना के लिए प्रविधि -भरी (सिस्टेमिक) सुविचारित श्रृंखला व क्रम अनिवार्य बताया था। क्योंकि प्रविधि के अभाव में साहित्य अराजकता का केन्द्र बन जाता है, क्योंकि प्रविधि जहाँ एक ओर विचार व रचना को अनुशासित करती है, वहीं दूसरी आरे उसे दिशा भी देती है। क्या पद्धति व साहित्य का इतना अनिवार्य सम्बन्ध होता है? साहित्य लिखने के पश्चात् हम उसे विशेष क्रम में व्यवस्थित कर देते

हैं, ऐसा आमतौर पर समझा जाता है, लेकिन साहित्य लेखन से पूर्व क्या लेखक के मस्तिष्क में विचार क्रम सुव्यवस्थित नहीं होते ? निश्चित तौर पर व्यवस्था पहले आती है और लेखन बाद में होता है। यह तो हुई लेखन की प्रक्रिया से ज्यादा व्यवस्था की माँग करती है। यहाँ हम तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करेंगे।

तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया का प्रथम चरण रचना विषयक चयन/ आलोच्य विषय (या कृति) है। किसी कृति को तुलनात्मक स्वरूप के चयन में भी आलोचक की दृष्टि ही काम करती है। आलोच्य कृति क्यों महत्त्व पूर्ण है? इसे लेखक को स्पष्ट करना ही पड़ता है। और उससे भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि लेखक ने उसका चयन क्यों किया है? किसी भी कृति का चयन लेखक की प्रतिभा पर प्रश्न चिह्न लगा देता है। लेखक को सर्वप्रथम चयनित रचना के महत्त्व और उसके चुने जाने के कारणों का औचित्य सिद्ध करना पड़ता है। फिर इस प्रक्रिया में एक नहीं दो रचनाएँ होती है। प्रथम रचना का दूसरी रचना से सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित हो रहा है या नहीं हो पा रहा है ? यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। विषय चयन के नियम के अंतर्गत यह तथ्य भी है कि ध्यान रखने योग्य है कि गद्य और पद्य की रचनाओं का तुलना करना उचित नहीं है, क्योंकि दोनों विधाओं की रचनर प्रक्रिया में बहुत अन्तर है, दोनों दो अनुशासन हैं। तुलनात्मक अध्ययन प्रक्रिया का दूसरा चरण होता है आलोच्य कृति का पाठ। पूर्ण के सयम में लेखक केंद्र में हुआ करना था, आज उसका स्थान पाठक ने ग्रहण कर लिया है। पूर्व की अपेक्षा आज पाठ लेखक से स्वतंत्र हो चुका है..... इसलिए पाठ की अनन्त संभावनाएँ होती है। किसी कृति का पाठ कैसे किया जाये, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। पाठक भी कई प्रकार के होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ (संपादक भ0ह0 राजूरकर एवं राजमल बोरा) में पाठकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है-

1. असाहित्यिक
2. गैर-साहित्यिक
3. साहित्यिक

1- असाहित्यिक पाठक वे होते हैं जो रचना का पाठ करते समय साहित्यिक मर्म की चिन्ता नहीं करते। ऐसे पाठक रचना में छिपे घटना क्रम में ही ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं।

2- गैर-साहित्यिक पाठक से तात्पर्य ऐसे पाठक से है, जो रचना/ पाठ में अपनी रुचि के अनुसार तथ्यों की खोज करता हैं । ऐसे पाठकों में भी उच्च साहित्यिक बोध का अभाव होता है।

3- साहित्यिक पाठक का तात्पर्य ऐसे पाठकों से है जो पूरी रचना के आधार पर सम्पूर्णता में किसी पाठ का मूल्य निर्धारित करते हैं। ऐसे पाठकों का ध्यान पाठ के हर अंश पर होता है।

तुलनात्मक आलोचना प्रविधि का तीसरा चरण-तथ्य चयन होता है। किसी रचना में ढेरों तथ्य होते हैं, जो रचना को व्यवस्थित रूप प्रदान करने में अपनी भूमिका निभाते हैं । इस

प्रक्रिया में एक खास एप्रोच/ दृष्टि से आलोचक उस रचना को देखता है। वह एप्रोच विचारधारा का भी हो सकता है और किसी खास तथ्य का चुनाव व उसका विस्तार भी। तथ्य चयन का भी वस्तुतिष्ठ आधार होता है, लेकिन प्रायः लेखक आत्मनिष्ठ ढंग से ही विश्लेषण करते हैं। साहित्य की आलोचना प्रक्रिया में अक्सर ही लेखकों की तुलना के संदर्भ में आलोचक एकनिष्ठ दृष्टि के शिकार हो ही जाते हैं। कबीर-तुलसी, तुलसी-सूर, तुलसी-जायसी कालिदास-भवभूति, वाल्मीकि-व्यास, प्रसाद-निराला, पंत-निराला, मीरा-महादेवी, अज्ञेय-मुक्तिबोध, वडर्सवर्थ-कॉलरिज- जैसे ढेरों उदाहरण हैं , जब दो रचनाकरों की तुलना के बहाने एक को श्रेष्ठ सिद्ध करना ही आलोचक का उद्देश्य रहा है।

तुलनात्मक आलोचना प्रविधि का चतुर्थ चरण तथ्यों के विश्लेषण से जुड़ा हुआ है। तथ्य का स्वरूप कैसा है? तथ्य के घटक-इतिहास और दर्शन की दृष्टि से विश्लेषण किया जाता है। इतिहास और दर्शन में रचना के सारे संदर्भ को समेट लिया जाता है। इतिहास ने अतर्गत सारे तथ्य (चाहै वह राजनीति, चाहै व समाजशास्त्र या पत्रकारिता या अन्य किसी विधा हो) आ जाते हैं व दर्शन के अंतर्गत सारे विचर व वाद (मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषण, उत्तर-आुधुनिकता, आधुनिकता, संरचनावाद या प्राचीन दर्शन सभी आ जाते हैं)। तुलनात्मक आलोचना प्रविधि का पंचम चरण/प्रक्रिया है- विषय वस्तु एवं शिल्प के स्तर पर आलोच्य रचनाओं की संगति की विचारणा एवं उनका मूल्यांकन करना। विषयवस्तु का सम्बन्ध उस देशकाल-परिस्थिति से अनिवार्य सूक्ष्म रूप से जुड़ा हुआ होता है। साहित्यिक रचना जितना कहती है, उतना ही अनकहा रह जाता है.....। इस दृष्टि से रचना के रूप के माध्यम से भी आलोचक युग-समाज के परिवर्तन को पकड़ने का प्रयास करता है। भारतीय काव्यशास्त्र की सैद्धान्तिक व शिल्पगत बारीकियों को लेकर ही लम्बी चर्चा देखने को मिलती है।

2.3.2 सामग्री विश्लेषण प्रक्रिया

पीछे हमने तुलनात्मक अध्ययन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का अध्ययन किया। हमने अध्ययन किया कि तुलनात्मक अध्ययन प्रक्रिया में पाठ चयन, तथ्य चयन एवं विशिष्ट एप्रोच इत्यादि तुलनात्मक अध्ययन के विभिन्न चरण हैं। अभी हम तुलनात्मक अध्ययन प्रक्रिया या उसकी प्रविधि का अध्ययन करेंगे। तुलनात्मक साहित्य की कोई सुनिश्चित पद्धति है या नहीं, इस बात को लेकर भी अध्येताओं में मतैक्य नहीं है। रेने वेलेक जैसे अध्येता जब यह कहते हैं कि तुलनात्मक साहित्य की कोई निश्चित कार्यपद्धति नहीं है । उनका तर्क है कि साहित्य के अन्दर तुलनात्मक तत्व सक्रिय रहता ही है, उसकी अलग प्रविधि का प्रश्न उचित नहीं है। क्रमशः तुलनात्मक साहित्य की तीन दृष्टि या परिप्रेक्ष्य माने गये हैं-

1. फ्रांसीसी-जर्मन स्कूल का अंतर्राष्ट्रीयता के आश्रय से साहित्य का कालक्रमिक अध्ययन- साहित्यिक विकासवाद, ऐतिहासिक सापेक्षतावाद तथा ऐतिहासिक परिस्थिति।
2. अमरीकी स्कूल की रूपवादी दृष्टि- काव्यशास्त्रीय सौन्दर्यात्मक, कलापरक तथा विश्लेशणात्मक अंतदृष्टि

3. समाजशास्त्रीय - संस्कृतिपरक यथार्थवादी दृष्टि -

इन तीन परिप्रेक्ष्यों को दो नियमों के अंतर्गत समेटा गया है-

1- साहित्येतिहास का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ

2 - तुलनात्मक आलोचना।

1 - साहित्येतिहास के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ से आशय दो रचनाओं या घटनाओं के द्वि-आधार संबंध को स्थापित करने से माना गया है। इसका अर्थ यह है कि कलापरक दृष्टि को समाजशास्त्र, संस्कृति एवं इतिहास के संदर्भ में दो साहित्यों के प्रभाव-परस्पर एवं उनके सादृश्य आधारों को स्पष्ट करना।

2 - तुलनात्मक आलोचक के लिए तुलना एक सचेत और मूलभूत पद्धति है।

तुलनात्मक पद्धति के आश्रय से एक से अधिक साहित्यों की तुलना करना तुलनात्मक अध्ययन है। इस प्रक्रिया में दो साहित्यों के सादृश्य संबंध, परम्परा तथा उनके प्रभावों के सूत्रों की खोज की जाती है। अब हम तुलनात्मक साहित्य की कुछ प्रमुख प्रविधियों का अध्ययन करेंगें।

सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि-

यह प्रविधि अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ के अंतर्गत आती है। अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ के आश्रय से दो कृतियों का साहित्यगत शैली, संरचना, मूड या विचार का सादृश्य संबंधात्मक अध्ययन होता है। इस प्रकार का अध्ययन सादृश्य या वैशम्यमूलक दोनों हो सकता है। किसी भी दो बेमेल विषयवस्तु की सादृश्यमूलक अध्ययन पद्धति को पॉलीजेनेटिक पद्धति कहते हैं। सादृश्यमूलक पद्धति की सहायता से आलोचक विभिन्न समाज तथा परिस्थिति में अभिव्यक्त होने वाले साहित्य का विवेचन करता है और भिन्न-भिन्न प्रश्नों की तलाश करता है। विभिन्न अभिव्यक्तियों की समानता का कारण क्या है? तथा वे कैसे एक-दूसरे से भिन्न हैं, इसका उत्तर तुलनात्मक आलोचना के सादृश्य-संबंधात्मक प्रविधि में खोजा जाता है।

तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा प्रविधि -

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद के अंतर्गत परम्परा अध्ययन प्रविधि में भी दो कृतियों का सादृश्यमूलक अध्ययन होता है। इस प्रविधि की मान्यता के मूल में यह तथ्य है कि - रचना, एक बड़े वर्ग का अंश होती है। और जो समान ऐतिहासिक, कालानुक्रमिक तथा रूपात्मक बंधनों से अनुस्युत होती है। इस प्रविधि में खास तौर से भाषा तथा साहित्य में प्रतिफलित राष्ट्रीय चेतना का अध्ययन किया जाता है, या उनके संदर्भ को भी अनिवार्य रूप से शामिल कर लिया जाता है। इस प्रविधि के अध्ययन के संदर्भ में भी दो प्रस्ताव हैं। एक, प्रस्ताव यह है कि अध्ययन प्रविधि में पूरी प्रस्ताव है। एक, प्रस्ताव यह है कि अध्ययन प्रविधि में पूरी परम्परा के संदर्भ में अध्ययन किया जाये, जबकि प्रावर जैसे अध्येता इसके विपरीत यह प्रस्ताव रखते हैं कि अध्ययन के क्षेत्र को सीमित करके किसी एक ऐतिहासिक काल अथवा ऐतिहासिक दृष्टि से उभरते हुए किसी एक काव्यरूप का दो साहित्यों के संदर्भ में अध्ययन किय जाता है। परम्परा अध्ययन की प्रणाली में राष्ट्रीयता एवं अंतर्राष्ट्रीयता एंव अंतर्राष्ट्रीय परम्पराएँ निकट आ जाती है।

प्रभाव प्रविधि-

रूथवेन में प्रभाव प्रविधि के दो धरातल बताये हैं एक जब शक्तिशाली व्यक्तित्व का प्रभाव, अध्येता को अपनी धारा में बहा ले जाता है और दूसरा धरातल यह होता है जब उस शक्तिशाली व्यक्तित्व के प्रभाव से अध्येता अपनी दृष्टि को और परिष्कृत व सम्पन्न करता चलता है। साइमन जियून ने प्रभाव को 'अनुकरण' न मानकर 'प्रेरणा' मानने से प्रभाव-अध्ययन के विरोध में की गई आलोचना माना है। तुलनात्मक साहित्याध्ययन में प्रभाव-सूत्रों का अध्ययन ही उसकी केन्द्रीय पद्धति है। क्लांद गुइएँ ने इसीलिए प्रभाव सूत्रों के अध्ययन को मनोवैज्ञानिक प्रतिभास कहा है। इसे स्पष्ट करते हुए गुइएँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यँ प्रभाव की बात करता है। प्रत्यक्ष प्रभाव में आलोच्य लेखक और अप्रत्यक्ष प्रभाव में सृजनात्मक परम्परा को शामिल किया जा सकता है।

अध्ययन की स्वीकृति तथा संचारण प्रविधि-

उलरिच वाइस्टाइन ने इस प्रविधि को स्पष्ट करते हुए लिखा है- प्रभावसूत्रों का अध्ययन मूलतः परिपूर्ण दो साहित्यिक कृतियों को लेकर किया जाता है किन्तु स्वीकृति अध्ययन का क्षेत्र काफी बड़ा होता है। इसमें कृतियों के पारस्परिक संबंधों से लेकर उनके आस-पास की परिस्थितियों, लेखक, पाठक, समीक्षक, प्रकाशक तथा प्रतिवेशी परिवेश सब कुछ अध्ययन के विषय के अंतर्गत आता है। इस तरह स्वीकृति अध्ययन साहित्यिक समाजशास्त्र अथवा मनोविज्ञान की दिशा में विशेष रूप से अग्रसर होता है। उदाहरणस्वरूप हम समझ सकते हैं कि द्विवेदी कालीन नैतिकता केवल रीतिकाल के प्रति प्रतिक्रिया नहीं थी। बल्कि सम्पूर्ण विक्टोरियन युग के साहित्य की स्वीकृति भी थी। प्रावर ने इसे 'संचारण अध्ययन' कहा है। प्रावर ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है- ''संचारण संस्थाओं एवं रूपों के सदृश है जिसके माध्यम से विचार, सूचना तथा अभिवृत्तियां स्थानांतरित अथवा स्वीकृत होती है।''

तुलनात्मक अध्ययन की सौभाग्य प्रविधि-

अध्ययन की सौभाग्य प्रविधि क्या है? इसे समझाते हुए इन्द्रनाथ चौधरी ने लिखा है- ''स्वीकृति अध्ययन के अंतर्गत संचारण विश्लेषण के अतिरिक्त किसी एक लेखक या कृति का 'सौभाग्य' विश्लेषण भी किया जाता है। किसी एक विदेशी लेखक या कृति की दूसरे देश में किन्ही कारणों से, नोबेल पुरस्कार मिलने से या आकस्मिक मृत्यु होने से या किसी सत्ता का विरोध करने से ख्याति के बढ़ जाने पर वह कैसे दूसरे लेखकों या साहित्यिक परिवेश को प्रभावित करता है इसका अध्ययन ही सौभाग्य अध्ययन है।'' वाल्टर मुथ्ग ने 'स्टडीज इन द ट्रेजिक हिस्ट्री ऑफ लिटरेचर' में जर्मन साहित्य को प्रभावित करने की प्रक्रिया में 'हैमलेट' का अध्ययन किया है। वाँ टिगहैम, आंद्र मोरिजे तथा गुस्तव रूद्रलर ने स्वीकृति अध्ययन का विवेचन किया है।

संबंधात्मक द्वन्द्वात्मक प्रविधि

डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी ने संबंधात्मक इन्द्वात्मक प्रविधि को स्पष्ट करते हुए लिखा है- ''अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद साहित्य को मानवीय ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के साथ भी जोड़त है जैसे दर्शन, इतिहास, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, धर्म, समाजशास्त्र तथा ललित कलाएँ।''

तुलनात्मक आलोचना की प्रविधि

तुलनात्मक प्रविधि में आलोचक सुव्यवस्थित ढंग से तुलनात्मक आलोचना के अंग रूप में तुलना के तकनीकों का प्रसार करता है और व्यक्तिगत लेखकों के द्वारा किए गए प्रयासों का अध्ययन आलोचना के मूल अंग दें। इस प्रविधि में कालक्रमिक अध्ययन नहीं, समकालिक अध्ययन होता है।

अभ्यास प्रश्न

क- सही /गलत में उत्तर दीजिए।

1. तुलनात्मक अध्ययन प्रक्रिया का प्रथम चरण रचना विषयक चयन है।
2. अमरीकी स्कूल दृष्टि रूपवादी रही है।
3. फ्रांसीसी-जर्मन स्कूल की दृष्टि ऐतिहासिक रही है।
4. सादृश्य-संबंधात्मक प्रविधि, साहित्येतिहास के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ से जुड़ा हुआ है।
5. तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा प्रविधि का संबंध अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ से जुड़ा हुआ है।

ख- टिप्पणी लिखिए

1. तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा प्रविधि ?

2.4 तुलनात्मक अध्ययन एवं भारतीय साहित्य

क्या तुलनात्मक साहित्य और भारतीय साहित्य का किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध है? रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जब 1907 ई. में विश्व साहित्य शब्द का प्रयोग किया था, तब से तुलनात्मक अध्ययन को भारत में विशेष बल मिला। भारतीय साहित्य के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन एंव साहित्य की नई परिकल्पनाएँ सामने आई। इसी उद्देश्य से सन् 1954 ई. में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई। भारतीय साहित्य की प्रस्तावना प्रस्तुत करते हुए सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा था कि भारतीय साहित्य एक है यद्यपि वह बहुत-सी भाषाओं में लिखा जाता है। भारतीय साहित्य चूँकि विभिन्न भाषा परिवारों में, 'भारोपीय, चीनी-तिब्बती, कश्मीरी, द्राविड़ इत्यादि'- बांटा हुआ है, इसलिए भी इसे व्यापक प्रचार-प्रसार प्राप्त नहीं हो सका। किन्तु भारत की मूलभूत संस्कृति को दिखाने के लिए भारतीय साहित्य की अवधारणा का व्यापक प्रचार-प्रसार आवश्यक है।

2.5 तुलनात्मक अध्ययन और अनुवाद का प्रश्न

तुलनात्मक अध्ययन के मूल में यह प्रश्न उपस्थित है कि विस्तृत परिप्रेक्ष्य में साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन किस प्रकार संभव हो सकता है? इस अध्ययन प्रणाली में एक से अधिक भाषाओं के साहित्य का प्रश्न भी मूल में हैं क्योंकि अनुवाद करने की स्थिति तो दसूरी भाषाओं के संदर्भ में ही उत्पन्न् होती है। तुलनात्मक अध्ययन और अनुवाद के संदर्भ में कई प्रश्न आज भी अनसुलझे हैं। तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में उचित स्थिति यह होगी कि अध्येता को एक-से अधिक भाषाओं की जानकारी हो। आर्नल्ड के अनुसार अपनी भाषा में रचित साहित्य के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा के साहित्य से भली भाँति परिचित होना आवश्यक बताया था।

अनुवाद सृजन है, या अनुकरण यह प्रश्न ही उठाया जाता रहा है। मूल रूप में तो अनुवाद अनुकरण ही है, किन्तु यांत्रिक अनुवाद भी तुलनात्मक साहित्य के लिए किस काम का? साहित्यिक अनुवाद तो सृजनात्मक ही हो सकता है। क्योंकि साहित्य में एक शब्द के कत्रई अर्थ होते हैं, इसलिए देश-काल-परिस्थिति-परिवेश के अनुसार मूल रूप से अर्थ को ही मूल मानना पड़ता है।

2.6 सारांश

यह एम0ए0एच0एल0-204 की दूसरी इकाई, जो तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियों पर केंन्द्रित है- का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- तुलनात्मक अध्ययन एक सुनिश्चित प्रविधि एंव श्रृंखला के माध्यम से अपना आकार ग्रहण करता है।
- तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया के कई चरण हैं- प्रथम चरण है- रचना विषयक चयन, दूसरा चरण है- आलोच्य कृति का पाठ, तीसरा चरण है- तथ्य चयन, चतुर्थ चरण है- तथ्यों का विश्लेषण करना, पंचम चरण है- विषय वस्तु एवं शिल्प के स्तर पर आलोच्य रचनाओं की संगति की विचारणा एवं उनका मूल्यांकन करना।
- तुलनात्मक आलोचना प्रक्रिया के विश्लेषण प्रक्रिया के अंतर्गत- साहित्येतिहास के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ एवं तुलनात्मक आलोचना का विश्लेषण किया जात है।
- साहित्येतिहास के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ के अंतर्गत- सादृश्य-संबंधात्मक प्रविधि, तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा प्रविधि, प्रभाव प्रविधि, अध्ययन की स्वीकृति तथा संचारण प्रविधि, तुलनात्मक अध्ययन की सौभाग्य प्रविधि, संबंधात्मक द्वन्द्वात्मक प्रविधि इत्यादि आते हैं।

2.7 शब्दावली

- प्रविधि- शैली, तरीका
- एप्रोच – दृष्टि
- सुनिश्चित – निश्चित
- सापेक्षतावाद - समाज के संदर्भ के अनुकूल विकसित दृष्टि

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क-

1. सत्य
2. सत्य

3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य- चौधेरी , इन्द्रनाथ, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2010
2. तुलनात्मक अध्ययनः भारतीय भाषाएँ और साहित्य ' (सं) राजूरकर, भ.ह.एंव बोरा, राजकमल, वाणी प्रकाशन , द्वितीय संस्करण 2008

2.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ - (सं) राजूरकर, भ.ह. एवं बोरा, राजमल, आवृत्ति संस्करण 2013 वाणी प्रकाशन

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक अध्ययन के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।
2. तुलनात्मक अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन कीजिए।

इकाई 3 भारतीय साहित्य की अवधारणा

इकाई रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 पाठ का उद्देश्य
3.3 भारतीय साहित्य की अवधारणा
3.3.1 अर्थ, परिभाषा
3.3.2 भारतीय, साहित्य का स्वरूप
3.4 भारतीय साहित्य और अध्ययन की समस्याएँ
3.5 भारतीय साहित्यस और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रश्न
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सामान्य व्यवहार या आम बोलचाल की भाषा में भारतीय साहित्य का आशय भारत के विभिनन प्रान्त की भाषा में लिखे गये साहित्य से है। किन्तु भारतीय साहित्य एक अनुशासन के रूप में आज विकसित हो चुका है और सम्पूर्ण भारत के साहित्य के अर्थ में समझा जाने लाग है। भारतवर्ष बहुभाषी समाज रहा है। भारोपीय-द्राविड़, चीनी-तिब्बती इत्यादि भाषा परिवारों को समेटे भारत वर्ष भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का वाहक रहा है। स्वाभाविक ही था कि भिन्न भाषा एवं संस्कृतिक की एक समझ बढ़ाने का प्रयत्न होता, क्योंकि उसके बिना भारतीय संस्कृतिक को समझा ही नहीं जा सकता था। भारत के पूर्वी प्रदेश में-उड़िसा , बंगला, असमिया, पूर्वोत्तर प्रदेश में- अरूणाचली, नागालैण्डी, असमिया, मिजो, उत्तर प्रदेश में कश्मीरी, डोंगरी, सिंधी, कोंकणी, पश्चिम के प्रदेश में-राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, हरियाणी एवं दक्षिण के प्रदेशों में- मराठी, तेलुगु, कन्नड़, तमिल एवं मलयालम भाषाएँ प्रमुखता से बोली और समझी जाती है। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक स्तर पर अन्य छोटी-छोटी भाषाओं का भी साहित्य है.... तो क्या इतने बड़े भाषा वैभिध्य वाले प्रदेश में किसी एक चेतना को स्थिर किया जा सकता है? भारतीय साहित्य की अवधारणा में मूल में भारतीय जीवन संस्कृति एवं भाषागत वैविध्य को समेटने का प्रयास है। भारतीय साहित्य का क्षेत्र व साहित्य इतना व्यापक है कि प्रश्न उठता है कि इसका कौन सा स्वरूप नियत किया जाये? एक प्रश्न भाषागत भिन्नता का है, सांस्कृतिक भिन्नता का है, तो दूसरा प्रश्न भाषा-परिवार की भिन्नता का है, व्याकरणिक भिन्नता का है। इतने व्यापक भिन्नता के बावजूद किसी एक भारतीय संस्कृति के निर्माण को बात की जा सकती है? भारतीय साहित्य की अवधारण के मूल में ऐसे ढेरों प्रश्न हैं।

3.2 पाठ का उद्देश्य

एम.ए.एच.एल - 204 की यह तीसरी इकाई भारतीय साहित्य की अवधारणा पर केंन्द्रित है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारतीय साहित्य की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- भारतीय साहित्य के इतिहास को जान सकेंगे।
- भारतीय साहित्य की परिभाषा एवं उस पर विभिन्न विद्वानों के मतो को जान सकेंगें।
- भारतीय साहित्य और उसके अध्ययन की समस्याओं से परिचित हो सकेंगें।
- भारतीय साहित्य और संस्कृति के अंतर्सम्बन्ध कसे समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 भारतीय साहित्य की अवधारणा

3.3.1 अर्थ, परिभाषा

भारतीय साहित्य को परिभाषित करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है, ''भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति का नाम भारतीय साहित्य है और भारतीय मनीषा का अर्थ है, भारत के प्रबुद्ध मानस की सामूहिक चेतना-सहस्त्राब्दियों से संचित अनुभूतियों और विचारों के नवनीत से जिसका निर्माण हुआ है। यह भारतय मनीषा ही भारतीय संस्कृति, भारत की राष्ट्रीयता और भारतीय साहित्य का प्राणतत्व है। '' (भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास-सं0 डॉ.नगेन्द्र, पृष्ठ 10) अपनी इस परिभाषा में डॉ.नगेन्द्र ने भारतीय साहित्य की व्यापक संकल्पना की है। 'भारत के प्रबुद्ध मानस की सामूहिक चेतना, को उन्होंने भारतीय साहित्य का आधार माना है। भारतीय मनीषा, भारत की राष्ट्रीयता ही भारतीय साहित्य के केंन्द्र में हैं। डॉ.नगेन्द्र ने अपनी इस परिभाषा में समेकित रूप में भारतीय मनीषा को ही सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का पर्याय मान लिया है। इस परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष है । भारत वर्ष को भौगोलिक एकत्व के आधार पर रखकर, भारतीय साहित्य की परिभाषा देते हुए विन्टरनिप्स ने 'भारतीय साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है,''भारतीय साहित्य का इतिहास भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त तीन हजार वर्ष के मानसिक क्रिया-कलाप का लिपिबद्ध इतिहास है। हजारों वर्षों तक निरन्तर गतिशील इस मानसिक क्रिया-कलाप का विकास क्षेत्र है वह देश है जो हिन्दुकुश पर्वत से कुमारी अंतरिप-लगभग डेढ़ लाख वर्गमील तक फैला हुआ है-जिसका क्षेत्रफल रूस को छोड़ समस्त यूरोप के बराबर है और विस्तार 8 से 35 उत्तरी अक्षांश तक अर्थात् भूमध्य रेखा के ऊष्णतम प्रदेशों से लेकर शीतोष्ण कटिबंध तक हैं। '' इसे अतिरिक्त विन्टरनिप्स ने आगे एक जगह और लिखा है-''विषय वस्तु की दृष्टि से इसमें, व्यापक अर्थ में, वाङमय के समस्त रूपों-धार्मिक और लौकिक महाकाव्य, प्रगीत-काव्य, नाटक, नीति-काव्य तथा गद्य में रचित कथा-आख्यायिका, शास्त्र आदि का अंतर्भाव है।'' स्पष्ट है कि विन्टरनित्स ने अपनी परिभाषा में समस्त रचना रूपों एवं भारत के समस्त क्षेत्र के साहित्य को अपनी परिभाषा में समेटा है कि विंटरनित्स ने अपनी परिभाषा में समस्त रचना रूपों एवं भारत के समस्त क्षेत्र के साहित्य को अपनी परिभाषा के अंतर्गत रखा है। इसी प्रकार भारतीय वाङमय की भूमिका में भारतीय साहित्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई हैः "भारत वर्ष अनेक भाषाओं वाला विशाल देश हैः उत्तर-पश्चिम में पंजाबी, हिन्दी और उर्दू, पूर्व में उड़िया, बंगला और असमिया, मध्य-पश्चिम में मराठी व गुजराती और दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम। इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य भाषाएँ भी है जिनकी साहित्यिक तथा भाषावैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं है। जैसे कश्मीरी, सिंहली, डोगरी, कोंकणी और तुरू आदि। इनमें से प्रत्येक का-विशेष कर पहली बारह भाषाओं में से प्रत्येक का अपना साहित्य है जो प्राचीनता, वैविध्य, गुण और पभिाषा- सभी की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। यदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के ही संपूर्ण वाङ्मय से किसी भी दृष्टि से कम नहीं होगा। वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश समूह के वाङमय का समावेश कर लेने पर तो उसका अनंत

विस्तार कल्पना की सीमा को पार कर जाता है ज्ञान का अपार भंडार-हिंद महासागर से भी गहरा, भारत के भौगोलिक विस्तार से भी अधिक व्यापक, हिमालय के शिखरों से भी ऊँचा। '' इस परिभाषा में भारतीय की प्रमुख भाषाओं एवं समस्त ज्ञान परम्परा को समेटने का भावात्मक प्रयास किया गया है।

3.3.2 भारतीय साहित्य का स्वरूप

भारतीय साहित्य की समझ के लिए पहले तो भारतीय क्षेत्र और उसकी भाषाओं का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय भौगोलिक परिधि एवं उसकी भाषाओं को हम एक आरेख के माध्यम से समझ सकेत हैं-

भारत की भाषाएं

1. उत्तरी क्षेत्र की भाषाएँ - कश्मीरी, सिंधी, पहाडी, गढ़वाली-कुमाऊँनी, नेपाली
2. पश्चिम क्षेत्र की भाषाएँ - पंजाबी, हरियाणी, राजस्थानी, गुजराती
3. दक्षिण-पश्चिम - मराठी
4. दक्षिण की भाषाएँ - तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम
5. पूर्वी क्षेत्र की भाषाएं - बंगला,उड़िया, असमिया
6. पूर्वोत्तर की भाषाएँ - नागालैण्डी, मिजो, मेघालयी, अरूणाचली

जाहिर है भारतीय साहित्य की परिधि बहुत व्यापक है। अतः इसीलिए स्थूल रूप में भारत की बहुविध भाषाओं को इसमें समेट लिया जाता है। इस परिकल्पना के अनुसार भारतीय साहित्य का तात्पर्य उपरोक्त की समस्त भाषाओं के सम्पूर्ण साहित्य की संपूर्ण प्रवृत्ति से है। जैसा कि पूर्व में भी हमने अध्ययन किया कि भारतीय साहित्य इन समस्त भाषाओं के समस्त साहित्य का न तो संग्रह मात्र है और न उसकी व्याख्या मात्र भारतीय सांहित्य का आशय तो संपूर्ण भारत की जातीय अस्मिता को तलाशने व उसको संरक्षित करने से है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) टिप्पणी लिखिए।

1. भारत की भाषाएँ

.....

.....

.....

.....

2. भारतीय साहित्य की परिभाषाएँ

.....

.....

.....

.....

(ख) सही/गलत का चयन कीजिए।

1. राजस्थानी पश्चिम भारत की भाषा है।
2. डॉ. नगेन्द्र ने 'भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति' को भारतीय साहित्य कहा है।
3. मराठी भारत के दक्षिण-पश्चिम की भाषा है।
4. कश्मीरी, पूर्वोत्तर की भाषा है ।
5. मलयालम, दक्षिण-पश्चिम की भाषा है।

3.4 भारतीय साहित्य और अध्ययन की समस्याएँ

भारतीय साहित्य के स्वरूप के अंतर्गत हमने भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं का संकेत किया था। यहाँ हम उसी समस्या के कारणों का विस्तार से अध्ययन करेंगे। हमने अध्ययन किया कि भारत में कई भाषा परिवार की भाषाएँ बोली जाती है। यहाँ एक आरेख के माध्यम से हम भारतीय भाषा परिवारों की रूपरेखा समझने का प्रयास करेंगे-

भारतीय भाषाएँ और भाषा परिवार

1. भारोपीय भाषा परिवार - अर्द्धमागधी, शौरसेनी, मागधी, पहाडी़, बिहारी, गुजराती, बंगला, उड़िया
2. द्राविड़ भाषा परिवार - तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलायम
3. दरद - कश्मीरी, सिंधी पश्तो
4. तिब्बती भाषा परिवार - नागालैण्ड, मणिपुरी, मिजो इत्यादि पूर्वोत्तर की भाषाएँ

ऊपर आपने देखा कि भारत में चार भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती है। ये भाषा परिवार अपने व्याकरणिक गठन में भिन्न प्रकार के हैं।

बहुविध भाषा परिवार की उपस्थिति पर रामविलास शर्मा की टिप्पणी है, '' अनेक आधुनिक राष्ट्र और राज्य न केवल बहुजातीय है वरन् उसमें निवास करने वाली जातियाँ एक से अधिक परिवारों की भाषाएँ बोलती है। इसलिए भारत में अनके भाषाओं का बोला जाना अथवा उनका अनेक परिवारों से सम्बद्ध होना कोई अनोखा व्यापार नहीं है। '' इस दृष्टि से रामविलास जी अनेक भाषा परिवार को भारतीय साहित्य के लिए अवरोध नहीं माना है। फिर भी प्रश्न तो उठता ही है कि बहुसांस्कृतिक परिस्थितियों में एक भाषिक संकल्पना की पूर्ति कैसे की जा सकती है? भारत की सांस्कृतिक एकता का संदर्भ काफी पुराना है। भारतीय मिथकों एवं महाकाव्यों को आधार बनायें तो हमे देखते हैं कि उसमें सम्पूर्ण राष्ट्र को आधार बनाया गया है। रामायण में श्री राम की उत्तर से दक्षिण की यात्रा सांस्कृतिक एकत्व के प्रयत्न के सिवा और क्या कहा जा सकता है? महाभारत में भी पाण्डवों के माध्यम से भारत के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण की यात्रा

कराकर लेखक ने अपनी सांस्कृतिक दृष्टि का ही परिचय दिया है। धार्मिक-मिथकीय व जातीय महाकाव्यात्मक संस्कृति के ही कारण सम्पूर्ण भारत में कर्मकाण्ड व पूजा-पद्धति में लगभग एक जैसी ही पद्धति अपनाई जाती रही है। अर्थ यह है कि भारतीय समाज व संस्कृति की साभ्यता की ऐतिहासिक परम्परा रही है। द्रविड़ भाषा के शब्द अगरू, अनल, कुंड, कुंडल, चंदन (पूजा से शब्द) आदि शब्द संस्कृत भाषा में भी मिलते हैं।

काल विभाजन की समस्या

जैसा कि हमने अध्ययन किया कि भारत अपने भौगोलिक एवं बहुभाषिक वैविध्य की दृष्टि से फैला हुआ बृहद राज्य है। हर क्षेत्र की अलग-अलग भाषा....और उन भाषाओं काअलग व्याकरण रूप। सबसे बडी़ समस्या सभी भाषाओं को एक साथ रखकर उनका विवेचन-विश्लेषण करने से है। भारत की विभिन्न भाषाओं में मूलभूत रूप से एकता तो परिलक्षित की जाती है, लेकिन साहित्यिक प्रवृत्ति यों के निर्धारण में काल विभाजन का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। कारण यह कि एक ही प्रवृत्ति अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग समय पर रही है। जैसे भक्तिकाल को ही हम उदाहरण स्वरूप लें तो यह कह सकते हैं दक्षिण का भक्ति साहित्य पूर्व का है और हिन्दी का बाद का.... इसी तरह अन्य प्रवृत्ति यों को भी हम ले सकते हैं।

3.5 भारतीय साहित्य और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रश्न

डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित पुस्तक 'भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास' में भारतीय साहित्य की अनेक अर्थछायाएँ बताई गयी है। उन अर्थछायाओं को हम एक आरेख के माध्यम से इस प्रकार देख सकते हैं

भारतीय साहित्य: विभिन्न अर्थ

1. भौगोलिक
2. परिवेशीय
3. जातीय-सांस्कृतिक
4. जीवन-दर्शन

आइए इन अर्थों को हम समझने का प्रयास करें। भौगोलिक का तात्पर्य है - भारत की सीमाओं के अतंर्गत बोले जाने वाली भाषाएँ। परिवेशीय अर्थ का तात्पर्य है- यर्थाथवादी दृष्टिकोण से। भारत की सामाजिक- राजनीतिक के अर्थ में भारतीयता की व्याख्या करने से है। जातीय-सांस्कृतिक दृष्टि से तात्पर्य ऐसी अवधारणा से है जो भारतीयता का परिचायक हो। जातीय-सांस्कृतिक में धार्मिक-सांस्कृतिक, आचार-विचार के सार से है। जीवन-दर्शन का तात्पर्य है- भारत की भौगौलिक-परिवेशीय-जातीय-सांस्कृतिक मूल्यों के निचोड़ से प्राप्त जीवन मूल्य। यानी भारतीय जीवन दर्शनों की रसात्मक अभिव्यक्ति के रसात्मक साहित्य को ही भारतीय साहित्य कहा गया है। आपने पूर्ण में अध्ययन किया कि भारतीय साहित्य की अवधारणा के मूल में सांस्कृतिक व राष्ट्रीय प्रश्न ही है। दरसल इस अवधारणा कि 'भारतीय साहित्य के माध्यम से

भारतीय एकता की स्थापना कैसे की जाये? यही प्रश्न भारतीय साहित्य की अवधारणा के केंन्द्र में हैं।

3.6 सारांश

आपने एम.ए.एच.एल-204 की तीसरी इकाई का अध्ययन किया। यह इकाई भारतीय साहित्य की अवधारणा पर केंन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि –

- भारतीय साहित्य की अवधारणा के मूल में भारतीय राष्ट्र की मूलभूत एकता को प्रकट करना रहा है।
- भारत बहु-भाषिक एवं बहु-सांस्कृतिक राष्ट्र रहा है। इसकी बहुभाषिकता कई भाषा परिवारों पर आधारित रही है। भारोपीय भाषा परिवार, द्राविड़ भाषा परिवार। तिब्बती भाषा परिवार एवं कश्मीरी भाषा परिवार। प्रश्न यह है कि बहु-भाषिक समाज में राष्ट्रीय एकता कैसे स्थापित की जाये? भातीय साहित्य की अवधारणा के मूल में यही प्रश्न केन्द्र में रहा है।
- भारतीय साहित्य की अवधारणा को परिभाषित करते हुए उसे भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया है।
- भारतीय साहित्य के स्वरूप की समझ के लिए हमें भारत के उत्तरी क्षेत्र, परिश्चमी क्षेत्र, दक्षिण की भाषाएँ, पूर्वी क्षेत्र की भाषाएँ एवं पूर्वोत्तर क्षेत्र की भाषाओं एवं उनकी संस्कृति की समझ भी आवश्यक है।

3.7 शब्दावली

- भाषा-परिवार - व्याकरणिक आधारों पर भाषा का समूह।
- अतिव्याप्ति - बिना ठोस आधार के व्यापक आयामें को धारण करना।
- जातीय चेतना - किसी प्रदेश-राष्ट्र की मूल चेतना।
- महाकाव्यात्मक संस्कृतिक - व्यापक जीवन आदर्श को धारण करने वाली संस्कृतिक।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(ख)

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य

4. असत्य
5. असत्य

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय साहित्य - त्रिपाठी, रामछबीला, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2012
2. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास - (सं) नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण 2009

3.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य, चौधुरी, इन्द्रनाथ, वाणी प्रकाशन,द्वितीय संस्करण 2010
2. तुलनात्मक अध्ययन: भारतीय भाषाएँ और साहित्य: (सं)-राजूरकर,भ.ह.,बोरा, राजकमल, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2008।

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय भाषाओं का परिचय प्रस्तुत कीजिए।
2. भारतीय साहित्य की अवधारणा का परिच प्रस्तुत कीजिए।

इकाई – 4 भारतीय साहित्य की व्यापकता

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 पाठ का उद्देश्य
4.3 भारतीय साहित्य की व्यापकता
4.3.1 भागौलिक विस्तार
4.3.2 ऐतिहासिक विस्तार
4.3.3 भाषिक विस्तार
4.3.4 साहित्य का विस्तार
4.4 भारतीय साहित्य का सांस्कृतिक विस्तार
4.5 सारांश/मूल्यांकन
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीय साहित्य की अवधारणा से संबंधित आपने इकाई का अध्ययन किया। उस इकाई के माध्यम आपने जाना कि सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय परिकल्पना को आधार बना करके ही भारतीय साहित्य की अवधारणा निर्मित हुई है। आपने अध्ययन किया कि भारतीय साहित्य की कई अर्थछाया है। भौगौलिक, परिवेशीय, राष्ट्रीय सांस्कृतिक एवं जीवन मूल्य से मुक्त दृष्टि। भारतीय साहित्य की व्यापकता इतनी ज्यादा है कि इसे किसी एक इतिहास, एक काल सीमा में निबद्ध कर देना कठिन कार्य है। किसी एक भाषा के साहित्य के गद्य-पद्य का एक साथ ही विवरण देना भी संभव नहीं है, फिर संपूर्ण भारत के साहित्य की व्याख्या-विवचेना किस प्रकार संभव हो सकती है? भारतीय साहित्य के एकत्व की दृष्टि से नाथ साहित्य, चारण काव्य, संतकाव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, वैष्णव काव्य एवं आधुनिक विचार दर्शनों के प्रभावित साहित्यिक प्रवृत्तियां प्रमुख रूप से सभी प्रमुख भारतीय साहित्य में पायी जाती है। भारतीय साहित्य पर टिप्पणी करते हुए कृष्ण कृपालनी ने लिखा है-

''भारतीय सभ्यता की तरह, भारतीय साहित्य का विकास, जो एक प्रकार से उसकी सटीक अभिव्यक्ति है, सामाजिक रूप में हुआ है। इसमें अनेक युगो, प्रजातियों और धर्मों का प्रभाव परिलक्षित होता है और सांस्कृतिक चेतना तथा बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तर मिलते है ।'' एक दूसरी जगह कृष्ण कृपलानी जी ने लिखा है, ''अत्यन्त प्राचीन विकासक्रम के अतिरिक्त इसमें दो अन्य विशेषताऐं भी हैं, जो सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के अपूर्ण गौरव प्रदान करती है। एक है तीन हजार से अधिकाधिक वर्षों तक व्याप्त अखंड सृजन परम्परा और दूसरी है वर्तमान में जीवित अतीत की प्राणवंत चेतना।'' स्पष्ट है ऐतिहासिक, भौगौलिक एवं विषय विस्तार की दृष्टि से भारतीय साहित्य बहुत व्यापक है। इसके विषय विस्तार का संकेत करते हुए विन्टरनिट्स ने लिखा है, ''विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें व्यापक अर्थ में वाङ्यम के समस्त रूपों धार्मिक और लौकिक महाकाव्य, प्रगीतकाव्य, नाटक, नीतिकाव्य तथा गद्य में रचित कथा आख्यायिका, शास्त्र आदि का अन्तर्भाव है।''

4.2 पाठ का उद्देश्य

एम.ए.एच.एल.- 204 की यह चौथी इकाई है। यह इकाई भारतीय साहित्य की व्यापकता पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

- भारतीय साहित्य के भौगोलिक विस्तार को जान पायेंगे।
- भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक स्वरूप को समझ पायेंगे।
- भारतीय साहित्य के निर्धारक प्रमुख भाषाओं से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय साहित्य के माध्यम से सांस्कृतिक विस्तार को समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य के विस्तार को समझ सकेंगे।

- भारतीय साहित्य से जुड़ी हुई पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

4.3 भारतीय साहित्य की व्यापकता

भारतीय साहित्य की अवधारणा एवं स्वरूप के संदर्भ में हमने भारतीय भाषाओं के भाषा-वैविध्य एवं विस्तार का अध्ययन किया था। यहाँ हम भारतीय साहित्य की व्यापकता को भौगोलिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों के साथ ही समझने का प्रयास करेंगे। भारतीय साहित्य की व्यापकता को बिन्दुरूप में यहाँ हम एक आरेख के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

भारतीय साहित्य की व्यापकता

1.भौगोलिक विस्तार 2.ऐतिहासिक विस्तार 3.भाषिक विस्तार 4.साहित्यिक विस्तार

ऊपर हमने भारतीय साहित्य के विस्तार के तत्वों को देखा। अब हम तत्वों का विस्तार से अध्ययन करेंगें।

4.3.1 भौगोलिक विस्तार

भौगोलिक विस्तार, भारतीय साहित्य का प्राथमिक तत्व है। जब सम्पूर्ण भारत की भाषाओं को आधार बना करके भारतीयता की अवधारणा विकसित हुई है, तो उसके मूल में भारत का भौगोलिक विस्तार ही आधार रूप में रहा है। भारतीय साहित्य के भौगोलिक विस्तार का संकेत करते हुए विन्टरनिट्स ने लिखा है- ''हजार वर्षों तक निरन्तर गतिशील इस मानसिक क्रिया-कलाप का विकास-क्षेत्र वह देशा है जो हिंदुकुश पर्वत से कुमारी अंतरीप-लगभग डेढ़ लाख वर्गमील तक फैला हुआ है जिसका क्षेत्रफल रूस को छोड़ समस्त यूरोप केबराबर है और विस्तार 8 से 35 उत्तरी अक्षांश तक अर्थात् भूमध्यम रेखा के ऊष्णतम प्रदेशों से लेकर शीतोष्ण कटिबंध तक हैं।'' भारत के समस्त भौगोलिक वृत्त को भारतीय साहित्य के भौगोलिक विस्तार में शामिल कर लिया गया है। कारण यह कि समस्त भारत में अलग-अलग प्रदेशों की अलग-अलग भाषाओं का अस्तित्व है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक भारत का भौगोलिक विस्तार फैला हुआ है।

4.3.2 ऐतिहासिक विस्तार

भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक स्वरूप पर विचार करते हुए विन्टरनित्स ने लिखा है,'' भारतीय साहित्य का इतिहास भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त तीन हजार वर्ष के मानसिक क्रिया-कलाप का लिपिबद्ध इतिहास है।'' इस दृष्टि से विचार किया जाए तो विन्टरनित्स ने भारतीय साहित्य का इतिहास लगभग 1000 ईसा पूर्व निर्धारित किया है। यानी महाकाव्यकालीन सम्भ्यता के बाद के समय को ही उन्होंने अपने विवेचन के केन्द्र में रखा है। महाकाव्यकालीन सभ्यता से पूर्व भी भारत का पर्याप्त साहित्य हमें देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक स्वरूप की समझ हम एक आरेख के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

भारतीय साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप (आरेख)

मैक्समूलर	-	1200 ईसा पूर्व
ए. वेबर	-	1200 ईसा पूर्व

जैकोबी	-	4500 ईसा पूर्व
बालगंगाधर तिलक	-	सृष्टि के प्रारम्भिक युग में
पं0 दीनानाथ शास्त्री	-	3 लाख वर्ष पूर्व
अविनाशचन्द्र दास	-	25,000 वर्ष पूर्व
भण्डारकर	-	600 ई.पू0
आदिशंकराचार्य	-	सृष्टि के प्रारम्भिक चरण
व्यास	-	सृष्टि के प्रारम्भिक चरण

चूँकि संसार का प्राचीन ग्रन्थ वेद (ऋग्वेद) को ही माना जाता है। और वेदों की रचना को लेकर काल मतैक्य नहीं है। 600 ईसा पूर्व से लेकर करोड़ों वर्षों तक की मान्यता हमारे सामने उपलब्ध है। मैक्समूलर,ए. वेबर, भण्डारकर जैकोबी, बालगंगाधर तिलक ने ऐतिहासिक प्रमाणों को साक्ष्य मानकर अपना मत स्थिर किया है तो दयानन्द सरस्वती, पं0 दीनानाथ शास्त्री, अविनाशचन्द्र दास, आदिशंकराचार्य एवं व्यास ने मिथकीय-पौराणिक एवं ज्योतिषीय आधार पर अपना मत स्थिर किया है। आइए ऊपर के अध्येताओं के मतों की समीक्षा करें।

मैक्समूलर के मत के मूल में यह अवधारणा रही है कि गौतम बुद्ध के समय तक वेदों की रचना पूरी हो चुकी थी। गौतम बुद्ध का समय 5-6वीं शताब्दी ई.पू0 माना गया है। मैक्समूलर ने अपने मत की पुष्टि के लिए वैदिक साहित्य को चार प्रमुख भागों में विभक्त कर दिया है, तथा प्रत्येक के लिए 200 वर्ष का समय रखा है-

1.	छन्द काल	-	1000-1200 ई.पू.
2.	मन्त्र काल	-	800- 1000 ई.पू.
3.	ब्राह्मण काल	-	600-800 ई.पू.
4.	सूत्र काल	-	400- 600 ई.पू.?

ए. वेबर ने वेदों के समय को 1200 ई.पू. तो स्वीकार किया, किन्तु साथ ही वे यह भी जोड़ देते हैं कि यह अनुमानित समय है। जैकोबी के मत के मूल में ज्योतिष की गणना रही है। ज्योतिष को आधार बना करके ही बालगंगाधार तिलक ने भी अपना मत स्थिर किया है। तिलक ने वैदिक काल को 4 भागों में विभक्त किया है-

1. अदित काल – 4000 - 6000 ई.पू. - गद्य-पद्यात्मक मंत्र
2. मृगशिरा काल - 2500-4000 ई.पू. - ऋक सूक्त
3. कृतिका काल - 1400-2500 ई.पू. - चारों वेदों का संकलन ब्राह्मण ग्रन्थ
4. अंतिम काल - 500-1400 ई.पू. - सूत्र एवं दर्शन ग्रन्थ

दयानन्द सरस्वती एवं अविनाशचन्द्र दास ने ज्योतिषीय आधार पर अपना मत स्थिर किया है।

4.3.2 भाषिक विस्तार

भारत बहुभाषिक राष्ट्र है। इस दृष्टि से इसे बहुसांस्कृति राष्ट्र भी कहा जा सकता है। लगभग 1652 मातृभाषाएँ हमारे देश में बोली जाती है तथा प्रमुख रूप से 25-30 भाषाएँ अपने समृद्ध साहित्य के कारण उल्लेखनीय हैं। इन भाषाओं का संबंध भारतीया संस्कृतिक से प्रमुखता

से जुड़ा हुआ है। पिछली इकाई में आपने भाषिक विस्तार की दृष्टि से भारतीय साहित्य का अध्ययन कर लिया है। अब हम प्रमुख भाषा परिवारों एवं लिपियों के माध्यम से भारतीय साहित्य का विस्तार समझने का प्रयास करेंगे। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की हिन्दी संरचना की पुस्तक में लिपि और भाषा के सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त किया गया है।

ब्राह्मी लिपि

1. उत्तरी शैली 2. दक्षिणी शैली

उत्तरी शैली के निम्न लिखित चार भेद हैं -

1. गुप्त लिपि 2. कुटिल लिपि 3. शारदा लिपि 4. प्राचीन नागरी लिपि

शारदा लिपि के निम्नलिखित उपभेद हैं –

1. कश्मीरी
2. मंडेआली
3. डोगरी
4. चंबा
5. सिरमौरी
6. जौनसारी
7. कुल्लई
8. मुलतानी
9. सिंधी
10. गुरूमुखी आदि

इसी कर्म ने प्राचीन नागरी लिपि के पुनः दो भेद माने गए हैं

(क)पूर्वी नागरी (इसके उपभेद निम्न हैं)

1. मैथिली कैथी
2. नेवारी
3. उड़िया
4. बंगला
5. असमिया
6. प्राचीन मणीपुरी आदि

(ख)पश्चिमी नागरी

1. गुजराती
2. महाजनी
3. राजस्थानी
4. महाराष्ट्री
5. मोडी़
6. नागरी

ब्रह्मी लिपि के दूसरे भेद अर्थात दक्षिणी शैली के 6 उपभेद निम्नलिखित हैं -

1. तेलुगु कन्नड़ लिपि
2. ग्रन्थ लिपि
3. तमिल लिपि
4. कलिंग लिपि
5. मध्य लिपि
6. पश्चिम लिपि

भारतीय साहित्य के विस्तार को समझने के लिए लिपि और भाषा के इस आरेख को समझना अनिवार्य है। आरेख में हम देख सकते हैं कि एक ही मूल लिपि (एक ही मूल संस्कृति) ब्राह्मी लिपि से ही उत्तरी एवं दक्षिणी शैली का जन्म हुआ और उत्तरी एवं दक्षिणी शैलीयों से अनेक लिपियाँ और उनको अभिव्यक्त करती अनेक भाषाओं का जन्म हुआ। इस आरेख के माध्यम से जहाँ एक ओर हमें भारतीय साहित्य के वैविध्य एवं विस्तार को समझने में मदद मिलती है, वहीं दूसरी एक संकेत भी मिलता है कि मूल रूप से भारतीय संस्कृति एक ही है। अब हम प्रमुख भाषा परिवारों के संदर्भ में भाषिक विस्तार का अध्ययन करेंगें। पूर्व की इकाई में हमने भारत के प्रमुख भाषा परिवारों का अध्ययन किया। अब हम उनका विस्तार से अध्ययन करेंगें। संक्षेप में विश्व के भाषा परिवारों की सूची यहाँ हम देखें -

विश्व के प्रमुख भाषा परिवार निम्न हैं -

1. भारोपीय सेमेटिक
2. हैमेटिक परिवार
3. सूडानी भाषा परिवार
4. नाइजर- कांगो परिवार
5. मूरल-अल्टाइक परिवार
6. द्रविड़ भाषा परिवार
7. चीनी- तब्बती परिवार
8. आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार
9. मलाय-पालिनेशयन परिवार
10. अमेरिकी भाषाएँ

भारोपीय परिवार के अंतर्गत भारतीय भाषाओं की अधिंकाश भाषाएँ समेट ली जाती है या आ जाती है। भारोपीय परिवार के विस्तार को हम एक आरेख के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते हैं- **भारोपीय परिवार**

भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत भाषा परिवार निम्नलिखित दो वर्गों की प्रधानता हैं -

1. केंटुम वर्ग 2. शतम् वर्ग

भारत-ईरानी शाखा

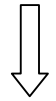

हिन्दी

भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत कश्मीरी-पश्तो, फारसी, इत्यादि भाषाएँ भी आती हैं। इसी शाखा में प्राचीन संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं के साथ ही हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बांगला, ओड़िया, असमिया, लहंदा, सिन्धी जैसी भाषाएँ भी आती है। जहाँ तक द्रविड़ भाषा परिवार का प्रश्न है। उसमें चार प्रमुख भाषाएँ हैं-

द्रविड़ भाषा परिवार

1.तमिल 2. मलयालम 3. कन्नड़ 4.तेलुगु

द्रविड़ भाषा परिवार की चार प्रमुख भाषाओं के अतिरिक्त तुलु, कोडगु या कूर्ग, तोडा, गोंडी, कुई, कुडुख या ओराँव, माल्तो इत्यादि हैं। भातीय साहित्य का तीसरा भाषा-परिवार आस्ट्रिक भाषा परिवार है। एक आरेख के माध्यम से इसे हमें इस प्रकार समझ सकते हैं-

आस्ट्रिक भाषा परिवार

आस्ट्रिक भाषा परिवार के अंतर्गत दो वर्गों को समाहित किया जाता है -

(क) मान-ख्मेर (ख) मुंडा

मान-ख्मेर के अन्तर्गर खासी (मेघालय), निकोबारी (निकोबार)और मुंडा के अन्तर्गत संथाली मुंडारी, कुर्क, सवर भाषाओं का उल्लेख किया जाता है.

भारतीय साहित्य का चौथा भाषा-परिवार चीनी-तिब्बती भाषा परिवार है।

4.3.4 साहित्य का विस्तार

भारतीय साहित्य की व्यापकता के अंतर्गत आपने भौगौलिक, ऐतिहासिक एंव भाषिक विस्तार का अध्ययन किया। अब हम भारतीय साहित्य के साहित्यिक विस्तार का अध्ययन करेंगे। जैसा कि विन्टरनित्स ने प्रस्तावित किया था कि भारतीय साहित्य में-''विषय-वस्तु की दृष्टि से इसमें, व्यापक अर्थ में ,वाङ्मय के समस्त रूपों- धार्मिक और लौकिक महाकाव्य, प्रगीत-काव्य, नाटक, नीति-काव्य तथा गद्य में रचित कथा-आख्यायिका, शास्त्र आदि का अंतर्भाव है।'' स्पष्टयतया हम देख सकते हैंकि साहित्य के समस्त काव्य रूपों एवं भारतीय साहित्य का समस्त भाषाएँ इसके अंतर्गत आती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भारतीय साहित्य के विस्तार पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-''तमिल, तेलुगु, मराठी, बंगाली, आदि विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्त, विभिन्न साहित्य क्यों एक होकर भारतीय साहित्य की संज्ञा पाने के अधिकारी हैं, इसको हम हिन्दी साहित्य की अपनी संकल्पना के माध्यम से समझ सकते हैं। जब हम हिन्दी साहित्य की आज बात करते हैं,तब उसे खडी़ बोली में रचित काव्यकृतियों तक ही सीमित नहीं

रखते। इसमें प्रसाद, पंत, निराला, प्रेमचन्द्र, अज्ञेय, यशपाल आदि की रचनाओं के साथ-साथ अवधी, ब्रज, मैथिली आदि भाषाओं के साहित्यकार जायसी, सूर, तुलसी, विद्यापति आदि की कृतियों को भी समाहित करने में संकोचन नहीं करते। इन विभिन्न भाषा/बोलियों के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला साहित्य एक है क्योंकि इनकी रचना करने वाले हिन्दी भाषाई समाज की जातीय चेतना एक है।''

''जिस प्रकार वृजवासी और अवध-निवासी व्यक्तियों की मातृबोली क्रमशः ब्रजभाषा और अवधी है, फिर भी हिन्दी भाषाई समुदाय का एक सदस्य होने के नाते अपने व्यक्तित्व के एक आयाम पर दोनों ही समान रूप से हिन्दी भाषाभाषी है, उसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि तमिलनाडु का तमिलभाषी, आंध्र प्रदेश का तेलुगुभाषी, महाराष्ट्र का मराठी भाषी और बंगाल का बँगलाभाषी, अपनी तमाम क्षेत्रीय विशिष्टताओं के बावजूद अपने व्यक्तित्व के एक वृहत्त आयाम पर भारतीय है और उनके द्वारा रचित साहित्य अपने समस्त भषा-भेद के उपरान्त भी एक (भारतीय) साहित्य के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि भारतीय समाज की ऐतिहासिक परम्परा, सांस्कृतिक मूल्य और काव्य-संवेदना की ऐतिहासिक परम्परा, सांस्कृतिक मूल्य और काव्य-संवदेना समानधर्मो है और उसके द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों में काव्य-वस्तु का संयोजन, कथा-रूढ़ियों का निर्वाह, भाव-बोध का संस्कार और शिल्पगत अभिविन्यास की प्रकृति सामासिक है।''

अभ्यास प्रश्न 1

(क) सही/गलत में उत्तर दीजिए।

1. भारत का भौगोलिक विस्तार कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ है।
2. मैक्समूलर ने वेदों का समय 1200 ईसा पूर्व का माना है।
3. बालगंगाधार तिलक ने वेदों का रचनाकाल 2000 ईसा पूर्व माना है।
4. दयानन्द सरस्वती ने वेदों का समय 4000 ईसा पूर्व माना है।
5. व्यास ने वेदों का रचनाकाल सृष्टि के प्रारम्भिक चरण को माना है।

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. ब्राह्मी लिपि की.....शैलियाँ प्रचालित है। (2/5/7)
2. उत्तरी शैली की शैली नहीं हैं .....। (पश्चिमी लिपि/गुप्त लिपि/कुटिल लिपि)
3. गुरूमुखी लिपि का संबंध है.....से। (शारदा लिपि/ग्रन्थ लिपि/गुप्त लिपि)
4. उड़िया का संबंध..... से है। (पश्चिमी नागरी/पूर्वी नागरी/ पश्चिमी लिपि)
5. द्रविड़ भाषा परिवार कें अंतर्गत भाषा .....नहीं है। (उड़िया/मलयालभ/कन्नड़)

2- टिप्पणी लिखिए।

1. भारोपीय परिवार

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2- चीनी- तिब्बती भाषा परिवार

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 भारतीय साहित्य का सांस्कृतिक विस्तार

भारतीय साहित्य की व्यापकता के अंतर्गत हमने उसके भौगोलिक, ऐतिहासिक, भाषिक एवं साहित्यि विस्तार को समझने का प्रयास किया। अब हम भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक विस्तार के तत्वों को समझने का प्रयास करेंगे।

भारतीय साहित्य बनाम राष्ट्र की अवधारणा का प्रश्न

भारतीय साहित्य के मूल में राष्ट्र की अवधारणा का प्रश्न अनुष्युत है। किसी भी देश की राष्ट्रीयता व जातीयता का प्रश्न भौगोलिक भी हो सकता है और सांस्कृतिक भी। कई बार राजनीतिक भी.....। प्राचीन काल में भारत की राष्ट्रीयता की अवधारणा मूल रूप से सांस्कृतिक प्रश्न ही था। भारत, आर्यावर्त जैसे नामकरण हो या 16 महाजनपद की अवधारणा। क्या ये अवधारणाएँ एक राष्ट्र का संकेत नहीं करते? इसी प्रकार 12 ज्योर्तिलिंग एवं चार पीठ की स्थापना क्या इस बात का सूचक नहीं है की सम्पूर्ण भारत एक राष्ट्र की संकल्पना से जुड़ा हुआ है. राजनीतिक प्रश्नों ने भारत की सीमाओं को कम कर दिया है, और भी इस प्रकार का प्रयास किया जा रहा है....। फिर सांस्कृतिकता का प्रश्न जातीयता से जुड़ा हुआ भी है। हर संस्कृति अपनी जातीयत का निर्माण करती ही है। भारतीय जातीय चेतना भी एक ही है और वही उसके एक राष्ट्र का सूचक भी है। महाभारत में भारत की राष्ट्रीयात का संकेत करते हुए कहा गया है- ''इस देश में गंगा, सिंन्धु सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, वितस्ता, सरयू, गोमी, कावेरी आदि नदियाँ प्रवाहित है। इसमें कुरू, पांचाल, शूरसेन, कोसल, कलिंग, विदर्भ, पुण्ड्र, निषाद, निश द्य, कश्मीर, गान्धार, सिंधु-सौवीर्य, द्रविड़, केरल, कर्णाटक, चोल, चुलिक, पुलिन्द, कुलिन्द, कोंकण, आन्ध्र आदि अनेक जनपद है। इस देश में आर्य क्लेच्छा दोनों रहते हैं यवन, चीन, काम्बोज भी इस भारत में है।'' स्पष्ट है कि राष्ट्र वे देश की अवधारणा का विकास उस समय भी हो चुका था।

धर्म प्रधानता

भारतीय संस्कृतिक के मूल में धार्मिकता है। चाहै वह चार पीठ हो या 12 ज्योर्तिलिंग या 52 शक्तिपीठ/सम्पूर्ण में इसी प्रकार की धार्मिक भावना उसे अपने भीतर समोये हुए है।

सहिष्णुता और उदारता

भारतीय संस्कृति अपनी उदारता और सहिष्णुता की भावना के लिए विख्यात रही है। वेदों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा मिलती है। प्राचीन भारतीय संस्कृतिक समरसता एवं साहर्चय पर आधारित रही है। यानी जाति-धर्म, रंग एवं देश की सीमाओं से युक्त होकर मनुष्यता पर विचार विमर्श करना।

अनेकता में एकता का प्रश्न

हमने अध्ययन किया कि भारत बहुविध भाषा एवं संस्कृति का राष्ट्र है। किन्तु इतनी विविधता के बावजूद सम्पूर्ण राष्ट्र की जातीय चेतना एक ही है। इसे ही अनेकता में एकता कहा गया है।

4.5 सारांश

एम.ए.एच.एल-204 की यह चौथी इकाई है। यह खण्ड भारतीय साहित्य पर आधारित है। भारतीय साहित्य की व्यापकता' शीर्षक इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि-

- भारतीय साहित्य की व्यापकता को भौगोलिक, ऐतिहासिक, भाषिक एवं साहित्यिक संदर्भों में समझने की जरूरत है।
- भारतीय साहित्य के ऐतिहासिकत स्वरूप को खोजते हुए वेदों की उत्पत्ति से जोड़ा गया है। वेदों का समय प्रामाणिक रूप से ईसा पूर्व 4000 के आस-पास माना जा सकता है।
- भारतीय साहित्य के भाषिक विस्तार को समझने के क्रम में आपने अध्ययन किया कि ब्राह्मी लिपि की उत्तरी -दक्षिणी शैलियों से ही भारत की विभिन्न भाषाओं का जन्म हुआ है।
- संसार के भाषा परिवारों में चार भाषा परिवार- भारोपीय, द्रविड़, भाषा परिवार, चीनी-तिब्बती एवं आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार, भारतीय साहित्य के अंतर्गत आते हैं।
- भारतीय साहित्य का प्रमुख भारोपीय परिवार के अंतर्गत आता है भारोपिय परिवार में संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बांगला, ओड़िया, असमिया, जैसी प्रमुख भाषाएँ आती है।

4.6 शब्दावली

- महाकाव्यकालीन सभ्यता - रामायण-महाभारत जैसे महाकाव्यों की सभ्यता।
- बहुभाषिक राष्ट्र - ऐसा राष्ट्र जहाँ कई भाषाएँ (संस्कृति) बोली जाती है।
- भाषा परिवार - संसार की समस्त भाषाओं का उनके व्याकरणिक संरचना के आधार पर वर्गीकरण।
- बृहत्त आयाम - बड़े संदर्भ में देखने की दृष्टि
- कथा- रूढ़ि - कथा की परम्परागत पद्धति।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(क)

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य

(ख)

1. 2
2. पश्चिम लिपि
3. शारदा लिपि
4. पूर्वी नागरी
5. उड़िया।

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय साहित्य-त्रिपाठी, रीमछबीला, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2012
2. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास - (सं) नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण 2009
3. हिन्दी भाषा: इतिहास और वर्तमान - इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली अगस्त 2010
4. हिन्दी संरचना - इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली अक्टूबर 2009

4.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य:चौधरी, इन्द्रनाथ, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2010
2. तुलनात्मक अध्ययन: भारतीय भाषाएँ और साहित्य: (सं)- राजूरकर, भ.ह. एवं बोरा राजमल, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2008

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय साहित्य के भाषिक विस्तार की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
2. भारतीय साहित्य की व्यापकता पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 5 भारतीय साहित्य का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 पाठ का उद्देश्य
5.3 भारतीय साहित्य का इतिहास
5.3.1 दक्षिणी साहित्य का इतिहास
5.3.2 पूर्वी साहित्य का इतिहास
5.3.3 पश्चिमी साहित्य का इतिहास
5.3.4 हिन्दी साहित्य का इतिहास
5.4 भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
5.5 भारतीय साहित्य: उपलब्धियाँ और अन्य प्रश्न
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने भारतीय साहित्य की अपधारणा एवं व्यापकता से संबंधित इकाईयों का अध्ययन किया। आपने अध्ययन किया कि सम्पूर्ण राष्ट्र में अंतर्निहित जातीय सूत्रों की तलाश की प्रक्रिया में ही भारतीय साहित्य की अवधारणा सामने आई। भारतीय साहित्य के भौगोलिक- ऐतिहासिक स्वरूप से आप परिचित हो चुके हैं.....।आपने भारतीय साहित्य के भाषा विकास की प्रक्रिया का भी अध्ययन किया। इस इकाई में हम भारतीय साहित्य के इतिहास का अध्ययन करेंगें।

भारतीय साहित्य में पूर्वी- पश्चिमी-उत्तरी एवं दक्षिणी सभी भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया जाता है। भारत की प्रमुख भाषाओं के इतिहास एवं उसकी विशेष ताओं का अध्ययन कर तुलनात्मक रूप से भारतीय साहित्य की पीठिका तैयार की जाती है। दक्षिण की भाषाओं तेलुगु, तमिल, मलयालम एवं कन्नड़ से क्या भारतीय आर्यभाषाओं का सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थिर किया जा सकता है? पश्चिमी भाषाओं गुजराती-मराठी से क्या हिन्दी की जातीय चेतना का सम्बन्ध है? और फिर है तो किस रूप में ? पूर्वी भाषाओं- बंगला, ओड़िया, असमिया से क्या भारतीय आर्यभाषा (हिन्दी) का जातीय सम्बन्ध है? और है तो किस रूप में? और फिर हिन्दी की सामासिक चेतना भी 18 बोलियों (भाषाओं) में विभक्त है, उनका तात्विक आधार क्या है? इन सभी प्रश्नों को समझने की दृष्टि से भारतीय साहित्य के इतिहास का अध्ययन उपयोगी है।

इस इकाई में हम भारतीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से भारतीय साहित्य व संस्कृति की जातीय चेतना को समझने का प्रयास करेंगें। साथ ही कुछ अन्य प्रश्नों पर भी हम इस इकाई में विचार करेंगें।

5.2 पाठ का उद्देश्य

एम.ए.एच.एल- 204 की यह पांचवी इकाई है। यह इकाई भारतीय साहित्य के इतिहास पर केन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- भारतीय साहित्य के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- दक्षिणी भाषाओं के साहित्य से परिचित हो सकेंगें।
- पश्चिमी भाषाओं के साहित्य से परिचित हो सकेंगें।
- पूर्वी भाषाओं के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- उत्तरी भाषाओं के साहित्य से परिचित हो सकेंगें।
- भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगें।
- भारतीय साहित्य की उपलब्धियों को जान सकेंगे।
- भारतीय साहित्य से संबंधित पारिभाषिक शब्दावलियों को जान सकेंगे।

5.3 भारतीय साहित्य का इतिहास

पिछली इकाई में आपने भारतीय साहित्य के मूल वेद-उपनिषद इत्यादि के ऐतिहासिक विवेचन का अध्ययन किया। इस इकाई में हम प्रमुख भारतीय भाषाओं व साहित्य का ऐतिहासिक विवेचन करेंगे/ अध्ययन करेंगे।

5.3.1 दक्षिणी साहित्य का इतिहास

आपने अध्ययन किया कि दक्षिणी साहित्य का संबंध द्राविड़ भाषा परिवार से है। इस भाषा परिवार में चार प्रमुख भाषाएँ हैं। तमिल, मलयालम, कन्नड़ एवं तेलुगु भाषा से मिलकर यह भाषा परिवार बना है। संस्कृत के बाद के भाषा विकास क्रम में ये भाषाएँ आती है। दक्षिणी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए प्रमुख भाषाओं का इतिहास एवं उसके साहित्य को देखना प्रासांगिक होगा।

तमिल भाषा का इतिहास

दक्षिण भारतीय भाषाओं में तमिल भाषा सर्वाधिक संपन्न मानी जाती है। तमिल भाषा की रचनाएँ प्रथम शताब्दी से भी पूर्व मिलनी शुरू हो जाती है, किन्तु इसका भाषा का वास्तविक विकास 7-8 वी शताब्दी से मिलता है। तमिल साहित्य का काल विभाजन करते हुए उसे सामान्यतः मोटे तौर पर प्राचीन काल एवं मध्यकाल में विभाजित किया गया है। आइए तमिल साहित्य का काल-विभाजन देखें-

1. प्राचीनकाल - 500 ई.पू. से 600 ई. तक

प्राचीनकाल की कृतियों को भी तीन भागों में विभक्त किया गया है।

1. संगम युग (संघकालीन कृतियाँ)
2. संघकालोत्तर
3. महाकाव्य द्वय

2- मध्यकाल - 600 ई. से 1200 ई.

मध्यकाल की कृतियों को अवान्तर रूप से कई भागों में विभक्त कर दिया गया है।-

1. भक्ति साहित्य - इसमें शैवनायमार और वैष्णव आलवार भक्तों की कृतियों आती है।
2. जैन, बौद्ध प्रबन्धकाव्य एवं कम्बन रामायण।

3. उत्तरकाल- 1200 ई. से 1750 ई. तक

3- परवर्ती काल -17 वीं से 19 वीं सदी तक, इसमें प्रमुख रूप से मुस्लिम साहित्य आता है।

4- आधुनिक काल - 19 वीं सदी से अब तक।

1. प्राचीनकाल तमिल साहित्य (संगम साहित्य)

तमिल के प्राचीन साहित्य में संगम साहित्य सर्वाधिक प्राचीन है। संगम साहित्य में लगभग 381 पद्य व 782 वर्णनात्मक प्रगीत हैं। संगम साहित्य के संकलन को दो वर्गों में रखा गया है- 1- एट्तो है या अष्ट संग्रही 2- पत्तुपपाट्टु या गीतदशी अष्ट संग्रही के उक्त आठ संकलनों के पदों में

मनुष्य की अनुभूतियों एवं प्राकृतिक का चित्र खींचा गया है। गीतदशी की रचनाओं में मुख्य रूप से राजवंशों के पराक्रम प्रेम एवं प्रकृति वर्णन का चित्रण मिलता है।

2. संघकालोत्तर या नीतिकाल

नीतिकाव्यों का समय 100 से 500 ई. तक माना गया है। नीतिकाव्यों की रचना के पीछे चेर, चोल और पांड्य राजाओं के शासनकाल को अशान्तिकारक बताया गया है। इस युग में रचित काव्यों को 'पदिनेन-कील-कणक्कु' (अठारह लघु नीति ग्रन्थ) कहा गया है। 18 लघु गीतों में 5 प्रेम संबंधी हैं। 18 ग्रन्थों में दो ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1. तिरूककुरल 2. नालडियार।

तिरूककुरल के रचयिता 'तिरूवल्लुवर' है। यह सार्वभौमिक दर्शन का ग्रन्थ है। सहधर्मिता, धर्माचरण, सांसारिक्ता, प्रेम एवं जीवन बोध से समन्वित यह सुन्दर रचना है। नालडियार, जैन कवियों के विरचित पद्यों का संग्रह हैं।

3. महाकाव्य-द्वय

तमिल साहित्य में शिप्पदिकारम् और मणिमेखला को महाकाव्य-द्वय की संज्ञा प्राप्त है। शिप्पदिकारम् (नूपुर काव्य) के रचयिता इलंगो अडिगल है। इस महाकाव्य में कोवलन एवं कन्नगी के माध्यम से तत्कालीन समाज का व्यापक चित्र खींचा गया है। मणि मेखलै, महाकाव्य, शिप्पदिकारम् के आगे का विस्तार माना गया है। यह महाकाव्य कोवलन तथा माधवी की पुत्री मणि मेखलै के आध्यात्मिक जीवन की कहानी है।

2- मध्यकाल

1. मध्यकालीन तमिल साहित्य वैष्णव भक्ति आन्दोलन के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध रहा है। शैव नायनमार तथा वैष्णव आलवार संतों के भक्तिपूर्ण गीत ही इस युग के साहित्य के विशेष गौरव है।

शैव नायनकारों की संख्या लगभग 63है, जिनमें विशेष रूप से प्रसिद्ध है- संत तिरूमूलरू, तिरूज्ञान सम्बन्धर, तिरूना, वक्करसर, सुन्दरर, माणिक्यावाचक एवं कारैक्काल अम्मैयार्।

वैष्णव आलवार भक्तों का भारतीय साहित्य में विशेष स्थान है। वैष्णव आलवार भक्त प्रयाः निम्न जातियों से आये हुए थे। आलवार भक्तों के पदों का संकलन आचार्य नाथमुनि द्वारा किया गया है। इनका समय 3-9 वीं सदी के बीच है। 12 आलवार संत हैं- पोइगै आलवार (सरोयोगी), पूदत्तालयार (भूतयोगी), पेयालवार (पिशाचयोगी), तिरूमलिशै (भक्तिसार), तिरूप्पन, टोंडरडिप्पडि, तिरूमंगै (परकाल), कुलशेखर, पेरियालवार (विष्णुचित्त), आंडाल (गोदादेवी), बम्मालवार (परांकुश) एवं मधुर कवि।

2. जैन, बौद्ध प्रबन्धकाव्य एवं कम्बन रामायण-

जैन तथा बौद्ध साधुओं द्वारा विरचित महाकाव्य विशेष रूप से चर्चित रहै। इस धारा के महत्त्व पूर्ण महाकाव्य है1. पेरूमकथै 2. जीवक चिन्तामणि 3. चूलामणि 4. वलैयापति 5. कुण्डलकेशी।

कम्बन रामायण

तमिल भाषा में विरचित रामायण को कम्ब द्वारा रचे जाने के कारण इसे कंब रामायण भी कहते हैं। तमिल साहित्य में इस रचना का विशिष्ठ स्थान है। वाल्मीकि रामायण की कथा को आधार बनाते हुए भी कम्ब ने अपने रचना-कौशल एवं मौलिकता का परिचय जगह -जगह दिया है।

2. उत्तरकाल: 1200 ई. से 1750 ई. तक

उत्तरकाल के प्रसिद्ध कवियों में ''औण्वैयार'' नामक एक महान कवयित्री की गणना की जाती है। इनके द्वारा लिखित आतिचूडि, मुदुरै आदि विशेष लोकप्रिय है। इसी युग में जयनकोंडार द्वारा विरचित कलिंगत्तुपरणि रचना विशेष लोकप्रिय है। इसी युग मे सिद्ध नाम से प्रसिद्ध 18 रचयिताओं की गीतात्मक कृतियाँ विशेष रूप से प्रचलित है।

3. परवर्तीकाल-

इस युग के प्रसिद्ध कवियों में मीनाक्षी सुंदरम पिल्लै हैं। इनकी कृतियों में 16 पुराण,9 पिल्लै एवं 11 अंदानियाँ विशेष चर्चित है। इसी युग में रामलिंग स्वामिगल भी थे।

4. आधुनिक काल

जिस प्रकार हिन्दी भाषा में नवजागरणवादी चेतना का आगमन हुआ, उसी प्रकार तमिल साहित्य में भी आधुनिक काल में नवजागरणवादी प्रवृत्तियों का उदय हुआ। तमिल साहित्य के नवजागरणवादी प्रमुख कवियों में सुब्रह्मण्यम् भारती, भारतीदासन, शुद्धानन्द भारती, देशिक विनायक पिल्लै, कोत्तागंगलम सुब्बु, नामक्कल रामलिंगम पिल्लै एवं कंबदासन आदि प्रमुख है। 1950 ई. के बाद तमिल साहित्य में नई तरह की कविता का (आधुनिक मूल्यों से युक्त) प्रादुर्भाव हुआ। इस धारा के प्रमुख कवियों में अचलांविकै अम्मैयार, नानल, सोमू, बालभारती, तूरन, वापणीदासन, के. एम. बालसुब्रह्मण्यम्, कृष्णदासन, त्रिलोक सीताराम, भास्करन, दुरैसामी, कुलियन, करूणानिधि , के. वी. जगन्नाथन, तंगवेलन, अकलन इत्यादि है।

तेलुगु भाषा एवं साहित्य

दक्षिण भारतीय भाषाओं में तेलुगु भाषा का अपना विशाल साहित्य है। भाषा के अर्थ में 1000 ई. केबाद इसका विकास हुआ। 1200 ई. के बाद साहित्यिक दष्टि से इसका विशेष प्रचार एवं प्रसार हुआ है। तेलुगु साहित्य को तीन कालों में विभाजित किया गया है-

1. **आदिकाल 2. मध्यकाल 3. आधुनिक काल ।**

1- आदिकाल- आदिकाल का एक नाम 'प्राग्नवदयुग' भी है । इसका समय 1000 ई. से 1380 ई. तक माना गया है। नन्नय भट्ट, तिकन्ना एवं एर्ना को तेलुगु साहित्य का कवित्रय कहा गया है। नन्नय भट्ट तेलुगु के आदि कवि कहै गये हैं। इन्होंने ''आन्ध्र महाभारतम्'' की रचना की है। आदिकाल की अन्य कृतियों में वासवेश्वर द्वारा 'वीर शैव धर्म' का प्रवर्त्तन किया गया है। तेलुगु का प्राचीनतम रामायण गोन बुद्धा रेड्डि द्वारा रचित 'रंगनाथ रामायण' है। पुराण साहित्य पर कार्य की दृष्टि से महाकवि श्रीनाथ एवं पोतन्ना की गणना की जाती है।

2- मध्यकाल - मध्यकाल को प्रबन्ध युग भी कहा गया है। इस नामकरण का अधार इस युग में बहुत से प्रबन्धों की रचना का होना है। कृष्णदंवराय के दरबारी कवियों में

अल्लासानि पेद्दना, नंदि तिम्मना, रामभद्र, घूर्जटी, मल्लना, तैनालि रामकृष्ण, पिंगलिसूरना और भट्टमूर्ति आदि हैं।

3- आधुनिक युग- वीरेशलिंगम, वडडादि सुब्बाराव जयंति रामय्या, सुब्बाराव, वासुदेवशास्त्री, श्रीपाद कृष्णमूर्ति, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि कवियों ने राष्ट्रीय मनोवृत्तियॉ विकसित करने में विशेष भूमिका निभाई। तेलुगु साहित्य की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों में स्वच्छन्दतावाद, अभ्युदय कविता (प्रगतिशील काव्यान्दोलन), प्रयोगवाद और नई कविता, साठोत्तरी कविता इत्यादि धाराएँ मिलती है।इस दृष्टि से ये हिन्दी कविता की तरह ही, उसी क्रम से विकसित हुए हैं।

कन्नड भाषा एवं साहित्य

कन्नड़ साहित्य का इतिहास 2-5 वीं सदी के बीच में मिलता है। कन्नड़ साहित्य को सुविधा की दृष्टि से आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिककाल में विभक्त कर सकते हैं।

आदिकाल - 950 ई. ' 1150 ई के बीच के समय का कन्नड़ साहित्य का स्वर्णयुग कहते हैं। इस काल जिन्हें रत्नत्रयी या कवित्रय कहा जाता है। पंप ने दो काव्यों की रचना की है- आदिपुराण एवं विक्रमार्जुन विजयम्। पोन्न द्वारा रचित कृतियों में 'शातिपुराण' नाम कृति का विशेष महत्त्व है। रन्न ने अजितपुराण, गदायुद्धम या सहसभीम-विजयम् जैसी कृतियों का रचना की है। इस युग के अन्या लेखकों में नागचन्द्र, चावुंड, नाग वर्मा, केशिराज, नेमिचन्द्र, रूद्रभट्ट, हंरिहर, राघवांक आदि प्रमुख है।

मध्यकाल - कन्नड़ साहित्य का मध्यकाल 1200-1400 ई. तक माना जाता है। इस काल के प्रमुख आन्दोलनों में 12 वीं शताब्दी के वीरशैववाद की गणना की जाती है। इसके उत्प्रेरक बसवेश्वर थे। इस आन्दोलन के माध्यम से 'वचन शैली' का प्रादुर्भाव हुआ। 12 वीं शताब्दी से 15 वी शताब्दी तक का काल' वसवयुग' कहा जाता है। वंसवेश्वर इस क्रान्ति के उत्प्रेरक थे।

इसी प्रकार कर्नाटक में वैष्णव साहित्य की भी समृद्ध परम्परा नही है। यहाँ कृष्णभक्ति को प्रचारित करने में श्री मध्वाचार्य की प्रमुख भूमिका है।

आधुनिककाल- 17 वीं सदी के बाद कन्नड़ साहित्य का ह्रास होना प्रारम्भ होता है। 17-19वीं सदी तक कन्नड़ साहित्य में अंधकार काल के नाम से जाना जाता है। 19वीं सदी के बाद से कन्नड़ साहित्य में आधुनिक काल का प्रवेश होता है। बेन्द्रे, मंगलूर, विनायक कृष्ण गोकाक, श्री कंठप्पा, क. शंकरभट्ट ने देशभक्ति को कन्नड़ साहित्य से जोड़ा। कन्नड़ साहित्य में स्वच्छन्द तावाद (भावगीत), प्रगतिशील चेनता एवं प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियॉ हिन्दी साहित्य के क्रम में ही देखने को मिलता है।

मलयालम भाषा एवं साहित्य का इतिहास

मलयालम भाषा, तमिल भाषा की एक शाखा के रूप में विकसित हुई है। मलयालम भाषा का इतिहास चौथी सदी से स्पष्ट रूप से दिखने लगता है, किन्तु इसका साहित्य 13 वीं सदी से व्यवस्थित रूप से मिलना प्रारम्भ होता है। मलयालम भाषा एवं साहित्य को सुविधानुसार तीन कालों में विभक्त किया गया है- 1. आदिकाल 3. मध्यकाल 3. आधुनिककाल

1. आदिकाल- आदिकालीन मलयालम साहित्य में तीन सम्प्रदाय देखने को मिलते हैं- 1. पच्च मलयालम (शुद्ध मलयालम भाषा में अभिव्यक्ति) 2. तमिल सम्प्रदाय 3. संस्कृत सम्प्रदाय। पच्च मलयालम में मुख्य रूप से लोकगीत है। इसके रचनाकार रामवीर वर्मा है। संस्कृत सम्प्रदाय में लीला तिलकम्, संदेश काव्य इत्यादि महत्त्व पूर्ण कृतियाँ है।

2. **मध्य काल** (भक्तिकाल एवं श्रृंगारिक काव्य)

मलयालम के भक्तिकाल में संतसाहित्य के कुछ सूत्र हमें 'देवीपाट्टु' और लोकगीतों में मिलते हैं । किन्तु प्रबंध गीतिकाव्यों में सबसे प्रसिद्ध रचना 'कृष्णगाथा' है। इसके रचनाकार चेकश्शेरी नंबूतिरी है। एषुतच्छन द्वारा विरचित विलिप्पाट्टु भी इस युग की महत्त्व पूर्ण रचना है। 14 वीं से लेकर 17 वीं शताब्दी तक मलयालमक भाषा में चंपूकाव्यों की लम्बी परम्परा भी हमें देखने का मिलता है। इनमें 'रामायण चंपू' सबसे प्रसिद्ध है।

19 वीं सदी में वेणमिण नंपूतिरिप्पाट ने श्रृंगारिक एवं मार्मिक पदों की रचना कर श्रृंगारिक पदों की शुरूआत की। 'प्रबन्धम्' वेण्मणि का श्रृंगारिक काव्य है। इसी प्रकार संदेश काव्य परम्परा में ''उण्णुनीलि संदेश' का भी महत्त्व पूर्ण स्थान है

3. **आधुनिककाल** - 19 वीं सदी से करेल वर्मा से मलयालम भाषा में नई चेतना का प्रवेश होता है। के.सी. पिल्लई, ए.आर. राजराज वर्मा एवं सी.एस. सुब्रह्मण्यम्पोट्टी के माध्यम से नवीन भाव बोध मलयालम साहित्य को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार 20 वी शताब्दी में कुमार असन, वल्लतोल एवं उल्लूर के माध्यम से मलयालम साहित्य का प्रचुर विकास हुआ।

5.3.2 पूर्वी साहित्य का इतिहास

पूर्वी भाषा में प्रमुख रूप से बंगला, उड़िया एवं असमिया भाषा के साहित्य की गणना की जाती है। यहाँ संक्षेप में हम नई भाषाओं के इतिहास का अध्ययन करेंगें।

बंगला साहित्य का इतिहास

बंगला भाषा का सम्बन्ध मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। बंग भाषा की बोली होने कारण इसका नाम बंगला पड़ा है। बंगला भाषा व साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया गया है। 1. प्राचीनकाल या आदिकालीन साहित्य (950से 1350ई. तक) 2. मध्यकाली बंगला (1350 से 1800 ई. तक) 3. आधुनिक बंगला साहित्य (1800 ई. से आज तक)

1. **प्राचीनकाल का बंगला साहित्य** - सिद्धों के चर्यागीतों को प्राचीन बंगला साहित्य का प्राचीनतम साहित्य कहा जाता है। बौद्ध- नाथ साहित्य के अतिरिक्त जयदेव कृत 'गीत गोविन्द;' इस काल की विशेष उपलब्धि है।

2. **मध्यकालीन बंगला साहित्य**- मध्यकालीन बंगला साहित्य की प्रमुख कृतियों में कृतिवास ओझा की 'कृतिवास रामायण' बंगला साहित्य की उपलब्धि ही है। मालाधर बसु द्वारा लिखित, श्री कृष्ण विजय' प्रमुख प्रबन्धकाव्य है। चंडीदास रचित 'श्रीकृष्ण कीर्तन' अपने गीतात्मकता के कारण उल्लेखनीय है। चैतन्य महाप्रमभु द्वारा रचित 'चैतन्यचरितामृत' इस युग की विशिष्ट कृति है। मध्यकाल की अन्या उल्लेखनीय बंगला कृति में 16 वीं सदी का मंगलकाव्य एवं दौलत काजी रचित 'लोरचन्द्राणी' विशेष उल्लेखनीय है।

3. **आधुनिककालीन बंगला साहित्य-**

भारतीय भाषाओं में नवजागरणवादी स्वर प्रदान करने में बांगला भाषा एवं साहित्य की महत्त्व पूर्ण भूमिका रही है। चाहै वह फोर्टविलियम कॉलेज का गद्य साहित्य रहा हो या प्रथम हिन्दी समाचार पत्र उदन्त मार्तण्ड। नवजागरणवादी चेतना के प्रवक्ताओं में ईश्वर चन्द्रगुप्त, रंगालाल, मधुसूदन, हैमचन्द्र एवं नवीनचन्द्र की महत्त्व पूर्ण भूमिका रही है।

इसी प्रकार स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के विकास में भी बंगला साहित्य की महत्त्व पूर्ण भूमिका रही है। विहारीलाल चक्रवर्ती, सुरेन्द्रनाथ मजूमदार, द्विजेन्द्रनाथ टैगोर, देवेन्द्रनाथ सेन, गोविन्द्रचन्द्रदास, द्विजेन्द्रलाल राय एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर इस प्रकृति के प्रमुख कवि हैं। गद्य साहित्य में भी बंगला साहित्य का महत्पर्ण योगदान रहा है। बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, ताराशंकर वंद्योपाध्याय, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय, वुद्धदेव वसु इत्यादि प्रमुख कथाकार रहै हैं।

उड़िया भाषा एवं साहित्य का इतिहास

उड़िया भाषा का ऐतिहासिक साक्ष्य लगभग 1000 वर्ष पुराना है। सुविधा की दृष्टि से इसे भी तीन कालों में विभाजित किया गया है।-

1. **आदिकाल 2. मध्यकाल 3. आधुनिककाल**

1. **आदिकाल**- सिद्धों- नाथों की कुछ रचनाएँ बंगला के साथ ही उड़िया भाषा में भी मिलती हैं। 'बौद्धगान ओ दोहा' के कवि-लुइपा, कन्हपा एवं शबरपाद उत्कल (उड़िया) के ही थे। उड़िया साहित्य में सरलादास के 'महाभारत' का विशेष गौरव है। इस रचना ने उड़िया जनता की चेतना, उनके आदर्श व जातीय चेतना को उभारने में सर्वाधिक योग दिया है। उड़िया साहित्य में इस युग को पंचसखा- बलरामदास, जगन्नाथदास, अनंतदास, यशवंतदास, अच्चुतानंददास- के नाम से भी जाना जाता है। इसी प्रकार जगन्नाथ दास के भागवत को भी उड़िया समाज में ''उड़िया जनता की बाइबिल'' की संज्ञा प्राप्त है।

2. **मध्यकाल** - धनंजयभंज को मध्यकाल का प्रतिष्ठापक कहा जाता है। धनंजयभंज की 'रघुनाथ विलास' प्रसिद्ध रचना है। 'नीलाद्रि- महोत्सव' इनकी एक अन्य प्रसिद्ध कृति है। इन्हीं के समकालीन दीनकृष्णदास का 'रसकल्लोल' प्रसिद्ध रचना है। उपेन्द्रभंज मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि है। इनकी रचनाओं में लावण्यवती, कोटिब्रह्मंड सुन्दरी, आदि प्रमुख रचनाएँ हैं। इस काल के अन्य प्रसिद्ध कवियों में - सदानन्द कवि सूर्यब्रह्मा, केशव पटनायक, ब्रजनाथ बलचैना, कृष्णसिंह, विश्वम्भर दास, कवि सूर्य बल्देव रथ, गोपाल (कृत गीतवली), भीमा भाँई आदि हैं।

3. **आधुनिककाल-** 1879 ई. में आधुनिक उड़िया साहित्य का प्रवर्त्तन हुआ। 1873 ई. में राधानाथ, मधुसूदन की कवितावली प्रकाशित हुई, 1873 ई. में उत्कलदर्पण प्रकाशित हुआ। रामशंकर ने प्रथम उपन्यास लिखा। आधुनिक उड़िया साहित्य में राधानाथ, मधुसूदन और फकीरमोहन का विशिष्ट स्थान है। राधानाथ की चिलिका, मधुसूदन राव की कविताएँ तथा फकीर मोहन सेनापति को छमाण, आठ गुण्ठ, भामू लछमा, प्रायश्चित काल के अन्या उड़िया साहित्यकारों में गोपबन्धुदास का विशिष्ठ स्थान है। गोपबन्धुदास दास द्वरा विरचित

'राष्ट्रीयसत्यवादी बनविद्यालय' का उड़िया साहित्य के विकास में क्रान्तिकारी महत्त्व है। उड़िया के अन्य कवियों में चिंतामणि महति, कुंतलाकुमारी, लुक्ष्मीकांत महापात्र, कृपासिन्धुमित्र, चन्द्रमणिदास आदि उल्लेखनीय है। सन् 1935 ई. के बाद में भगवती चरण पाणिग्रही ने' नवयुग साहित्य संसद' नामक संस्था की स्थापना की और 'आधुनिक' शीर्षक से एक मासिक पत्र का प्रकाशन भी किया। कालिंदीचरण पाणिग्रही और बैकुंठनाथ अतीन्द्रिय ने उड़िया कविता में क्रान्ति का स्वर तेज किया।

असमिया भाषा एवं साहित्य का इतिहास

असम प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा होने के कारण इसका नाम असमिया पडा है। इसका अन्य नाम प्राग्ज्योतिश व कामरूप भी है। असमी भाषा का समब्न्ध मागधी अपभ्रंश से है। असमिया साहित्य को चार कालों में विभाजित किया गया है।

1. **प्राक्वैष्णकाल 2. वैष्णवकाल 3. बुरंजी गद्यकाल 4. आधुनिककाल।**

1. **प्राक्वैष्णकाल**- सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री छेनसांग ने असमिया भाषा का उल्लेख किया है। मत्स्येन्द्रनाथ तथा सरहपाद क जन्म कामरूप (आसाम) ही माना गया है। सिद्धों द्वारा विरचित चर्यापद / चर्यागीतों का कुछ सम्बन्ध आसाम से भी है। असाम के रचनाकार डाक की सूक्तियों पर वैष्णव विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव है। 'प्राक्वैष्णवकाल' नामकरण के पीछे यही तर्क दिया गया है। माधव कंदली इस काल के श्रेष्ठ कवि है- उनकी रामायण व देवजित काव्य प्रमुख रचनाएँ हैं। हैम सरस्वती की ''हरगौरीसंवाद'' में जयद्रथ-वध की कथा को आधार बनाय गया है।

2. **वैष्णवकाल** - वैष्णवकाल में श्री शंकरदेव व उनके शिष् माधवदेव की कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं इनके माधम से असमिया साहित्य में पुनर्जागरण का प्रवेश माना जाता है। शंकरदेव एवं माधवदेव की रचनाओं में असमिया साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया। शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित 'शरणिया पंथ' ने सर्वमान्य की एकता पर बल दिया। माधवदेव ने वरगती, चोरधरा, पिम्परा, गुचुवा आदि नाटकों के माध्यम से वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। अनन्त कन्दली और राम सरस्वती इसी काल के प्रसिद्ध कवि थे।

3. **बुरंजी गद्यकाल**-ब्रजबुलि मिश्रित गद्य को ही बुरंजी गद्य कहा गया है। असमिया गद्य का प्रारंभिक सूत्र शंकरदेव और माधवदेव के नाटकों में मिलता है। भट्टदेव ने भगवतपुराण और भगवद्गीता का, गोपालचन्द्र द्विज ने भक्तिरत्नाकर का, रघुनाथ महन्त की कथारामायण अज्ञात लेखक की पद्मपुराण, कृष्णानन्द का सत्यता तंत्र और कथाघोषा प्रसिद्ध गद्य रचनाएँ हैं।

4. **आधुनिक काल**- असमिया साहित्य में आधुनिकता का प्रेवश 19वीं शताब्दी में हुआ। आनन्दराम ढेकियाल फूकन ने असमिया साहित्य को राष्ट्रीय नवजागरण एवं गौरव से जोड़ा । इसके बाद चन्द्रकुमार अग्रवाल, लक्ष्मीकान्त, बेजबरूआ, हैमचन्द्र गोस्वामी, पद्मनाथ गोहांई बरूआ जैसे लेखक आधुनिक असमिया साहित्य के निर्माता कहै जाते हैं।

5.3.3 पश्चिमी साहित्य का इतिहास

पश्चिमी साहित्य में प्रमुख रूप से मराठी, गुजराती एवं पंजाबी साहित्य का अध्ययन किया जाता है। यहाँ संक्षेप में हम इन भाषाओं का इतिहास देखने का प्रयास करेंगे।

मराठी भाषा एवं साहित्य का इतिहास-

मराठी का संबंध महाराष्ट्री प्राकृत से बाताया गया है। मराठी भाषा का प्राचीनतम समय 9 वीं सदी में स्थिर किया गया है। किन्तु साहित्य के रूप में इसका समय 12 वीं शताब्दी के आस-पास स्थिर किया गया है। मराठी के आदिकवि हैं। इनका ग्रन्थ विवेकसिन्धु है।

मराठी साहित्य का काल विभाजन-

मराठी साहित्य को प्रमुख रूप से दो कालों में विभक्त किया गया है-

1. **प्राचीनकाल** (1000-18000 ई. तक)
2. **आधुनिककाल** - 1800 ई. के बाद का साहित्य

1. प्राचीनकाल मराठी साहित्य को 6 वर्गों में विभाजित किया गया है- महानुभावकाल, ज्ञानेश्वर-नामदेवकाल, एकनाथकाल, तुकाराम- रामदासकाल, मोरोपंतकाल, प्रभाकर राम जोशीकाल

गुजराती भाषा एवं साहित्य का इतिहास

गुरजराती प्रेदश में बोली जाने के कारण इसे गुजराती कहा गया है। माना जाता है कि गुजराती का विकास गुजराती के नागर अपभ्रंश से हुआ है।

गुजराती साहित्यः काल विभाजन

गुजराती साहित्य को तीन कालों में विभक्त किया गया है-

1. **आदिकाल** (हैमयुग, रासयुग) सन् 1000 से 1500 तक।
2. **मध्यकाल**: (नरसिंहयुग, नाकर युग, श्यामल युग, प्रेमानन्द युग, दयारामयुग) सन् 1500 से 1850 तक
3. **आधुनिक कालः** (दलपत- नर्मदयुग, गोवर्द्धन युग, गांधीयुग आदि।) सन् 1850 से आज तक

गुजराती भाषा के प्रमुख साहित्यकारों में धनपाल, हैमचन्द्र, शालिभद्रसूरि, नरसिंहमेहता, मीराबाई, भालण, पदमनाथ, मांडण, नाकर, प्रेमानन्द, शामल भट्ट, प्रीतमदास, दयाराम, दलपतराम, नर्मदाशंकर, गोवर्धनराम, महात्मा गांधी, काका कालेकर, कन्हैयालाल मुंशी इत्यादि हैं।

पंजाबी भाषा एवं साहित्य का इतिहास-

पंजाब प्रदेश में बोली जानेवाली भाषा होने के कारण इस भाषा का नाम पंजाबी पड़ा है। पंजाबी का अर्थ है- पाँच नदियों का देश। पंजाबी भाषा की लिपि गुरूमुखी है।

पंजाबी साहित्य का काल विभाजन

1. **आदिकाल 2. मध्यकाल एवं 3. आधुनिक काल**

1. **आदिकाल** पंजाबी साहित्य में उल्लेखनीय साहित्य नहीं है। सिद्ध-नाथ साहित्य का एक हिस्सा पंजाबी से जरूर संबंधित रहा है।

2. **मध्यकाल-**

मध्यकाल का पंजाबी साहित्य विशेष उल्लेखनीय रहा है। मध्यकाल में पंजाबी की चार काव्य परम्पराएँ देखने को मिलती है- सूफी परम्परा, गुरूनानक की संत परम्परा, किस्सा और वार।

सूफी परम्परा में शेख फरीद, शाह हुसैन बुल्लेशाह और सिहरफी आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

सिक्ख गुरूओं की परम्परा का आधार ग्रन्थ '' ग्रन्थ साहिब'' है। ग्रन्थ साहिब सिक्ख गुरूओं की वाणियों का संकलन है। इस परम्परा में गुरूनानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन एवं गुरू तेग बहादुर की रचनाएँ संकलित है।

किस्सा और वार प्रमुखतः प्रेमकथा है। बुल्लेशाह और वारिस शाह इस परम्परा के प्रमुख कवि हैं।

3. **आधुनिक काल-**

19 वीं शताब्दी के बाद से पंजाबी भाषा एवं साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश हुआ। भाई वीरसिंह , पूरनसिंह, धनीराम इत्यादि इस युग के चर्चित रचनाकार हैं।

5.3.4 हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य का इतिहास

शाब्दिक रूप में भले ही हिन्दी शब्द का प्रयोग पांचबी-सातवीं शताब्दी से मिलने लगता है, किन्तु साहित्य के रूप में इसका इतिहास 7वीं शताब्दी से माना जाये या 10वीं-11वीं शताब्दी से, यह प्रश्न अवश्य विवादित रहा है। अपभ्रंश की रचनाओं को हिन्दी साहित्य में सम्मिलित किया जाये कि नहीं, यह प्रश्न विवादित ही रहा है। फिर भी मोटे रूप में 10वीं-11वीं शताब्दी से अधिकांश लोगां ने हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ माना है। हिन्दी भाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है। संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश -हिन्दी का भाषा विकास क्रम स्थिर किया गया है।

हिन्दी भाषा एवं साहित्य के इतिहास के 4 भागों में विभक्त किया गया है।

आदिकाल - 1000-1400 ई.
भक्तिकाल - 1400-1650 ई.
रीतिकाल - 1650 - 1850 ई.
आधुनिक काल - 1850 ई. से अब तक

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणी कीजिए।

1. तमिल साहित्य का काल विभाजन

.....

.....

.....

.....

2. मराठी साहित्य का काल विभाजन

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. तमिल साहित्य के प्राचीन युग को.....कहा गया है। (संगमकाल/परवर्ती काल/उत्तरकाल)
2. शिप्पदिकाराम्.....साहित्य का महाकाव्य है। (तेलुगु/मलायलम/तमिल)
3. तेलुगु आदिकाव्य का एक नाम ..... है। (प्रबन्धयुग/प्राग्नबदयुग/मध्यकाल)
4. कन्नड़भाषा के रत्नत्रय नहीं हैं। (पंप/पोप/बसवेश्वर)
5. मलायलम भाषा में ..... काल माने गये हैं। (5/3/10)

सत्य / असत्य का चुनाव कीजिए।

1. बंकिमचन्द्र चटर्जी बंगला भाषा के साहित्यकार है।
2. जगन्नाथदास की भागवत को उड़िया की बाइबिल कहा गया है।
3. शंकरदेव तमिल भाषा के साहित्यकार हैं।
4. मराठी पश्चिमी साहित्य के अंतर्गत आता है।
5. हैमचन्द्र गुजराती भाषा के साहित्यकार हैं।

5.4 भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

प्रमुख भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि कुछ ऐसे तत्व हैं जो प्रायः भारतीय भाषाओं में मिलते हैं सर्वप्रथम समानता का तत्व है भाषाओं का काल विभाजन। प्रायः भाषाएँ आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिककाल में विभक्त है। हाँ इस संदर्भ में साहित्य के प्रारम्भ होने का समय अवश्य अलग है, लेकिन आधुनिककाल का समय प्रायः भाषाओं में समान है। इसका अर्थ यह है कि आधुनिक चेतना का आगमन भारतीय भाषाओं की यह है कि भक्तिकालीन प्रवृत्तियाँ प्रायः भाषाओं में पाई जाती है। हिन्दी, पंजाबी, मराठी, बंगला जैसी भाषाओं के तो कालक्रम में भी काफी सामनता है। तीसरी समानता गद्य के स्तर पर है। गद्य का व्यापक रूप में प्रयोग भी आधुनिक काल में देखने को मिलता है, जो प्रायः भाषाओं में हम

देख सकते हैं। इसी प्रकार स्वच्छन्दतावादी, प्रगतिवादी एवं यर्थाथवादी प्रवृत्तियों में भी काफी हद तक साम्य देखने को मिलता है।

5.6 सारांश

एम.ए.एच.एल-204 की यह पांचवी इकाई है। यह इकाई भारतीय साहित्य के इतिहास से संबंधित है। इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- भारतीय साहित्य के इतिहास में दक्षिणी, उत्तरी , पूर्वी एवं पश्चिमी भाषाओं के साहित्य एवं भाषा के इतिहास का अध्ययन किया जाता है।
- आपने अध्यन किया कि प्रत्येक भाषा में महाकाव्यों की समृद्ध परम्परा रही है। चाहै वह तमिल साहित्य हो, हिन्दी साहित्य हो या तेलुगु साहित्य।
- रामायण एवं महाभारत जैसे जातीय महाकाव्य भारत की कई भाषाओं में रचित हुए हैं। तमिल, तेलुगु, उड़िया, मराठी, बंगला जैसी भाषाओं ने इन महाकाव्यों को अपनी संस्कृति के अनुरूप रचा है।
- भारतीय भाषाओं में बहुत भिन्नता है है, लेकिन प्रायः भाषाओं के विकास क्रम को आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक के अंतर्गत रखकर ही विश्लेषित किया गया है।
- आधुनिक प्रवृत्तियों का आगमन मोटे रूप में प्रायः भारतीय भाषाओं में थोडे-बहुत काल के अन्तराल में देखने को मिलता है।

5.7 शब्दावली

- जातीय चेतना - किसी भाषा एवं प्रदेश की मूलभूत विशेषताओं से युक्त चेतना।
- सार्वभौमिक - व्यापक जीवन का बोध कराना।
- कवित्रय - एक ही भावधारा से युक्त तीन कवियों का समूह।
- प्रबन्ध - कथा विकास को लेकर चलने वाली विधा।
- नवजागरण - आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से युक्त चेतना
- प्राक् - पूर्व का
- ब्रजबुलि - ब्रज, असमिया - उड़िया से मिश्रित भाषा।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 2

(1)

1. संगमकाल
2. तमिल
3. प्राग्नबदयुग
4. बसवेश्वर
5. 3

(2)

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय साहित्य -त्रिपाठी, रामछबीला, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2008।
2. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास - (सं) नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण 2009।

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक अध्ययन - (सं) राजूरकर, भ.ह. एवं बोरा, राजमल

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दक्षिण के प्रमुख भाषाओं का ऐतिहासिक विकास क्रम वर्णित कीजिए।
2. पूर्वी क्षेत्र की भाषाओं का विकास क्रम निर्धारित कीजिए।

इकाई 6 तेलुगु साहित्य का इतिहास एवं परिचय - 1

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 तेलुगु साहित्य का इतिहास
6.3.1 प्रांग नन्नय युग/पूर्व नन्नय युग (तेलुगु साहित्य का आदिकाल)
6.3.2 तेलुगु साहित्य का काव्य युग (सन् 1000 से 1850)
6.3.3. तेलुगु साहित्य का आरंभिक काल (सन् 1001 से 1150 तक)
6.3.4 तेलुगु साहित्य का पूर्व मध्यकाल (सन् 1151 से 1500)
6.3.5 तेलुगु साहित्य का उत्तर मध्यकाल (सन् 1501 से 1700)
6.3.6 तेलुगु साहित्य का तृतीय काल (सन् 1701से 1850)
6.3.7 तेलुगु गद्य साहित्य का विकास (नन्नय से सन् 1850 ई. तक)
6.3.8 तेलुगु साहित्य के विविध काव्य रूप
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.7 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

तेलुगु साहित्येतिहास एवं उसके विविध कालों का विवेचन किया गया है। तेलुगु साहित्य लेखन की परम्परा संस्कृत के 'महाभारत', 'रामायण', 'भागवत' तथा अन्य पुराणों आदि को आधार बना कर शुरू की गयी। संस्कृत के विषयों को लेकर तेलुगु साहित्यकारों ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा के द्वारा विषय को सर्वथा नवीन बना दिया। तेलुगु साहित्यकारों की प्रतिभा को देखकर ही साहित्योतिहास लेखकों ने कवियों के आधार पर काल, विभाजन किए। जैसे- प्रांग नन्नय, नन्नय, शिव कवि, तिक्कना, एईना, श्रीनाथ आदि के नाम पर काल विभाजन किया गया है। तेलुगु साहित्य में गद्य रूप प्रारंभ से ही प्राप्त होती है। तेलुगु साहित्य में गद्य रूप प्रारंभ स ही प्राप्त होती है। आदि कवि नन्नय भट्ट द्वारा चंपू शैली अपनाये जाने के बाद लगभग सभी साहित्यकार इस शैली को अपनाते हुए साहित्य सर्जना करते हैं। तेलुगु का आधुनिक गद्य, पद्य रूप सतत् विकासमान है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के आप-

- तेलुगु साहित्येतिहास से परिचित होंगे।
- तेलुगु साहित्य के चंपू काव्य से अवगत होंगे।
- तेलुगु साहित्य के विविध काव्य रूप की जानकारी मिलेगी।
- तेलुगु साहित्य रचना के मूल विषय की जानकारी प्राप्त होगी।
- तेलुगु के अद्वितीय कवियों से परिचित होंगे।

6.3 तेलुगु साहित्य का इतिहास

आदिकाल से अब तक तेलुगु भाषा तीन नामों से जानी जाती है। 'आन्ध्र', 'तेलुगु' और 'तेनुगु' नाम आदिकवि नन्नय और नन्नेचोड्ड ने अपनी काव्य-भाषा हेतु प्रयुक्त किया था। तिक्कन्ना ने 'तेनुगु' और 'तेलुगु' दोनों शब्द प्रयुक्त किए थे। जबकि कृष्णदेवराय ने 'देशभाषालन्दु तेलुगु' (देशी भाषाओं में तेलुगु श्रेष्ठ है) कहकर तेलुगु की मिठास को स्पष्ट किया है। यद्यपि प्राचीन काल में तेलुगु शब्द तेलुंग, त्रिलिंग, तिलंग, तेलिंग, तेलंग आदि रूपों में प्रयुक्त होता रहा तथापि तेलुगु शब्द के विकास को गंटिजोगि सोमयाजी ने अपनी कृति 'आंध्र भाषा विकासमु' में दर्शाया है। वर्तमान में राजनीतिक जागृति और राष्ट्रीय भावना के उत्थान के कारण 'आन्ध्र' शब्द की जनप्रियता बढ़ी है किंतु तेलंगाना और रायलसीमा आदि जिलों में 'आंन्ध्र' की जगह 'तेलुगु' और 'तेलगंना' शब्द का मोह है। भारतीय राज्यों का भाषायी आंन्ध्रप्रदेश पहला उदाहरण है। आंन्ध्रप्रदेश की भाषा तेतु (ड) गु और तेतु (ड) गु धातु रूप की प्राचीनता सर्वज्ञाता है।

6.3.1 प्रांग नन्नय युग/पूर्व नन्नय युग (तेलुगु साहित्य का आदिकाल)

ईसा पूर्व की प्रथम शती से लेकर ईसा की ग्यारहवीं शतीं तक इस भाषा में अनेक लोक कथायें, लोकगीत, ताम्रपत्र एवं शिला लेख प्राप्त हुए है। बारह सौ वर्षों के दीर्घकाल को तेलुगु साहित्य का आदिकाल माना जा सकता है। आंध्र प्रदेश की सामाजिक, सांस्कृतिक सुरूचि का पता इस बात से चलता है कि इस काल में भौतिक सुख-सुविधाओं से ऊपर उठकर परोक्ष-जगत् की चर्चा मनीषियों में होती रहती थी। दैनिकचर्या जब लोकगीतों के रूप से फूट पड़े तो उस समाज की उन्नति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। बारहवीं शती में जो सोमनाथ कृत 'बसव पुराण' में उस काल के पद में 'गोविंदपद, बोलशुपद, वेललु, जोललु, तुम्मेद-पदमुलु' जैसे पदों की प्रयुक्ति का उल्लेख किया है। इस काल के शिलालेखों के दान प्राप्त करने वाले व्यक्ति का जाति समेत नाम तथा देने वाले के 'विरूदु' (उपाधि), पद, प्रतिष्ठा के साथ ही देय वस्तु का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यद्यपि इस काल की भाषा स्थिर नहीं थी तथापि व्यवहार में प्रयुक्त भाषा को व्याकरणिक नियम रहित प्रयोग किया जाता था। जिससे वर्ण्य-विषय में दोष देखा गया है। चोलों और चालुक्यों के शिलालेखों के अध्ययन पूर्व होने पर ही इस काल की भाषा का स्वरूप निश्चित किया जा सकता है। आदिकवि नन्नय भट्ट से 25-30 वर्ष पूर्व के प्राप्त शिलालेखों में संस्कृत का शब्दतः अनुकरण किया गया है। 'पडरंग (सेनानी) के शिलालेखों में सीसपद्य का प्रयोग हुआ है तो विजयवाड़ा के मुछदमल्लु के शिलालेखों में 'मध्याक्कर' छंद का , जो तेलुगु के अपने छंद हैं। इस प्रकार प्राचीन शिलालेखों में सीसमु, तरूवोज, अक्कर, गातिका (तेलुगु) आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं। अतः शिलालेखों के आधार पर नन्नयभट्ट से पूर्व भी तेलुगु साहित्य का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। नवीं से ग्यारवीं शताब्दी में बीच कन्नड़ के कवि पम्प कृत 'विक्रमार्जुन विजय', नामक पुस्तक जो 942 ई. में समाप्त हुई, अत्यंन्त महत्पूर्ण है। पम्प एवं कवि रत्न ने स्वयं को बेंगी देश के निवासी अर्थात् तेलुगु भाषी कहा है। नन्नय भट्ट ही तेलुगु के प्रथम कवि सिद्ध होते हैं। तेलुगु में उस समय तक जो कुछ लिखा गया, उसी को आधार बनाकर नन्नय भट्ट ने 'महाभारत' की रचना की । इस काल में बौद्ध एवं जैन साहित्य न के बराबर प्राप्त हुए हैं, जो कुछ मिले हैं वे शिलालेखों के रूप में । अतः आंध्र भाषा को काव्य रूप में प्रतिष्ठित करने वाले सर्वप्रथम कवि नन्नय भट्ट ही हैं ।

6.3.2 तेलुगु साहित्य का काव्य युग (1000-1850)

उत्तर भारत जहाँ राजनैतिक विप्लवों से सदा आक्रांत रहा वहीं दक्षिण भारत शांति काल में पल्लवित होता रहा। राजा भोज का 'चंपू रामायण' उनकी प्रतिभा को सहज स्पष्ट करता है। राजा भोज के दर्शन मात्र से काव्य-स्फुरित हो उठता था। प्राचीन काल में कश्मीर में प्रतिष्ठित संस्कृत को राजा भोज ने इस काल में प्रतिष्ठत किया। ऐसे समय में जबकि संस्कृत भाषा की तूती बोल रही हो तेलुगु भाषा में की गयी स्वतंत्र रचनायें इसकी जिजीविषा को स्पष्ट करती है । तेलुगु काव्य की दो पद्धतियों का उल्लेख है।

1. मार्ग काव्य **2.** देशी काव्य

मार्ग काव्य - इसके अंतर्गत तेलुगु कवियों द्वारा अपनाई गई शैलियों को ध्यान में रखा गया है। इसमें रस, अलंकार, छंद आदि के साथ शिष्ट-जन-सम्मत भाषा का उपयोग किया गया है। इस काव्य का प्रधान लक्षण है रस। शब्दशक्तियों में अभिधार्थ की जगह इसमें लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ पर अधिक आसक्ति होती है।

देशी काव्य - इसमें कवि अपनी रूचि के अनुसार जन-रंजन के विषयों की चुनते हुए किसी भी घटना या कहानी को वर्ण्य विषय बना सकता है। जनता का मन-रंजन तथा परमार्थिक उपदेश इसका मुख्य उद्धेश्य होता है। लोक-प्रियता ही इन कवियों के छंद की शुद्धता मानी गई है। देशी काव्य की व्यंजना ताल, लय, मृदंग, भाव-भंगिमा पर आश्रित है।

मार्ग काव्य की दो धारायें - मार्ग काव्य की एक श्रेणी का नेतृत्व नन्नय ने और दूसरी का तिक्कना ने किया। नन्नय और उनके परवर्ती कवियों ने तेलुगु में अधिकृत और शिष्ट-जन-सम्मत शब्दों के साथ है। संस्कृत की शब्द संपदा का भी प्रयोग किया। इन्होंने तेलुगु के देशी शब्दों, छंदों के साथ संस्कृत के उपमानों, पुराण की प्रतीकात्मक कथाओं और अलंकारों का मणिकांचन प्रयोग किया। दूसरी श्रेणी के कवि तिक्कतना आदि ने संस्कृत के साहित्य-शास्त्र के सिद्धान्तों को पूर्णतः बहिष्कृत करते हुए देशी शब्दावली, देशी छंद और देशी उपमानों को काव्य में प्रमुखता दी। इस प्रकार देखा जाय तो आदिकाल से लेकर अद्यतन काल तक का तेलुगु साहित्य नन्नय भट्ट और तिक्कना की शैलियों का एक समान रूप से उत्तराधिकारी है।

मध्यम मार्ग - इन दानों परंपराओं से इतर कुछ तेलुगु कवियों ने छंद, अलंकारादि के संबंध में तिक्कना का और भाषा के संबंध में नन्नय भट्ट का अनुगमन किया। मध्यम मार्ग के प्रमुख कवि श्रीनाथ है।

तेलुगु साहित्य का प्रारंभिक काल और सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ - साहित्य अपनी समसामयिक परिस्थितियों की ऊपज होती है। हर्षवर्धन के पश्चात् की उत्तर भारतीय अराजकता और मुगलों का शासनारंभ समूल भारतीय आचार-विचार, परंपराओं पर व्यापक रूप से असरकारी था। ऐसे में आंध्रप्रदेश में सातवाहनों के बाद की राजनैतिक अस्थिरता चालुक्यों के उदय से दूर हो गयी थी। काकतीय राज्य के पतन और मुसलमानों के आगमन के समय उत्पन्न अस्थिरता विजयनगर की स्थापना से दूर हो गयी थी। ऐसे ही सुव्यवस्थित वातावरण में साहित्यादि कलाओं का पल्लवन हुआ। दसवीं शती से पूर्व आंध्र की जनभाषा का प्रयोग अत्यल्प ही हुआ किंतु दसवीं शती के पश्चात् राज्याश्रय पाकर तेलुगु भाषा साहित्य को मानों बल मिल गया गया हो।

विजयनगर साम्राज्य के पतन के पश्चात् आंध्र पराधीनता के दंश को झेलते हुए विखंडित होता गया। तेलुगु साहित्य का यह अंधकारपूर्ण युग था। अंग्रेजों के आगमन और नव्य ज्ञान-विज्ञान के परिचय से तेलुगु साहित्य की तंद्रा भंग हुई तो राष्ट्रीय आंदोलन के झोंके ने उसके आत्म-सम्मान को झकझोर कर रख दिया।

तेलुगु साहित्य के व्यस्थित अवलोकन हेतु चार भागों में बाँटा गया हैं, जो निम्नांकित हैं-

1. आरंभिक काल (सन् 1001ई. से 1150 ई. तक)
2. पूर्व-मध्य काल (सन् 1151 ई. से 1500 ई. तक)
3. उत्तरमध्यकाल (सन् 1501 ई. से 1700 ई. तक)
4. तृतीय काल (सन् 1701 ई. से 1850 ई. तक)

6.3.3 तेलुगु साहित्य का आरंभिक काल (सन् 1001 से 1150 तक)

इस काल में आंध्र पर चालुक्यों का व्यस्थित शासन स्थापित था। चारों ओर शांति, सुव्यवस्था का अलभग 450 वर्षों तक वातावरण बना रहा। इस काल में प्राकृत की जगह देशी भाषा तेलुगु का प्रयोग होने लगा था। चालुक्य नरेश राजराजा नरेन्द्र संस्कृत के राजा भोज की तरह तेलुगु में प्रसिद्ध है। कन्नड़ 'महाभारत' से प्रेरित होकर सर्वप्रथम तेलुगु में 'महाभारत' लिखने हेतु उन्होंने आदि कवि नन्नय भट्ट से प्रार्थना की । इस प्रकार तेलुगु की नियबद्ध और परिष्कृत पहली कविता तपोनिष्ठ, व्रती-महात्मा की साधना से मुखरित हुई।

नन्नय भट्ट - आंध्र के विस्तृत भाषा के सामान्य रूप को नन्नय भट्ट ने संस्कृत भाषा के ज्ञान और तेलुगु की प्रकृति द्वारा स्थिर किया। नन्नय भट्ट को 'महाभारत' की रचना में नारायणभट्ट की सहायता प्राप्त हुई। जिन्हें वे महाभारत के कृष्ण की भांति मानते हुए स्व्यं को अर्जुन माना है। उनकी इस पंक्ति में यही लक्षित हुआ है- ''पायक पाकशासनिकि भारत घोररणंबंनंदु नारायणभट्लु''। नन्नय भट्ट ने संस्कृत औद देशी छंदों को अपनाते हुए लोकसाहित्य परंपरा को अपनी कृति में यथोचित स्थान दिया।

इस काल में इन धर्मों का प्रभाव शिथिल हो चुका था। महाभारत के प्रणयन द्वारा वर्णाश्रम धर्म की पुरस्थापना तथा वेदशास्त्रसार द्वारा हिन्दू आस्थाओं को दृढ़ता प्राप्त हुई। नन्नय ने जैमिनी और कुमारिल की मान्यताओं की पुष्टि कर्मकांड की पुनर्स्थापना द्वारा की । नन्नय भट्ट की मूल भावना शुद्ध साहित्यिक सर्जना से ही प्रेरित थी। आंध्र में पंडित-परिश द की प्राचीन परंपरा रही है। पंडित का घर गुरूकुल की तरह होता था। इन परिश दों में नये काव्यों के गुण-दोषों का विवेचन किया जाता था। पंडित-परिश द नन्नय के महाभारत से पूर्व संस्कृत काव्यों पर चर्चा करते हुए उपयोगी कृतियों को अध्ययन-अध्यापन का माध्यम बनाती थी। किन्तु नन्नय के 'महाभारत' सभी विद्वानों ने 'रमणीय' माना, यह कवि की समन्वयात्मक बुद्धि का परिचायक है। आदिकवि नन्नय ने महाभारत के कई प्रसंगों को छोड़ा भी है, उन्होंने मानव-प्रकृति विश मताओं और अंतर्द्वद्वों को सुन्दररतापूर्वक चित्रित किया है। तेलुगु में उन्होंने कुछ नये काव्य-सिद्धान्तों को गढा़ है। काव्य के प्रारंभ में और आश्वास के अंत में छः पंक्तियों में अपने आश्रयदाताओं का गुण-विवेचन किया है। नन्नय भट्ट ने तेलुगु साहित्य का श्रीगणेश चंपू काव्य से किया। यथा अवसर गद्य-पद्य के प्रयोग से कविता प्रवाहमान बनी रही। नन्नय के पश्चात् तिक्कना ने भी 'महाभारत' को चंपू शैली में पूर्ण किया। इस प्रकार आदि कवि ने साहित्य सर्जना के द्वारा उनके लिए भी मार्ग प्रशस्त कर दिया जो कवि न थे किंतु साहित्य सेवा के आकांक्षी थे । कुछ विद्वान नन्नय को

''आंध्र भाषा वागानु शासनुडु'' (आंध्र भाषा के अनुशासक) उनकी व्याकरण कृति 'आंध्र शब्द चिन्तामणि के आधार पर मानते हैं।

नन्नेचोड़ - तेलुगु साहित्य में नन्नय भट्ट की परंपरा से इतर देशी शब्दों और देशी उपमानों को बढ़ावा देने वालों में नन्नेचोड़ का प्रमुख स्थान है। यह शैली तेलुगु साहित्य में वर्तमान काल तक प्रयुक्त हो रही है। नन्नेचोड़ के 'कुमार सम्भव' कृति को कुछ विद्वान महाभारत से पूर्व की कृति मानते हैं। नन्नेचोड़े ने संस्कृत काव्य-लक्षणों के स्थान पर आंध्र की लोक -शैली को अपनाया है। इन्होंने क्षेत्रीय तथा स्थानीय शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का अधिकाधिक प्रयोग 'कुमार संभव में किया। इस प्रकार भाषा, भाव और शेली की देशी परंपरा तेलुगु साहित्य में तब तक चलती रही जब तक कि सोमनाथ ने 'बसवपुराण' नहीं लिखा।

वेमुलवाड़ भीम कवि - इस युग की तीसरी काव्य-धारा के प्रवर्तक इन्हे ही माना जाता है। 'राघव पांडवीय', 'शत कंठ रामायण' और 'नृसिंह पुराण' के प्रवर्तक भी कवि को श्लेषालंकार शैली में रामायण और महाभारत को एक ही कृति में प्रस्तुत करने के कारण प्रसिद्धि मिली। लेकिन इनकी चाटुकारिता की प्रवृत्ति से इन्हें साहित्यिक आदर न मिल पाया। इस काल में पावुलुरू ग्राम के पटवारी मल्लन्ना की 'गणित सार संग्रह' कृति को गणित की उल्लेखनीय रचना मानी गयी है। ईसके अलावा भी कुछ अन्य पुस्तकें लिखी गयी। नन्नय भट्ट की मृत्यु के साथ ही इस युग का अवसान होता है।

6.3.4 तेलुगु साहित्य का पूर्व मध्यकाल (सन् 1151 से 1500)

राजराजा नरेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् चालुक्य साम्राज्य विखंडित होने लागा। ऐसे समय में अंतिम चालुक्य नरेश भूलोकमल्लु को मार कर उसका सेना पति विज्जल पश्चिमी चालुक्य साम्रात्य का शासक बना। विज्जल काकतीय साम्राज्य का संस्थापाक तथा वीरशैवमत का प्रचारक था। विज्जल के मंत्री वसवेश्वर ने इस मत का खूब प्रचार किया। किंतु भंक्ति आंदोलन के प्रचार से यह मत रूद्ध हो गया।

मल्लिकार्जुन - पूर्व मध्यकाल का सूत्रपात द्राक्षाराम के मल्लिकार्जुन पंडित ने किया। इनकी प्रमुख कृति देशी छंद 'कंदमु' में लिखी गयी। 'शिवतत्व-सार' है।

पाल्कुरिकि सोमनाथ - सोमनाथ कृत 'बसवपुराण' धर्म ही नहीं साहित्यिक दृष्टि से भी एक महत्त्व पूर्ण रचना है। तेलुगु के 'द्विपद' छंद में लिखी गयी शिवभक्ति की तथा शिवभक्तों की अन्यतम प्रस्तुति इसमें हुई है। तेलुगु के सहस्त्रों अप्रयुक्त शब्दों को इस ग्रंथ में स्थान प्राप्त हुआ है। यद्यपि आकस्मिक घटना के परिपाक में कवि सफल नहीं हो पाये तथापि प्रस्तुति का संक्षेपीकरण कवि की कुशलता को स्पष्ट करती है। पाल्कुरिकि सोमनाथ ने इसके अतिरिक्त 'पंडिताराध्य चरित्र', चेन्नमल्लु सीसमुलु,' 'वृषाधिप शतकम्' 'अनुभव सारम्', 'बसवोदाहरणम्', 'बसव रागड़', आदि तेलुगु में तथा संस्कृत में सोमनाथ 'रूद्रभाष्य' की रचना की। वीरशैव कवियों की देशी परंपरा से भाषा को निखार प्राप्त हुआ। ग्रामीण कवियों की तरह उच्चकोटि के साहित्यकार भी स्त्रियों हेतु गीत सर्जना करने लगे थे। प्रकार शैवकवियों द्वारा

लोकसाहित्य को खूब बढ़ावा दिया गया। यहाँ तक कि मार्ग कवि भी लोक परंपरा का अनुसरण करने लगे।

रंगनाथ रामायण - रंगनाथ ने अपने रामायण में लिंगायतों के द्विपद छंद में वाल्मीकि रामायण का अनुकरण किया है। कवि द्वारा इसमें लोककथाओं का भरपूर प्रयोग किया गया है जिससे सामान्य जनता में यह खूब लोकप्रिय हुआ। इस प्रकार तेलुगु में रामायण की परंपरा कवि रंगनाथ के द्वार शुरू हुई।

सुमति शतक- तेलुगु के शतक साहित्य के प्रणेता कवि बद्धेना ने 'सुमति शतक' की रचना की। बद्धेना कवि महामण्डलेश्वरों में स्थान पाते हैं। इनकमे 'सुमति शतक' के बिना बालकों की शिक्षा अधूरी मानी जाती थी।

प्रोलराजू द्वारा निर्मित काकतीय साम्राज्य के प्रथम आंध्र राजा प्रतापरूद्र देव (प्रथम) ने **1158** ई. से **1195** तक शासन किया। इनकी मृत्यु के बाद इनके भाई महादेवराज ने चार वर्ष तक शासन किया और फिर गणपतिदेव के शासन काल में आंध्र पुनः एकसूत्र में बंध गया। गणपतिदेव के बाद उनकी पुत्री रूद्राम्बा और रूद्राम्बा के पश्चात् उनका पुत्र प्रतापरूद्रदेव (द्वितीय) ने शासन की बागडोर संभाली। सन् **1140** से सन् **1321** ई. तक के तीन सौ वर्षों के काकतीय शासन व्यवस्था में तेलुगु साहित्य में सतत् निखार हुआ। बल्लभामात्य कृत 'क्रीडाभिराममु' में काकतीय शासन के ओरूगल्लु के शिल्पियों का जीवन दृष्टव्य है। गणपतिदेव के मंत्री शिवदेवय्या (द्वितीय) की रचना 'शिवतत्व सार' और यथावाक्कुल अन्नय्या की कृति 'सर्वेश्वर शतक' में तेलुगु की जातीयता देखी जा सकती है। इनके अलावा भास्कर, कवि भल्लट, कवि राक्षस, तिक्कना, गोनबुद्धारेड्डी, रूद्रदेव, अय्यलार्य, मंचेना, बद्धेना, रंगनाथ, शिवदेवय्या, मल्लिकार्जुन भट्ट, मारना, केतना, अथर्णव प्रभृति ने सरस्वती की प्रचुर अराधना की । अथर्णव आंध्र व्याकरण के 'कात्यायन' माने जाते हैं। काकतीय साम्राज्य की समुन्नत शिल्पकला को आज भी रामय्या देवालय और सहस्त्र स्तंभ मंडप के रूप में देखा जा सकता है।

महाकवि तिक्कना - कवि तिक्कना और उनके भाई खड्ग-तिक्कना नेल्लूर जनपदवासी थे जो साहित्य, राजनीति, धर्म, युद्ध, सामाजिक विश यादि के क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। तिक्कना हरिहर के उपासक एवं दर्शनशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने 'ध्रमाद्वैत' सम्प्रदाय की स्थापना के द्वारा शिव और विष्णु की एकता का प्रतिपादन किया। वे राजा मनुमसिद्धि के मंत्री एवं दरबारी कवि थे। उन्होंने अपनी 'निर्वेचनोन्तर रामायण' कृति मनुमसिद्धि को समर्पित की । तिक्कना ने नन्नय भट्ट के 'महाभारत' के ढाई पर्व के बाद की अधूरी कृति को पूर्ण करने का दायित्व लेते हुए पन्द्रहवर्षों की रचना की । नन्नय और तिक्कना के बीच सैकडो़ वर्षों के अंतराल में तेलुगु साहित्य और भाषा के क्षेत्र में कई परिवर्तन हुए। तिक्कना के आश्रयदाता राजा मनुमसिद्धि अपने ही सामंत काटमराजु से युद्ध में पराजित हो गये थे। ऐसी स्थिति में तिक्कना ने काकतीय राजा गणपतिदेव से ओरूगल्लु में पहुँचकर अपनी कृति 'महाभारत' सुनाकर प्रभावित किया, जिससे उन्होंने अपनी सेना भेजकर पुनः मनुमसिद्धि को राज्य दिलाया। इस घटना के बाद से

तिक्कना 'कवि-ब्रह्म तिक्कना के रूप में समूचे आंध्र में प्रसिद्ध हो गये । तिक्कना के समय के कवियों ने बहुजन हिताय का लक्ष्य लेकर संस्कृत के शब्दों का तेलुगूकरण किया।

तेलुगु महाभारत में कई प्रसंग ऐसे आये हैं जहाँ कवि के पात्र निजी स्थिति से असंतुष्टि व्यक्त करते हैं वहाँ कवि की वाणी आग उगलने लगती है। घटनाओं का क्रमिकविकास, पात्रों का सूक्ष्मतिसूक्ष्म चरित्र-चित्रण और कल्पना के समन्वय से कवि की भाव-प्रवणता हृदयहारी बन पडी़ है। समस्त भारत में रामायण को महत्त्व मिला है, किंतु आंध्र में महाभारत को नन्नय एवं तिक्कना ने महत्त्व पूर्ण बना दिया। आधुनिक समीक्षकों की कसौटी पर कसकर ही 'कवि-ब्रह्म' के रूप में तिक्कना प्रसिद्ध हुए है। नन्नय भट्ट की भाषा की समस्या तिक्कना के समय में नहीं थी। नन्नय की समस्त शक्ति भाषा के स्थिरीकरण में लग गयी थी। तिक्कना के समय में ही आंध्र मनीषी प्रबंध-काव्य शैली में रचना करने लगे थे। उत्तर मध्य काल में चलकर यह प्रवृत्ति 'हत प्रबंध काव्यों के युग' के रूप में प्रसिद्ध हुई।

कवि केतना - तेलुगु में प्रबंध काव्य परंपरा की नींव केतना के 'दशकुमार चरित्र' से पडी़। मूल दशकुमार चरित' गद्य को केतना ने पद्य में ढाल कर ' अभिनव दण्डी' की उपाधि पंडित समाज से प्राप्त की । केतना ने अपने गुरू तिक्कना को अपनी कृति समर्पित की। जहाँ तिक्कना की पुराण शैली 'महाभारत' में लक्षित हुई है वहीं 'दशकुमार चरित्र' में महाकाव्यात्मक शैली को केतना ने प्रमुखता दी है। केतना ने याज्ञवल्क्य की स्मृति को 'विज्ञाननिश्वरीयम्' नाम से लिखा है। उनका 'आंध्र भाषा-भूश ण' नामक व्याकरण ग्रंथ भी उल्लेखनीय है।

भास्कर रामायण - भास्कर रामायण' की कवि भास्कर के अतिरिक्त अप्पलार्युडु, मल्लिकार्जनभट्ट, प्रभुसुत और कुमार रूद्रदेव आदि ने पूर्ण किया। यह अलग-अलग कवियों की एक उत्तम कृति है।

कवि मारना की वस्तु कविता - मारना की कविता को 'वस्तु कविता' के नाम से अभिहित किया जाता है। इसमें तदभव और देशी शब्दों तथा तेलुगु की लोकक्तियों और मुहावरों का संवादात्मक शैली में कथा को प्रस्तुतिकरण दिया गया है। इसमें प्रयुक्त भाषा को 'जानु तेलुगु' कहते हैं।

मारना के अतिरिक्त चिम्मपूडि अमरेश्वर और राविपाटि त्रिपुरान्तक का नाम उल्लेखनीय है। त्रिपुरान्तक की देशी कविता मार्ग शैली में 'त्रिपुरान्तकोदाहरण' और अंबिका शतक नामक कोमलकांत पदावली युक्त रचना है। इस प्रकार पूर्वमध्यकाल की कई प्रवृत्तियों को इन वाक्यों में देख सकते हैं-

1. वीरशैवतमत का प्रचार तथा आंध्र में सामाजिक धार्मिक क्रांति का का साहित्य पर प्रभाव अवलोकनीय है।
2. काकतीय साम्राज्य ने तेलुगु साहित्य संवर्धन में योगदान दिया।
3. तेलुगु के मौलिक शब्दों, कहावतों, मुहावरों का साहित्य में अत्यधिक प्रयोग होने लगा।
4. तेलुगु कवियों द्वारा देशी परंपरा में लक्षण ग्रंथों की रचना की गयी।
5. कवि तिक्कन्ना द्वारा नव्य साहित्यिक परंपरा का सूत्रपात हुआ।

6. 'दशकुमार चरित्र से प्रबंध काव्य शैली का विकास हुआ।

7. काव्य का विश मुख्यतः 'महाभारत', 'रामायण' तथा 'पुराण' ही रहा।

8. काव्य में प्रसाद गुण युक्त कोमलकांत पदावली को महत्त्व मिला।

9. काव्य के साथ ही व्याकरण, लक्षण-ग्रन्थ , स्मृति ग्रंथादि की रचनायें भी हुई।

इस प्रकार तेलुगु साहित्य में यह काल 'प्रबंध युग' के नाम से प्रसिद्ध है।

6.3.5 तेलुगु साहित्य का उत्तर मध्यकाल (सन् 1501 से 1700)

काकतीय साम्राज्य के पराभव तथा विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के मध्य तेलुगु साहित्य पनपता रहा। विजयनगर के अतिरिक्त तीन और छोटे राज्य थे जो कृष्णा और पेन्ना नदी के मध्य भाग में स्थित थे। औरूगल्लु से श्रीशैलम तक रेचर्ल था, जिसकी राजधानी राचकोंडा में थी। कोंडवीडु सीमा की राजधानी अंद्दकि रेड्डी वंश द्वारा शासित थी। तीसरा 'विद्यानगर' राज्य था। काकतीय शासन के पतन के बाद राचकोणा के गजपति नरेश ने दोनों राज्यों को अपने राज्य में विलीन कर लिया।

ऐसी राजनीतिक उठापटक में भी तेलुगु में उत्कृष्ट साहित्य रचे जाते रहे । रेचर्ल राजा वेलमवंशी संस्कृत के प्रकाणड पंडित थे। उन्हें 'सिंगम नायुडु', 'सर्वज्ञ', की उपाधि प्राप्त थी। कवि माधवरायुडु इन्हीं के दरबारी कवि थे, जिनकी 'श्रीमद्रामायण' कृति उल्लेखनीय है कुमारगिरि रेड्डी कृत 'वसंतराजीयम्' नाट्यशास्त्र की अद्भुत रचना है। कुमारवेमा रेड्डी की 'अमरूक' की टीका तथा उसको साले काढय वेमारेड्डी ने कालिदास के तीनों नाटकों की टीकायें लिखीं। विजयनगर के शासक हरिहर और बुक्काराय के समय सायन माधवाचार्य थे। स्वामी विद्यारण द्वारा वेद भाज्य इसी समय लिखा गया था। इस युग में अनेक धार्मिक व सामाजिक परिवर्तन हुए। काकतीय वंश का पतन शैव मत के पराभव का कारण बना। नन्नय भट्ट की शैली पुनः इस युग में पनपने लगी। तेलुगु - संस्कृत में समन्वय की प्रवृत्ति इस युग में खूब विकसित हुई। इ काल में तेलुगु में नाट्यशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। कवि पोतना की 'भागवतम्' तेलुगु की अमूल्य निधि है। 'हरिवंश,' 'महाभारत', 'मार्कण्डेय पुराण' इस युग की पौराणिक शैली का विकसन करती है।

स्वर्णयुग - यह युग तेलुगु साहित्य के चहुमुखी विकास के कारण स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इस युगमें तेलुगु साहित्य शरद ऋतु सदृश था। समस्त आंध्र प्रदेश भाव-पुष्प से सुवासित हो उठा था तथा साहित्य - गोष्ठियों और विद्वत्परिश दों को विजयनगर नरेशों को पूर्ण सम्मान प्राप्त था। इस युग के चार प्रमुख कवि नाचन सोमना, एर्राप्रेगडा, श्रीनाथ और पोतना आदि ने अपने निराले शैली में वाक्य-विन्यास किया।

काव्य में वृत्तियाँ, रीति, शैली और भाषा-चयन का अत्यधिक महत्त्व होता है। आरंभिक काल के युगकवि नन्नयभट्ट और पूर्वमध्यकाल के युगकवि तिक्कना की शांति उत्तर मध्यकाल में शैली की नवीनता और अभिनय प्रणाली के आधार पर श्रीनाथ को युग कवि माना

जा सकता है। विजयनगर साम्राज्य की राजधानी कर्नाटक में भी जिससे तेलुगु और कन्नड़ साहित्य के विकास को समान गति मिली।

भक्ति आंदोलन - तेलुगु साहित्य का यह काल भक्ति आंदोलन के साथ शुरू होता है। विष्णु-भक्ति और भागवत भक्ति की प्रेरणा से अनेक उत्कृष्ट रचनायें हुई, जिनका उल्लेख निम्नतः किया जा सकता है।

नाचन सोमना (उत्तर हरिवंश)- सोमना की कृति उत्तर हरिवंश से इस युग की शुरूआत होती है जो संक्षिप्त होकर भी कृष्ण के जनरंजनकरी रूप के कारण जनप्रिय बनी। इस प्रकार सोमना द्वारा विष्णुतत्व की अद्भुत महानता कृष्णरूप में प्रकट करने के कारण ही उन्हें 'नवीनगुण सनाथ' तथा 'संविधान चक्रवर्ती की उपाधि मिली। सोमना ने अलंकारों के पोश ण हेतु 'कृष्णन्वय', उक्तिवैचित्र्य' की सर्जना की ।

एर्राप्रेगडा - इस काल के एक अन्य कवि एर्राप्रेगड़ा संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। 'महाभारत' के ढाई पर्व नन्नय और शेष पन्द्रह पर्व तिक्कना द्वारा लिखे गये। ऐर्राप्रेगड़ा ने शेषांश अरण्य पर्व की रचना की। कवित्रय की भाषा-शैली के आधार पर ही तेलुगु व्याकरण की रचना हुई है। ऐर्रन्ना को शब्दों पर अद्भुत अधिकार होने के कारण ही 'शब्द ब्रह्मवेता' की उपाधि मिली थी। ऐर्रन्ना ने भाषा में नन्नय का और शैली में तिक्कना का अनुसरण किया। अरण्य पर्व के शेषांक के अतिरिक्त ऐर्रन्ना ने 'हरिवंश' और 'नृसिंह पुराण' ने नयी शैली का प्रयोग हुआ है। उनकी कृतियों में नित नयी शैली के प्रयोग देखे जा सकते हैं। पद्य-रचना क्लिष्ट, सरल, गंभीर, सुकुमार आदि कई शैलियों में की गई है। ऐर्रन्ना की बची कसर को श्रीनाथ और पोतना ने पूरी कर दी। इनमके अतिरिक्त अन्य कवियों में पिल्लमर्रि पिनवीर भद्रन्ना, जक्कना, अनंतामात्य, दुग्गुपल्लि दुग्गन्ना तथा 'विष्णु पुराण' के प्रणेता वेन्नलंकंटि सूरनार्थ गौरना, आदि उल्लेखनीय तेलुगु कवि है।

पिनवीर भद्रन्ना - तेलुगु साहित्य में भद्रन्ना 'ब्रह्म के अवतार' माने जाते हैं। भद्रना ने ''जैमिनी महाभारत'' हेतु उत्तर कुरू में यज्ञाश्व की घटना को मुख्य रूप से चुना है। भाषिक प्रौढ़ता युक्त यह रचना सहज बोधगम्य है। कवि ने मार्ग काव्य की विशेषताओं को अपनाते हुए भी लोक साहित्य के जनप्रिय तत्वों का समावेश किया है। पिनवीर भद्रन्ना ने महाकवि कालिदास के नाटक की शकुतला पात्र को काव्य का आधार बनाया। भद्रन्ना ने कालिदास की कहानी में किंचित परिवर्तन किया है। उन्होंने महर्षि व्यास कृत 'महाभारत की शकुंतला का अंश ग्रहण करते हुए एक अद्वितीय काव्य ग्रंथ 'शकुंतला' का प्रणयन किया। जिसे विद्वानों ने ससम्मान अपनाया।

महाकवि श्रीनाथ - तेलुगु साहित्य में श्रीनाथ की अपूर्व प्रतिभा उस काल से आज तक विद्वत्समाज के लिए आश्चर्यमिश्रित कुतूहल बना हुआ है। श्रीनाथ वेमारेड्डी नरेश के शिक्षाधिकारी थे। वे बचपन में 'मयूर' के 'सूर्यशतक' एवं मुरारि कृत 'अनर्घराघव' को कंठस्थ कर चुके थे। विजयनगर के डिंडमभट्ट को शास्त्राथ्र में पराजित कर उन्होंने भट्ट के समस्त सम्मान को अपने नाम कर लिया। आजीवन साहित्य साधना करने वाले श्रीनाथ का साहित्यिक अवधान इन रचनाओं में दृष्टव्य है। 'पंडिताराध्य चरित्र,' 'श्रृंगार नैशध', 'काशीखंड', 'भीमखंड', 'हरिविलास', 'शिवरात्रि माहत्म्य' एवं 'पलनाटि वीर चरि.' आदि।

'क्रीड़ाभिराम' कृति को कुछ विद्वान श्रीनाथ की मानते हैं तो कुछ वल्लभामात्य की यह तेलुगु के दशरूपकों में वीथी रूपक के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें काकतीय साम्राज्य के पतन के बाद ओरूगल्लु के शिल्पियों की जीवनचर्या को मर्मांतक रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्रीनाथ अपनी रचना में परिष्कृत, प्रांजल भाषा के साथ समासिकता को अपनाते हैं। इनकी शैली नन्नय के अधिक निकट है। उन्होंने अपने सीसपद्य के चरणान्त में तेलुगु के क्रिया पदों का प्रयोग किया है। श्रीनाथ की कृति 'श्रृंगार नैश ध' में मूल 'नैश ध चरित्र'' की दुरूहता न होकर परिष्कृतता औा ग्राह्यता देखी जा सकती है। श्रीनाथ की कृति ''पलनाटि वीर चरित्र' में कुक्कुट युद्ध की वीरगायात्मक शैली में वर्णन हुआ है। दो मुर्गों की लडाई को लेकर आंध्र के नरेश दो दल में बंट गये थे। श्रीनाथ के शिव में शील, सौंदर्य और सामर्थ्य की त्रिवेणी बहती थी, जिनमें कवि का लक्ष्य विशवत्व पर केंद्रित रहती थी।

भक्त पोतना - भक्त पोतना को पाकर तेलुगु साहित्य धन्य हो उठा। पोतना एक साधारण किसान थे। कविता पोतना का साधन नहीं अपितु साधना थी। उन्होंने अन्य कवियों की तरह अपनी रचनायें किसी राजा को समर्पित नहीं की। पोतना की कृति 'भागवत' तेलुगु साहित्य की अमूल्य नीधि है। पोतना का सरल व्यक्तित्व भागवत के तुलना की भी अनुमति नहीं देता। भागवत में अंत्यानुप्रास के कारण माधुर्य भाव का प्राचुर्य है। पोतना की भक्तिगंगा से सिक्त होकर तेलुगु जनता भक्तिरस में डूब गयी। भागवत का दशम स्कंध , जो कृष्णलीला से संबद्ध है उसे पोतना ने सरल वाणी में प्रस्तुत किया है।

अन्नमाचार्य - ये एक कीर्तनकार के रूप में जाने जाते हैं। इसी युग में कई शतक साहित्य लिखे गये। जैसे- 'सुमतिशतक' (बेद्धेना), 'वृषाधिप शतक' (सोमनाथ) 'वेंकटेश्वर शतक' (अन्नमाचार्य) आदि। इनके वंशज चिन्नन्ना भक्त त्यागराज से पूर्व के महान् संगीतज्ञ थे। इस काल के अन्य कवि है जक्कना, (विक्रमार्कचरित्र), अनन्तामात्य, (भोजराज चरित्र), दुग्गना (नाचिकेतोपाख्यान), तथा नंदि मल्लय्या और घंट सिंगय्या ने मिलकर 'प्रबंध चंद्रोदय' की रचना की। यूबगुंट नारायण कवि का 'पंचतंत्र' भी इस काल की उल्लेखनीय रचना है। इस काल तेलुगु साहित्य की मधुरता को देखकर ही यह उक्ति प्रसिद्ध हुई कि- '' तेलुगु भाषा मधु से भी अधिक मधुर है।''

कृष्णदेवराय - तेलुगु को कृष्णदेवराय की अनुपम देन है। कृष्णदेवराय ने कहा था,'देश भाश लंदु तेलुगु लेस्स'। (तेलुगु सभी देशी भाषाओं में उत्तम है) कृष्णदेव राय ने चारों ओर से राज्य को बढ़ाया ही नहीं अपितु सुव्यवस्थित भी किया। सन् 1515 से इन्होंने साहित्य-गोष्ठी का आयोजन शुरू कर तेलुगु, संस्कृत, कन्नड़ आदि सभी को समादृत किया। अपनी साहित्यिक प्रतिभा-प्रेम के कारण इन्हें 'आंध्र भोज'' की उपाधि प्राप्ति हुई। कृष्णदेवराय की सभा में 'अष्ट- दिग्गज' थे। वसन्तोत्सव के आयोजन द्वारा साहित्य और भी संपुष्ट होता था। विजयनगर के शासक वैष्णव थे। कन्नड़ साहित्य से शैव तथा तमिल साहित्य से बैष्णव मत का तेलुगु साहित्य में समन्वय हुआ।

आमुक्तमाल्यदा - कृष्णदेवराय साहित्यकारों के आश्रयदाता ही नहीं अपितु साहित्य के मर्मज्ञ भी थे। उनकी कृति 'आमुक्तमाल्यदा' को 'विष्णुचिन्तीयमु' भी कहते हैं। चुस्त भाषा और प्रबन्ध

शैली में लिखी गयी इस काव्य में प्रकृति की छटा, उत्प्रेक्षा, रूपक का समुचित प्रयोग काव्य के श्रेष्ठता में चार चाँद लगाते हैं।

अष्ट दिग्गज - कृष्णदेवराय के राजसभा के अष्ट दिग्गजों की ख्याति तेलुगु साहित्य में विशेष रूप से है। ये है- अल्सानि पेद्न्ना, नंदि तिम्मना, धूर्जटि, अय्यलरातु रामचन्द्र कवि, रामराजभूश ण, संकुसाल नृसिंह कवि, कंसालि रूद्रदेव एवं तेबलि रामकृष्णय्या प्रभृति।

अल्लसानि पेद्दना - कृष्णदेव राय के इस महान कवि को इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा हेतु 'आन्ध्र कविता पितामह' की उपाधि दी गयी है। स्वयं कृष्णदेवराय ने इनके पाँव में 'गंडपेंडेरम्' पहनाकर पालकी में बैठाया था तथ अपने कंधे पर पालकी उठाया था। कविता या तो व्यंजना युक्त होती है अथवा लक्षणा। तेलुगु साहित्य में लक्षणा काव्य का प्राधान्य है। नन्नय भट्ट के बाद पेद्दना ने व्यंजना शैली अपनाते हुए 'स्वारोचिश मनुचरित्र' महाकाव्य की रचना की। पेद्दना के इस मनु पात्र का जन्म एक अप्सरा से हुआ था। इस अप्सरा ने मानव और दवे के बीच तुलना कर मानव को अपना स्नेह-पात्र बनाया था। पेद्दना अपनी लेखनी के द्वारा परमार्थ भाव को पोषित करते हुए सृष्टि के आरंभ की कथा प्रबंधात्म्क शैली में प्रस्तुत करते हैं। प्रायः रसपारिपाक के लिए कवि ने शैली विविधता को अपनाया है। पेद्दना के पदों की व्यंजकता तथा समासयुक्त पदावली उनकी रचना को लोकप्रिय बनाते हैं।

भट्टुमूर्ति - इनका वास्तविक नाम रामराज भूश ण है। ये भाट वंशज संगीतज्ञ थे, इसीलिए उन्हें 'संगीत रहस्य कलानीधि' के नाम से जाना जाता है। इनकी कृति 'वसुचरित्र'' का कथानक 'शुक्तिमति नदी' और कोलाहल पर्वत' के प्रेम सम्बन्धों से उत्पन्न कन्या का वसुराज के साथ विवाह से संबंधित से उत्पन्न कन्या का वसुराज के साथ विवाह से संबंधित है। इस कृति की गेय-पद्यात्मकता एवं गद्यात्मकता को तेलुगु के पिंगल शास्त्री भी किंचित जानते होंगे या नहीं यह कहा नहीं जा सकता किंतु कृति में शब्द और अर्थ के स्थान पर लय और स्वर ने विजय पायी है।

नंदितिम्मना - नंदि तिम्मना कृष्णदेवराय की पत्नी चित्रमांबा के साथ दहैत के रूप में विजयनगर आये थे। इनकी कृति 'पारिजात पहरण' कृष्ण-रूक्मिणी-सत्यभामा ढंग से बुना गया है। नारदमुनि स्वर्ग से पारिजातपुष्प लाते हैं, जिसे कृष्ण को देते हैं। कृष्ण वह पुष्प रूक्मिणी के देते हैं, जिसे सत्यभामा की दासी देख लेती है। सत्यभामा इस बात से नाराज हो जाती है और फिर कृष्ण द्वारा सत्यभामा को मनाने की प्रक्रिया की कहानी है। 'नाक' के संदर्भ में इनका एक पद लालित्य देखते बनता है- 'चंपा पुष्प के पास भँवरा नहीं आता था अतः दुःखी होकर पुष्प ने तपस्या की तो वह नाक और उसके दोनों ओर आँख भँवरा बनकर हमेशा के लिए रहने लगे। इस पद को अपने काव्य में प्रयोग करने हेतु भट्टमूर्ति ने मूल्य देकर इनसे लिया था। 'पारिजातापहरण' के अंत में सत्यभामा ने नारदमुनि को कृष्ण का दान कर दिया। इस तरह यह एक नाट्यात्मक पद्य भी बन जाता है।

धूर्जटी - धूर्जटी अपनी भाषा की मधुरता और मृदुलता के साथ ही भाव-सौष्ठव के लिए भी प्रसिद्ध है। कृष्णेदेवराय वैष्णव थे, किंतु शैव कवियों के भी आश्रयदाता थे। धूर्जटी एक शैव भक्त

कवि थे। वे शिव के ज्ञानमय रूप की उपासना करते हुए भी राजसेवा की निंदा करते हैं। इनकी कृति 'फालहस्ति महात्यम्' तथा 'काल हस्तीश्वरशतकम्' उपलब्ध है। दक्षिण के द्राक्षाराम, श्रीशैलम्, अमरावती, पेदकल्लेपल्ली और कालहस्ति आदि शैव तीर्थ दक्षिण काशी कहलाते है। उनके 'कालहिस्त महात्यम् ' से भक्ति रस का प्रवाह तीव्र हुआ । श्री-काल-हस्ति का शब्दार्थ है- मकडी, सर्प, हाथी, इन तीनों के मोक्ष की कथा धूर्जटी ने कलात्मक ढंग से इसमें प्रस्तुत की है।

पिंगलि सूरचना - तेलुगु साहित्य में अब तक धार्मिक-पौराणिक रचनायें होती रही, किंतु पिंगलि सूरना से तेलुगु साहित्य में कल्पना आधारित रचनाओं को मान्यता मिली जिस काल में सूरना ने लिखा, उस समय उन्हें वह ख्याति न मिली। किंतु वीसवीं शती के आरंभ में इन्हें खूब यश प्राप्त हुआ। इनकी प्रमुख कृतियां राघव पाण्डवीयमु', कलापूर्णोदयमु' पाश्चात्य काव्य - कल्पना की विशेष ता लिये हुए हैं, उस समय पश्चिमी देश यहाँ आये भी न थे। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता हैं कलापूर्णोदय में सुगात्री-शालीन (पत्नी-पति) की श्रृंगारिकता का मनोवैज्ञानिक वर्णन है। सुगात्री की श्रृंगारिकता शालीन को विरक्त करती है जबकि उसकी सादगी से अनुरक्त शालीन स्वयं को नियंत्रित नहीं कर पाता है। 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' में प्रद्युम्न का प्रभावती के प्रति रति-भाव प्रकट हुआ है।

संकुसाल नृसिंह कवि - अष्टदिग्गजों में नृसिंह कवि का विशेष महत्त्व है। इनकी कृति 'मांधता चरित्रमु' 'कविकर्णरसायनमु' के नाम से लिखा गया था। प्रबंध शैली में प्रौढ़ भाषा एवं शैली में लिखा गया यह महाकाव्य पाठकों के कर्ण के लिए रसायन का काम करता है। इन सबके अतिरिक्त कंदुकूरी रूद्रया, तेनालि रामकृष्ण तथा मादय्यगारि मल्लना आदि अन्य उल्लेखनीय कवि है। कन्दुकूरि रूद्रय्या इब्राहीम कुतुबशाह का दरबारी कवि था। इनकी कृतियां हैं- 'निरंकुशोपाठयानमुं', 'जनार्दनाष्टकमु', 'सुग्रीव विजयमु' आदि।

तेनालि रामकृष्णा - अकबर-बीरबल की तरह तेनालि रामकृष्णा एवं कृष्णदेवराय की कई कहानियाँ प्रचलित है। इनकी कृति 'पांडुरंग महात्म्यमु', 'उद्भटाराध्य चरित्रमु' मानी जाती है। महाराष्ट्र के बारकरी संप्रदाय विष्णु को 'पाण्डुरंग' के रूप में पूजती है। तेनालि की वक्रोक्ति शैली इनकी कृति को अनोखा रूप प्रदान करतीहै। तेनालि की संस्कृतनिष्ठ तेलुगु उन्हें अन्य कवियों में अग्रगण्य बनाती है। तेलुगु साहित्य में सोमना, कृष्णदेवराय, तेनालि इन तीनों के छंदों में परिष्करण और आकर्षण का उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। तेनालि रामकृष्ण के पश्चात् प्रबन्ध काव्यों का युग लगभग सामपप्त प्राय हो गया।

अय्यलराजु रामभद्र - इन्होंने तेलुगु के मूल शब्दों द्वारा तिक्कना की शैली को पुनर्जीवित करते हुए 'रामाभ्युदयमु' की रचना की मधुर तथा प्रांजल भाषा में सुकुमार ढंग से इसकी प्रस्तुति को पाठक सहज ही अपना लेते हैं।

मोल्ल - मोल्ल नामक कवयित्री कुंभार के घर में जन्मी थी। इन्होंने 'रामायण' को अत्यंत संक्षिप्त प्रबंधात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यह युग साहित्य सर्जना में उच्च-निम्न वर्ग के

भेदभाव से परे था। स्त्री-पुरूश की ज्ञान क्षेत्र में सहभागिता स्वस्थ समाज की भावना को प्रदर्शित करता है।

तारिगोंड बेंकमाम्बा - इनका नाम शक्त कवियों में सम्मान के साथ लिया जाता है। बेंकमाम्बा बाल-विधवा थीं। इनकी कृतियाँ हैं- 'वेंकटेश्वर माहत्म्यमु', 'राजयोगसारमु' और 'योग वाशिष्टम', आदि में क्रमशः श्रृंगार भक्ति वर्णन और ईश्वर, जीव एवं प्रकृति का विवेचन किया गया है।

तिम्मक्का - भक्त अन्नमय्या की पत्नी तिम्मक्का ने 'सुभद्रा कल्याणमु' ग्रंथ की रचना की थी।

एलकूचि बाल सरस्वती - इन्होंने 'राघव, यादव, पाण्डवीयम्' ग्रंथ की रचना की । इसमें राम, कृष्ण और पाण्डवों का एक साथ वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'आंध्र शब्द चिन्तामणि' नामक व्याकरण की टीका भी इन्होंने लिखी थीं।

मादय्यागारि मल्लन्न कृत 'राजशेखर चरित्रमु', चरिकोंडा धर्मन्ना ने 'चत्रि-भारतमु', की रचना की तथा तेलुगु 'शतावधान' काव्य परंपरा का श्रीगणेश किया। शतावधान में सौ व्यक्तियों को क्रम से बिठाकर कवि प्रसेक को पृथक-पृथक् पद्य की एक-एक पंक्ति लिखाता है। पुनः नयी पंक्ति और पद का क्रम करते हुए चार चरण पूरे कराता है, जिससे प्रसेक के पास एक-एक स्वतंत्र पद तैयार होता है। अंत में शतावधानी से छप्पनवाँ पद सुनाने का आग्रह करते हुए श्रोता की इच्छानुसार किसी भी संख्या का पद सुनाने का आग्रह किया जाता है।

कुमार धूर्जटी - ये धूर्जटी के पौत्र थे। इनकी कृति 'कष्णराय' विजयमु' तेलुगु साहित्य के ऐतिहासिक रचनाओं में गिनी जाती है। इनके अतिरिक्त कई अन्य कवि भी है जिनकी रचनायें उल्लेखनीय बन पडी़ है इनमें अद्दंकि गंगाधर (तपती संवरणमु), पिडुपर्ति सोमनाथ (बसव पुराणमु) तेनालि अन्नय्या (सुदक्षिण परिणयमु'), तरिगोप्पुल मल्लना (चंद्रमानु चरित्रमु), शंकर (हरिश्चन्द्रोपाख्यानमु), सारंगु तम्मय्या (वैजयंती विलासमु') हरिभट्ट (वराह पुराणम्) आदि प्रमुख हैं।

लक्षण ग्रंथ और व्याकरण - इस काल में कई लक्षण ग्रंथ एवं व्याकरण भी लिखे गये। भट्टुमूर्ति की 'नरस भूपालीयमु', यादवामात्य की 'लक्षणशिरोमणि', तिम्मना की 'सुलक्षण सार', मुद्दराज रामना की 'कवि संजीवनी', वेल्लंकि तातम् भट्टु की 'कवि चिंतामणि', अप्प कवि की 'अप्पकवीयमु' आदि उल्लेखनीय लक्षण एवं व्याकरण रचनायें हैं।

इस प्रकार इस काल की कई प्रवृत्तियाँ देखी गयी है। प्रबंध काव्य, व्याकरण-लक्षण ग्रंथ , राजा-प्रजा की धार्मिक साहिष्णुता, धनवान सामंत, शतक परंपरा का निरूपण आदि उल्लेख्य है। शतककवि, कवि के साथ-साथ राजदूत भी होते थे।

वेमना - वेमना ने देशी शैली की कविता से शब्दावली तथा शास्त्रीय कविता है छंद लेकर भाव-व्यंजना में नवीनता का अनुसरण किया। वेमना ने साहित्य को रस, छंद, अलंकार तक ही नहीं बल्कि समाजोपयोगी बनाने की कोशिश की। इन्होंने कविता का विषय सामाजिक रूढ़ियों का खंडन तथा धर्म का सामान्यीकरण अपने छोटे-छोटे पदों के द्वारा किया है। उनके पद आधुनिक समाज-सुधारकों के लिए किसी अस्त्र से कम नहीं है।

कंचेर्ल गोपन्ना - तालीकोट युच्छ (**1565**) के बाद आंध्र का अधिकांश भाग गोलकोण्डा कुतुबशाही के अधीन हो गया। कुतुबशाही वंश के अंतिम तानाशाह शासक अबुल हसन के राज्य के कवि कचेर्ल गोपन्ना (रामदास) ने राजस्व में मिली अपनी संपति धर्म-कार्य में खर्च कर दिया था। यह समाचार सुनकर तानय्या (अबुल हसन) ने उन्हें गोलकोण्डा में बन्दी बना लिया। इनकी महत्त्व पूर्ण कृति 'दशरथी शतकमु' रामभक्ति का अजस्त्र सागर है।

संधिकाल - तालिकोट युद्ध के बाद आंध्र का अधिकांश भाग मुस्लिम शासकों के अधीन हो गया। किंतु पेनुकोंडा और चंद्र गिरि में सन् **1650** ई. तक विजयनगर के उतराधिकारी शासन करते रहै। तंजौर और मुदुरा दोनों तेलुगु राज्य थे। तंजौर साहित्य कला का केंद्र था तो मदुरा राजनीतिक दाँव-पेंच का । मदुरा के राजा तिरूमल नायकने मयदानव के सभा- भवन के आधार पर 'महासभा भवन' बनवाया था। इन राज्यों पर पांण्डय और चोल राजाओं का अधिकार था। तंजौर के रघुनाथ नायक और विजय राघव नायक कवियों के आश्रयदाता एवं स्वयं अच्छे कवि थे। रघुनाथ ने ही वीणा वाद्य को विकसित किया था। रघुनाथ ने अपने पिता की जीवनी को पद्यवद्ध किया था तथा उनके पुत्र विजय राघव ने 'रघुनाथाभ्युदयमु' नामक यक्षकाव्य की सर्जना की। वंश परंपरा केअनुसार विजय राघव के पुत्र मन्नारदास नेअपने पिता की जीवनी को साहित्य रूप दिया। सरस्वती महल' नामक विशाल पुस्तकालय इन्हीं नायक राजाओं की देने है।

चेमकूर वेंकटकवि - चेमकूर वेंकटकवि तंजौर के कवि-शिरोमणि कहै जाते हैं, इनकी 'विजय विलासमु' में अर्जुन की तीर्थयात्रा का वर्णन किया गया है। उलूपी, चित्रांगदा, सुभद्रा के साथ अर्जुन के विवाह कथानक को श्लेश शैली में भाषा की सहजता के साथ दिखाया गया है। इस काव्य का यमक - सौंदर्य इस पद्य में दृष्टव्य है-:

'मीरदंदु नरूगा नरूगानरूगा' (आप लोग कही-कहीं पहुँचने पर अर्जुन को देय नहीं सकेंगे) वेंकट कवि की 'सारंगधर चरित्रमु' कृति भी उल्लेखनीय है। इनका प्रत्येक शब्द सुगंधित तथा मीठी प्रतीत होती है।

दीक्षित कवि - रामभद्र दीक्षित की कृति 'जानकी परिणयमु', (नाटक), लीलाशुक का 'कृष्ण कर्णामृतम्' आदि रचनाएँ दीक्षित कवियों की संस्कृतनिष्ठता को व्यक्त करती है।

विजय राघव नायक - इनकी कृतियाँ रघुनाथ नायकाभ्युदयमु' (नाटक), 'कालीयमर्दन' (नाटक), प्रह्लाद चरित्र, पूतना हरण, विश्रनारायण चरित्रमु' (काव्य) आदि महत्त्व पूर्ण है। विजय राघव इतना गर्व करता था कि स्वयं को महाकवि मानकर अपने पैर में 'गण्डेपेण्डेरमु' पहनता था। इनके दरबारी कवि चेंगल्व काल ने 'राजगोपाल विलासमु' काव्य की सर्जना करते हुए तेलुगु में नायिका भेद आरंभ किया। इसमें कृष्ण की आठ रानियों का शिख वर्णन है।

रंगाजम्मा - आठ भाषाओं की ज्ञाता रगाजम्मा का नाम 'पसुपुलेटि' था। इनकी कृतियाँ 'मन्नारूदास विलासमु', ऊषा परिणयमु, 'रामायण-संग्रह', 'भारत संग्रह' और 'भागवत संग्रह' आदि है। इनकी कृतियाँ साहित्य भारती की कर्पूरवर्तिका आरती सदृश है।

यक्षगान - 'वीधी' नाटकों को तेलुगु में 'यक्षगान' कहा जाता है। आगे चलकर 'यक्षगान' और 'बुर्रकथा' के रूप में वीधी नाटक प्रचलित हुए। यक्षगान में लय के साथ तोहरलु, कीर्तन, पद्य,

गद्य का समावेश होता गया। इस प्रकार तंजौर शासन काल में तेलुगु साहित्य, संगीत, नृत्य का चहुँमुखी विकास हुआ। तेलुगु साहित्य का संक्रमण काल इन्हीं के कारण महत्त्व पूर्ण बना रहा।

6.3.6 तेलुगु साहित्य का तृतीय काल (सन् 1701से 1850)

ग्यारहवीं शती से लेकर सत्रहवीं शती तक चालुक्य, काकतीय, विजयनगर साम्राज्य में तेलुगु साहित्य खूब फला-फूला। इसके बाद की राजनीतिक विश्रृंखलता के बाद शासन तंजौर, मदुरा तक सीमित हो गयी। मदुराराज्य में विजयरंग चोक्कानाथ के समय समुखमु वेंकट कृष्णप्पनायक ने 'जैमिनी भारतमु' नायक गद्य रचना की। मैसूर राज्य के सेनापति कुलवे वीरराजु ने 'महाभारत' को गद्य में लिखा। आंध्र राजा अनेक छोटे-छोटे शासन केंन्द्रों में विभाजित था। राजमहैन्द्रवरम, पेद्दपुरम, विजयनारम् बोब्बिली, पिठापुरम् आदि चार सामंत राज्यों में तेलुगु साहित्य विकसित होता रहा। तृतीय काल के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं का अवलोकन इस संदर्भ में अपरिहार्य है।

कूचिमंचि तिम्मकवि - इन्होंने कई शतक, दण्डक एवं प्रबंध काव्यों की रचनायें की। इनकी रचनाओं में 'नीला सुंदरी परिणय, 'राजेश्वर विलास', रसिक जन मनोभिराममु', 'सर्वलक्षण सार संग्रह' 'अच्च रामायण' आदि महत्पूर्ण है। अच्च का तेलुगु अर्थ ठेठ होता है, जिसमें पकार, शकार का प्रयोग नहीं होता है। तिम्मकवि की प्रतिभा से अभिभूत होकर विद्वानों ने इन्हें 'कवि सार्वभौम' की उपाधि दी थी। भाषा, छंद, अलंकार पर पूर्ण अधिकार रखते हुए भी भावाभिव्यंजना में ये चूक गये हैं। उन्होंने कंद नामक छंद में परिवर्तन कर उसे प्रभावशाली बनाया।

कंकंटि पापराजु - पापरातु ने तिक्कना के 'उत्तर रामा यणमु' को अपनी वेंदर्शी शैली में पुनः लिखा। तेलुगु भाषा का जो रूप प्रारंभिक काल तथा मध्यकाल में निखरा था वह कुतुबशाही जैसे मुस्लिम शासकों के समय बदल चुका था। जिसे पुनर्गठित करने की आवश्यकता थी। भाषा में फारसी, अरबी, के कई शब्द प्रवेश पा चुके थे। इसीलिए तृतीय काल के विद्वानों ने लक्षण ग्रंथों, निघंटु (आंध्र भाषा सर्वस्वमु) आदि का प्रणयन किया। आचार-व्यवहार के क्षेत्र में धर्मग्रंथों का पुनर्प्रणयन किया गया। आंध्र पर मुसलमानों के आक्रमण के समय परशुराम पंतुलु लिंगमूर्ति ने आंध्र में योगविद्या का प्रचार किया। लिंगमूर्ति ने 'सीतारामांजनेय संवादमु' कृति की रचना करके इसका महत्त्व प्रतिपादित किया।

लिंगमूर्ति के पुत्र राममूर्ति ने 'शुक चरित्र' की रचना कर अपने पिता के विचारो का संवर्धन किया।

श्रृंगारिक रचनाएँ - पद्यनायक वंश के राजा वैष्णव थे। इनके उपास्यदेव कृष्ण थे। अतः कुछ कवियों ने आश्रयदाता की प्रशंसा में कृष्ण की रसिक रूप व्यंजना की है। सर्वज्ञसिंह भूपाल कृत 'रत्नपंचाशिका' रूपक नाटकों में शिखर पर गिनी जाती थी। तंजौर के कई अन्य कवियों ने भी श्रृंगारिक रचनाएँ की। मुद्दुपलनि कृत 'राधिका सान्त्वनमु', कामेश्वर की 'सत्यभामा सांत्वनमु', समुखमु वेंकट कृष्णप्प नायक के 'अहल्या संक्रदनीयमु' और शेश मु वेंकटपति के

'ताराशांकमु', अज्जपुर पेरियालिंग की 'तोडयानंवि विलास' आदि श्रृंगार रचनायें कही-कहीं अश्लीलता की सीमा लाँघ गई है। बिल्हण की कहानी को तेन्नूरू शोभानाद्रि ने 'पूर्ण चंद्रोदय', चेल्लपल्ली नरसकवि का 'यामिनीपूर्णलिका विलास', शिवराम कवि का काम कला निधि' आदि कामशास्त्र का विवेचन ही प्रतीत होता है।

जग्गकवि - इस काल के कूचिमंचि, जग्गकवि का श्रृंगार वर्णन में नाम लिया जा सकता है। जग्गकवि ने राजा की रखेली चन्द्ररेखा पर 'चन्द्ररेखा विलास' की रचना की । किन्तु राजा के तिरस्कार से दुःखी होकर यह कृति उन्होंने जलाकर 'चन्द्ररेखा विलाप' की रचना की।

दिद्दकवि नारायण - इनके 'रंगराय चरित्र' में बोब्बलि के युद्ध का ऐतिहासिक वर्णन है। भट्टप्रभु की 'कुचेलोपाख्यान', 'सुरामडेश्वर' कृति को खूब प्रसिद्धि मिली। इस काल में श्रृंगारिक काव्य के अतिरिक्त शतक साहित्य, प्रशंसात्मक कविता (चाटु कविता) का भी खूब विकास हुआ।

चौडप्प शतक - इस शतक में मात्र 'कंद' छंद (संस्कृत के 'आर्य' छंद का परिवर्तित तेलुगु रूप) का प्रयोग किया जाता है। चौडप्पा ने छंद की पोतन्ना शैली को अपनाया।

इन्होंने नीति काव्य के साथ-साथ निन्दा काव्य की भी रचनायें की।

गोगुलपाटि कूर्म - इन्होंने सीस छंद में 'वेणुगोपाल शतकमु' , 'सिंहाद्री नारसिंह शतकमु' की रचना की है। इसकी काल में 'कालुवाय शतकमु', 'मदनगोपाल शतकमु', 'लावण्य शतकमु', 'इंदुशतकमु (इसमें पति वियोग में मुग्धा नायिका चन्द्रमा से कृष्ण और गोपियों की कुशल पूछती है।) आदि श्रृंगारिक काव्य भी लिखे गये।

कासुल पुरूषोत्तमकवि - इनकी रचना 'आंध्रनायक शतक' का प्रत्येक पद व्याजनिंदा से भरा हुआ है। व्यावहारिक भाषा में सटीक अभिव्यक्ति इस रचना की विशेष ता है।

चाटुकविता - इस काल के कुछ कवियों ने प्रबंध काव्य और लक्षण काव्य के साथ चाटु कवितायें भी लिखी। लेकिन कुछ ऐसे भी कवि हैं जो मात्र चाटुकविता के आधार पर ही प्रसिद्ध हुए, इनका उल्लेख प्रासंगिक होगा।

अडिदमु सूरकवि - इन्होंने 'आंध्र चन्द्रालोकमु', 'आंध्र नाम शेश मु', 'कवि संशय विच्छेदमु' आदि लक्षण-ग्रंथ तथा 'कवि जनरंजन' नामक तीन आश्वासों वाला काव्य लिखा है। चाटुकविता के क्षेत्र में इनको खूब प्रसिद्धि मिली।

पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि - इनकी 'रावण दम्भीय' अथवा 'लंका विजय' नामक कृति इनके नीजी जीवन से जुडी़ है। जमींदार द्वारा रूष्ट होकर इनका खेत छींन लिया जाता है, फलतः उक्त दत्यर्थि काव्य सर्जना करते हैं। मृत्युंजय कवि की धरात्मजा परिणयमु में कही भी ओष्ठ्य अक्षरों का प्रयोग नहीं किया गया है। लक्ष्मण कवि ने अपने काव्य हेतु इतिहास, पुराण और सामाजिक घटनाओं को चुना है जो इनकी कृति को कालमुक्त प्रसिद्ध देती है।

पद अथवा कीर्तन - क्षेत्रय्या कवि के भक्ति पूर्ण श्रृंगार रसपूर्ण काव्य जयदेव की समानता करते हैं। इनकी कृति 'मुब्ब गोपाल पद' में मछलीपद्दनम् के गोपाल स्वामी की स्तुति के साथ -साथ नायिक भेद पर प्रकाश डाला गया है।

आंध्र के कुछ ब्राह्मण नियोगी और वैदिक कहलाते थे। नियोगी ब्राह्मण राजाओं के प्रधान मंत्री पदों पर कार्यरत थे जबकि वैदिक ब्राह्मणों की वेदोच्चारण के क्षेत्र में विशेष प्रसिद्धि थी। ऐसे वैदिक ब्राह्मणों में पंडितराज जगन्नाथ को कौन नहीं जानता। तृतीय काल के कई कवि नियोगी ब्राह्मण थे। इस काल के कुछ वैदिक ब्राह्मणों ने तेलुगु में लिखने का प्रयत्न किया था। शिष्टु कृष्णमूर्ति शास्त्री, पिठापुरम् के राजा के समय के विद्वान थे। इन्हें 'चाटुकवि चक्रवर्ती' की उपाधि चाटुकवियों ने दी थी। इनकी कृति 'राजगोपाल विलास काव्य' है। वैदिक ब्राह्मणों को राज्याश्रय न मिलने के कारण उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए अन्य दिशाओं में भी प्रयत्न करना पड़ा।

निन्दात्मक कविता - निन्दात्मक कविता, चाटुकविता की पूरक है। वेमुलवाड़ा भीम कवि, रामराज भूषण, मेधावी भट्ट, तुरगा राम आदि कवियों की निन्दात्मक काव्य प्रस्तुति ने बड़े-बड़े राजाओं को झुका दिया। आंध्र में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गयी कि पेद्दापुराम का नाश कवियों के कुछ होने से हुआ।

भर्तुहरि के शतक और वाल्मीकि रामायण - ने भर्तुहरि के श्लोकों का तथा गोपीनाथ ने वाल्मीकि रामायण को 'गोपीनाथ रामायण के नाम से तेलुगु अनुवाद किया उत्तर मध्य काल में तेलुगु गद्य की गति अत्यंत धीमी थी,जो इस काल में खूब विकसित हुई।

तृतीय काल की विशेष ताएं - इस काल के कवियों का ध्यान भाव की अपेक्षा भाषा पर केन्द्रित था। वर्ण्य-विषय को छोड़ दें तो कल्पना, शैली, भाषा, छंद, और अलंकार की दृष्टि से यह काल महत्त्व पूर्ण है। एक तरह से काव्य का विकास बाह्य रूप में हुआ किंतु आंतरिक पक्ष उपेक्षित रहा। नन्न्य भट्ट ने ही तेलुगु गद्य का आरंभ कर दिया था, किन्तु उसका विकास तृतीय युग में खूब हुआ। इस समय का साहित्य यथार्थ के करीब था।

कुछ आलोचकों ने सन् 1710 ई. से सन् 1800 ई. तक के समय को अंधकार युग का नाम दिया है।

मुसलमानी प्रभाव - काकतीय शासन के समय मुसलमानों ने आक्रमण किया था, लेकिन वे यहाँ के साहित्य और समाज पर विशेष प्रभाव नहीं डाल पाये। तृतीय काल में आंध्र पर मुसलमानों का पूर्ण अधिकार स्थापित हो चुका था। तेलुगु भाषी सामंत इन्हीं मुसलमान शासकों की कृपा कर निर्भर थे। आंध्र में इन शासकों के कारण उत्तर भारतीय हिन्दी की बोलियों का प्रवेश हुआ, इनकी भाषा को 'तुरकल माटा' (तुर्की की भाषा) कहा जाता था। अरबी, फारसी मिश्रित हिन्दी साहित्य के मंगलाचरण और राजप्रशंसाओं का अनुकरण अब तेलुगु साहित्य में भी होने लगा था। तेलुगु साहित्यकार अपनी भाषा, शैली, छंद की विशुद्धि हेतु नानाविध साहित्य प्रयोग करने लगे थे।

6.3.7 तेलुगु गद्य साहित्य का विकास (नन्नय से सन् 1850 ई. तक)

तेलुगु गद्य - शिलालेखों के आधार पर तेलुगु गद्य नन्नय से पूर्व ही प्रचलित था। आंध्र देश में सन् 625 ई. में पूर्वी चालुक्यों के शासन काल में शिलालेख पाया गया है, जो गद्य रूप में है।

तत्कालीन बोलचाल की भाषा में प्राकृत के कई शब्द मिश्रित थे। जयसिंह बल्लभ के 'विघटटु' और मंगियुवराज के लक्ष्मीपुरम् वाले शिलालेख पूर्वी चालुक्यों के समय के है। चालुक्य भीम के 'कोरवि' के शिलालेख में मधुर संभाश ण शैली का प्रयोग हुआ है।

जब कोई भाषा रंजक शैली में सरस पद्धति में उत्तम भावभिव्यक्ति करने लगे तो उसे काव्य कहते हैं। काव्य में छंद, लय, तुक, अलंकार होता है, किंतु जब इन सबसे मुक्त स्वछंद भाषा रूप की रसपूपर्ण भावाविव्यक्ति हो तो गद्य कहलाती है तथा गद्य और पद्य मिश्रित रचना चंपू कही जाती है। भारतीय भाषाओं में तेलुगु तीसरी सबसे अधिक बोले जाने वाली भाषा है जो हिन्दी और बंगला के बाद आती है। तेलुगु अपनी मधुरता के कारण ही पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ''इटलियनल ऑफ दी ईस्ट' (पूर्व की इतालवी भाषा) कही जाती है।

नन्नय भट्टारक -

चालुक्य - वंश के चक्रवर्ती राजा राजराज नरेन्द्र के प्रोत्साहन पर नन्नय भट्ट ने चंपू शैली के 'संस्कृत 'महाभारत' का आंध्रीकरण किया। यह रचना शब्द- चयन, सरस शैली में कवित्रय (नन्न्य, तिक्कना, एर्राप्रेगड़ा) द्वारा पूर्व हुई। प्रायः तेलुगु भाषी शब्दालंकार प्रिय होते हैं। यहीं कारण है कि ऐसे शब्दालंकार और पद-रचना के नियमों से पूर्व भाषा विश्व- वाड्मय में दुर्लभ है। संस्कृत में यति और प्रास का नियम नहीं है, जबकि अंग्रजी में Rhyme (अंत्यनुप्रास) है। नन्नय से लेकर चेमकूर वेंकटकवि तक (सन् 1020 से सन् 1620 तक) केवल चंपू काव्य ही अधिक लिखे गये। नायक राजाओं के समय में गद्य की महत्त्व को समझते हुए इसे अपनाया। नन्नय का गद्य व्याख्यात्मक, भावपूर्ण, है। नन्नेचौड़ की गद्य रचना चमत्कारपूर्ण है। तिक्कना रचित भारत - सावित्री' नामक गद्यग्रंथ का आंध्र नारियों द्वारा नित्य पठन किया जाता है।

18वीं शती गद्य रचना का स्वर्णयुग कहा जाता है। तेलुगु ही नहीं अंग्रेजी, फ्रेंच, आदि के लिए यह युग स्वर्णिम था। मैसूर के चिक्कदेवराय के सेनापति कलुवे वीरराजु ने 'महाभारत' को गद्य में लिखा। श्री तुपाकुल अनंतभूपाल ने 'भीष्म पर्व', 'विष्णुपुराणे, 'रामायण-, का सुंदरकांड' गद्य में लिखा था। श्री नारायणय्या का 'शांतिपर्व' जीवंत गद्य ग्रंथ प्रतीत होता है। 'रामायण' को श्री श्याम कवि, शिंगरातु', दत्तात्रेय, पैडिपाटि पायय्या ने तो 'भागवत' को वेंकट सुब्बय्या, पुष्पगिरि तिम्मना ने गद्य में भाषांतरित किया। नंदरातु का 'हालास्य महात्म्य', श्रीविजयरंग चोक्क भूपाल ने 'श्रीरंग महाकाव्य', कामेश्वर ने 'धेनुमहात्म्य', वेंकट कृष्णप्पै ने 'जैमिनी भारत' आदि को गद्य रूप में ही प्रस्तुत किए।

भक्ति वचन - भक्ति पूर्ण पद्यशतकों की तरह 105 वचनों की माला बनाकर इष्टदेवता को समर्पित करने की परंपरा इस काल में खूब प्रचलित थी। प्रमुख वैष्णववचन है- 'वेंकटेश्ववचन', 'शतकोटिविन्नपमुलु', 'कृष्णमाचार्य कीर्तन,' 'चूर्णिक', आदि। 'शैवचूर्णिक' आदि उल्लेख है।

इतिहास - श्री कृष्णदेवराय का इतिहास 'रायवाचक', काकतीय राजवंशावली का 'प्रतापचरित्र', हैदर टीपू सुल्तान का 'सारंगधर चरित्र' आदि प्रमुख इतिहास ग्रन्थ इस युग को धरोहर है।

कथाएँ - ब्राउन साहब का 'तातावार्युलु कथल्लु', शुकशहराती, 'तोते की कथाएँ, कीर बहत्तरी कथाएँ, हंस विंशाति, 'पंचतंत्रकथलु', 'छाविंशति', 'सालभंजिका कथाएँ, परिश त्पादुषा कथलु, विनोद कथलु, गोलकोंड नवाब कथुलु', आदि के अतिरिक्त 'चन्द्रहसा चरित्रमु' आदिउल्लेख कथाएँ हैं।

यात्रा वृत्तांत - तेलुगु साहित्य में यात्रावृत्तांत की परंपरा भी खूब पायी जाती है। कुछ प्रमुख यात्रा वृतांत हैं ।- 'नीलगिरि यात्रा चरित्र' (कोला शेषाचल कवि), 'काशीयात्रा चरित्र (श्री एनुगुल वीरामय्या) आदि।

तेलुगु साहित्य को मेंकेंती और ब्राउन महाशय की देन - चौथे मैंसूर युद्ध में टीपू सुल्तान को हराकर मैंकेंजी ने कन्याकुमारी से चिलका झील तक पाँच वर्षों तक पर्यवेक्षण किया। उन्होंने प्रमुख घटनाओं विशेषताओं तथा इतिहास का संग्रह कर मद्रास प्राच्य पुस्तकालय में सुरक्षित किया। ब्राउन ने तेलुगु सीख कर जिला गजेट और मद्रास राज्य का गज़ेट तैयार कराया जो महत्त्व पूर्ण है।

6.3.8 तेलुगु साहित्य के विविध काव्य रूप

तेलुगु कवियों ने वर्णनात्मक रचना हेतु पद्य तथा विवरणात्मक हेतु गद्य का प्रयोग करते हुए गद्य का भंडार संविर्धित किया। इसके अतिरिक्त तेलुगु काव्य के विविध रूप हैं, जिन्हें इन चरणों में विश्लेषित किया जा सकता है।

शतक साहित्य - शतक साहित्य प्रबंध युग के बाद की तेलुगु की मौलिक विधा है।शतक साहित्यकारों की सरल, स्वाभाविक प्रस्तुति अपढ़ व्यक्ति के लिए भी इसे वोधगम्य बना देती है। यह साहित्य लोक साहित्य और शास्त्रीय साहित्य की बेजोड़ प्रस्तुति है। विन्नकोटि पेद्वना ने सर्वप्रथम इसे 'क्षुद्र' साहित्य की संज्ञा देते हुए शतक साहित्य को साहित्य की श्रेणी में रखा। आधुनिक युग के स्वर्गीय है बंगूरि सुब्बाराव ने शतक साहित्य की वृहद् समीक्षा की। शतक साहित्य तथा अंग्रेजी के प्रगीत-मुक्तक (लिरिक) में पर्याप्त साम्य हैं । क्योंकि दोनों में काव्य के अंतर्पक्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। शतक् साहित्य के लिए विषय की कोई सीमा नहीं है। नीति, भक्ति, श्रृंगार, हास्य आदि कोई भी विषय शतक के लिए लिया जा सकता है।

तेलुगु के कुछ शतकों का दशकों में वर्गीकरण हुआ है जैसे'- नारायण शतक (नाम दशक, आदिदशक ज्ञानविंशति, अवतार दशक) , मन्नारूकृष्णशतक (दाससंग दशक, गोपालन दशक) रामचंद्र शतक आदि।

तेलुगु भाषा के शतक से पहले संस्कृत, प्राकृत भाषा में समृद्ध शतक परंपरा रही हें 'अवदान' नामक शतक प्राकृत भाषा में पाया गया है जो बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित है। संस्कृत का 'दिव्यवदान शतक 'गद्यनिष्ठित, समासयुक्त शैली में लिखा गया है। इस अवदान की कुछ कथाओं को चुनकर 'कल्प ध्रमाब्दन माला' नामक ग्रंथ का प्रणयन हुआ। इसी तरह 'अशोकावदानमाला' और ' रत्नावदान माला' भी है। शिव और विष्णुस्तोत्र की भांति बुद्ध सम्बद्ध कई स्त्रोत संस्कृत में मिले हैं। जैसे- 'कल्याणपंच विशतिका, 'सुप्रभांत स्तवन'', 'परमार्थ

नाम संकीर्तन', लोकेश्वर शतक', आदि में शक्यमुनि बुद्ध और बोधित्वों की स्तुति की गयी है। अवलोकितेश्वर की पत्नी तारादेवी से संबंधित स्तोत्र 'आर्य धारा स्त्रग्धरा स्तोत्र' कवि सर्वज्ञ मित्र द्वारा लिखा गया है। एक ब्राह्मण को यज्ञपशु बनने से बचाने हेतु कवि सर्वज्ञ रक्षा की। चन्द्रगोमि वे भी 'तारासाध' नामक शतक लिखा था तथा तिब्बती भाषा में भी **62** स्तोत्रों का अनुवाद प्राप्त होता है। 'अमरूक', 'श्रृंगार तिलक', 'भर्तृहरि सुभावित', 'मूक पंचशति, आदि महत्त्व पूर्ण शतक काव्य है। शंकराचार्य का 'शिवानंद लहरी', सौंदर्य लजहरी'', मयूर कवि का 'सूर्य शतक' तथा कुलशेखर का 'मुकुन्दमाला' आदि शतक काव्य कहै जाते हैं। संस्कृत में 'पंचक', (पाँच पंक्ति के श्लोक), अष्टक (आठस पंक्ति के श्लोक), 'शतक' (सौ पंक्ति की श्लोक कविता) आदि। इस प्रकार संस्कृत में धर्म, नीति, श्रृंगार और वैराग्य की उत्तम शतक रचनाओं की परंपरा रही है। तेलुगु का शतक साहित्य भर्तृहरि के शतकों से प्रभावित है। तेलुगु शतक साहित्य के प्रत्येक पद में कवि ईश्वर के साथ स्वयं को भी संबोधित किया गया है। हिन्दी में मीरा के पद में 'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर' यह चरण आया है। तेलुगु में इसे 'मुकुट' कहा जाता है। इन मुकुटों के आधार पर 'शतकों' का नामकरण किया गया है। तेलुगु में पाल्कुरिकि सोमनाथ का 'वृषाधिप शतक' 'मुकुट' परंपरा का बेजोड़ नमूना है। यह शतक 'जानु तेलुगु' (विशुद्ध तेलुगु) में लिखा गया है। अन्नमय्या का 'सर्वेश्वर शतक' भी इस संदर्भ में उल्लेख है। 'सुमति शतक' के रचयिता का नाम सिद्ध नहीं हो पाय है। वेमना शतक से मेल के कारण वेमना की रचना मानी जाती है। बेन्नेलकंटि जन्नय की 'देवकीनंदन शतक', अय्यलरातु त्रिपुरांतक की 'ओटिमेट्ट रघुवीर शतक', धूर्जटि की 'श्री कालहस्तीकश्वर शतकमु', तथा ताल्लपाक अन्नमाचार्य की 'श्रृंगारवृत्त पद्य शतक', 'वेंकटेश्वर शतक' आदि महत्वूपूर्ण शतक है।

चौडप्पा का चौडप्प शतक (श्रृंगारिक शतक), गोपन्ना का 'दाशरथी शतक' तथा अज्ञात कवि कृत 'भास्कर शतक' आदि उल्लेखनीय है। सत्रहवीं शती में अप्प कवि के 'बज्रपंजर', 'मरूनंदन' का उल्लेख तो है किंतु यह उपलब्ध नहीं हो सका है। गणपवरमु वेंकटकवि का 'यंमक' तथा 'कठिनप्रास' शतक, लक्षण ग्रंथकार अप्प कवि का 'श्री नागधि शतक' अब तक नहीं मिल पाया है। अठरहवीं शती तथा उसके बाद के कई शतक प्राप्त हुए हैं.

यक्षगान - 'यक्ष' शब्द का अपभ्रंश रूप है- जक्कु। यक्षगान दृश्य काव्य तेलुगु में प्राचीन समय से ही प्रचलित था, किन्तु इसका लिखित रूप सर्वप्रथम कवि रूद्रय के 'सुग्रीव विजय' से प्राप्त होता है। इसके रचना का समय सन् 1050 ई. है। प्रोलुगंटि चेन्नकवि ने प्रियद छंद में 'गद्य भारत' 'नरसिंह पुराण', आदि की रचना कर 'अष्टभाषा पंडित' की उपाधि पायी।

तंजौर शासकों ने प्रायः यक्षगान रचयिताओं को ही आश्रय दिया। दक्षिणान्ध्र युग मानो यक्षगान हेतु स्वर्ण युग बन गया है। आदिवासी कुरवंजे नृत्य ने धार्मिक यात्रा (जातरा) का अनुकरण कर गीतिनाट्य का रूप धारण कर लिया। वनवासी कुरब, चेंचु जातियों द्वारा गाँव एवं नगर में वस्तुओं को बेचने के साथ ही नृत्य, मनोरंजन भी किया जाता था। ग्रामीण नृत्य और अभिनयकर्ताओं की जाति 'जक्कुल' ने गीति-नाट्य का रूप दिया (धीरे-धीरे गीतिनाट्य में नृत्य का अंश कम होते-होते यह 'यक्षगान' कहा जाने लगा) धर्मोपदेश के साथ मनोरंजन का मेल

होने से जनता का आकर्षण, धर्म के प्रति बढ़ने लगा। प्रारंभिक मूकाभिनय आगे चलकर यक्षगान' का रूप धारित करने लगा। साहित्य संगीत, नृत्य के समन्वय से 'यक्षगान' या 'जक्कुलु' और 'पाटा' का उद्भव हुआ। पुराणों में यक्षों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन यक्षगान 'द्विपद छंद' में लिखे जाते थे। कुछ विद्वान संस्कृत की द्विपदिका से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। द्विपद के चार चरण होते हैं शब्द, खण्ड मात्रा और सम्पूर्ण आदि। सोमना कवि ने देशी छंद में काव्य सर्जना कर यक्षगान का मार्गदर्शन किया। तमिल के उलाप्रबंध पद्धति पर तेलुगु यक्षगान की रचना मानी जाती है। यक्षगान का नाटक से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके साथ ही संस्कृत नाटकों के प्रभाव से अछूता भी नहीं है तेलुगु यक्षगान । तलजराज के 'शिवकाम सुंदरी परिणय' में नाटकों की तरह 'नांदी' और प्रस्तावना दानों ही है। विजय राघव का 'पूतना हरण' मातृभूतन का 'परिजातापहरण' आदि नाटकों के अंक प्रणाली का अनुसरण करता है।

अंगंजर के - आपेरा' और संस्कृत के 'उपनाटकों' से यक्षगान' पर्याप्त साम्य रखता है।

यक्षगान की रचना तेलुगु 'रगड़ा' नामक देशी छंद में की जाती हैं । इसमें छंद के छोटे-छोटे भेद पाये जाते हैं, जैसे- ईललु, जोललु, सब्बाललु, आरतुलु धव्वमुलु, चंदमामा सुद्तुलु, विलालि पदमुलु, वेन्नेल पदमुलु, त्रिपदलु, चौपदलु, शट्पदलु, मंजुरूलु, जक्कुलु, रेकुलु आदि। कुछ यक्षगानों में काव्यों वाले छंद प्रयुक्त हुए हैं। जैसे- सुग्रीव विजय में सीसमु, तेटगीति, उत्पलमाता, त्रिपुट , जंपे, कुरूचजंपे, आट एकतालमु, एललु, धबलार्थ, चन्द्रिकलु, द्विपदलु आदि। यक्षगान में पात्रों के प्रवेश करने और कथा की रंधि -सूचनार्थ गद्य का प्रयोग हुआ है। श्री कंकटि पापरातु का 'विष्णुमाया विलासमु', अक्कणामात्य का 'कृष्ण विलास-, 'भीमसेन विजय,' श्री वेंकटाद्रि का 'वासंतिका परिणयम', 'विष्णुमाया विलास', विजयराघव का विप्रनारायण चरित्र' आदि महत्त्वपूर्ण यक्षगान है।

हास्य रस - इसमें हास्य रस की प्रमुखता होती है। ब्राह्मणों और ग्वालों के सम्भाषण द्वारा हास्य रस उत्पन्न किया गया है। कलापमु में 'विदूषक' को 'माघविगाडु' कहा गया है। क्योंकि वह सत्मभामा की सखी का वेश धारण करता है। 'गोल्लकलाप में सन्कुरी रंगय्या का हास्य गुदगुदाता अवश्य है।

प्रथम यक्षगान 'सुग्रीव विजय' के बाद कई यक्षगान लिखे गये, जिसमें प्रोलुगंटि चेन्नकवि का 'सौभरि चरित्र' उल्लेखनीय है। चेन्नकवि को 'अष्टभाषा कवि' की उपाधि मिली थी। तंजौर के नायक राजाओं के बाद मराठा शासकों ने भी यक्षगान को बढावा दिया। पुरूषोत्तम दीक्षित के 'तंजापुरान्नदान महानाटक', मन्नारदेव के हैमाब्ज नायिका स्वयंवर' महत्त्वपूर्ण यक्षगान है।

विजयराघव के मृत्यु के 17वर्षों बाद तंजौर पर मराठी शासक एकोजी के पुत्र शाहजी (प्रथम) का शासन स्थापित हुआ। शाहती के 21यक्षगान प्राप्त हुए, वे हैं- जलक्रीड़ाएँ, किरात विजय, कष्णविलास, सतीदान शूर, सीता कल्याण, सती पतिदान विलास शांता कल्याण, विष्णु पल्लकी, सेवा प्रबंध, शंकरपल्लवी सेवा प्रबंध, शचीपुरंदर, बल्ली कल्याण, विघ्नेश्वर कल्याण, रूक्मिणी- विनोद चरित्र, पार्वती परिणय, रतिकल्याण, रामपट्टाभिश क, गंगा पार्वती संवाद, द्रौपदी कल्याण, त्यागराज विनोद चरित्र आदि। शाहजी के दरबारी कवि गिरिराज ने राजकन्या

परिणय, राजमोहन कोरवंजि, लीलावती कल्याण, वादजय नाटक, सर्वांगसुन्दरी विलास, शाहैन्द्र विजय, कवि सुब्बन्ना का 'लीलावती', शाहजीय, शेषा चलपति का शाहराज विलास, सरस्वती कल्याण, तुकडोजिराजा, का 'शिवकामसुन्दरी परिणय', आदि लोकप्रिय यक्षगान है। मदुरा के तिरूमल कवि का 'चित्रकूट महात्म्य', मैसूर के कवि गोगुलपाटि कर्मनाथ का 'मृत्युंजय विलास' तथा अज्ञात कवि का चिक्कदेवराय विलास', ओबयमन्त्री का 'गरुड़ाचल' (चेचु नाटक) अक्क प्रधान का 'कृष्ण विलास', 'भीमसेन विजय', चेंगस्वनराय का 'गोल्ल कथा', सूरय्या का 'विवेक विजय', कृष्ण मिश्र का 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि उल्लेखनीय यक्षगान है, जो तेलुगु साहित्य को समृद्ध बनाते हैं।

लोकगीत परंपरा अथवा तेलुगु गीति साहित्य - प्राचीन काल से लेकर अब तक मानव मनोभावों की अभिव्यक्ति छंद तथा गीत के माध्यम से करता रहा है। प्रकृति के प्राणियों में मनुष्य की सौंदर्य पिपासा और आत्म-विकास की प्रवृत्ति, उसे नित -नये प्रयोग हेतु प्रेरित करती है। उसके मनोभाव ध्वनि के माध्यम से गीतों के रूपम में प्रकट हुए हैं। तेलुगु में लोकगीतों की स्वस्थ परंपरा रही है। तेलुगु के लोकगीतों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। सर्वप्रथम वे लोक गीत है जिनका किसान, चरवाहा, बैलगाड़ी हांकने वाला, चक्की पीसनेवाली आदि के द्वारा प्रयोग किया जाता है, इन लोकगीतों का विभाजन इस प्रकार किया है-

कोत गीतमु (फसल का गीत), ऊतगीतमु (मजदूर का गीत), बालेशुपदमु (मजदूर का गीत), पर्वतपदमु (पहाडी़ गीत), रोकटि पाट (धान कूटते समय गाया जाने वाला गीत), वेन्नेल पाट (चाँदनी का गीत,) पेंड़िल पाट (विवाह का गीत), जाजर पाट (स्त्रियों का गीत), आदि में समय के साथ -साथ परिवर्तन होता रहा। इन गीतों में क्षेत्रीयता, स्थानीय भाषा की प्रचुर मात्रा पायी जाती है। दूसरे प्रकार के लोकगीत लिखित रूप में पाये गये हैं, जो वीर पुरूषों के चरित्र, प्रेम कथाओं और हास्य-विनोद के रूप में प्राप्त होत हैं। तीसरे प्रकार के लोकगीत ईशभक्ति से संबंद्ध हैं इन गीतों को तेलुगु में कीर्तन कहते हैं। तेलुगु में **12**वीं शती से लिखित लोकगीत प्राप्त होते हैं। सोमनाथ के 'बसवपुराण' में भी कुछ लोकगीतों का उल्लेख है - संगर माया स्तवमुलु, प्रभात पद, पर्वत पद, तुम्मेद पाटलु, आनन्दपद, शंकर पद, निवालिपद, छालेशु पद, गोब्बिललु पाटलु, वेन्नेलपद, सज्ज पद आदि बढे, बालकों और युवा के लिए लिखे गये लोकगीत है। तेलुगु में द्विपद कंद, तेटगीत, आटबेलदी, सीसमुलु, तरूवोजुलु आदि छंद गेय होते हैं। तेलुगु में बालक से लेकर वृद्ध तक के लिए गीतों की परंपरा रहीं है जैसे- लोरियाँ, गोपी गीत, ओखली गीत, कालीय मर्दन, जलक्रीडा देवर भाभी, कुशलव कथा, मिलन गीत, सुमंगली गीत, नाविक गीत, धान की रोपाई के गीत , रूई की धुनाई आदि के गीत अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

श्रीनाथ कृत 'पल्नाटि वीर चरित्रमु' में साहित्यिकता का पर्यापत पुट है। विस्तृत कथानक को गीत के रूप में पिरोना स्चयं में महत्पूर्ण घटना है। श्रीनाथ के बाद अठारवहवीं शती में 'बोब्बिलि कथा' का उल्लेख मिलता है। इसमें बोब्बिलि वेलमा लोगों की ओर से रंगारायुडु वेंगलरायुडु तांड्र पापय्या और मल्लम देवी के शौर्य की गाथा है। तेलुगु में बुर्रकथाओं' का पर्याप्त प्रचार रहा है। उत्तर भारत की रामलीला, रासलीला की तरह यह आंध्रवासियों से प्रचलित थी।

बुर्रकथाओं में श्रृंगार, वीर, हास्य, शांत आदि रसों का प्रयोग किया जाता था। प्रमुख बुर्रकथायें हैं- कामम्म कथा, चिन्नम्म कथा, कम्मवारि पडति कथा, लक्ष्मम्म कथा, वीरम्म पेरंटालु आदि। इन बुर्रकथाओं में सती, पतिव्रता, संतति हेतु कठिन तप करने वाली स्त्रियों का उल्लेख है। बुर्रकथाओं की उदान्त भावना के कारण ही यह आधुनिक काल में भी प्रचलित है।

तेलुगु में प्रेम काव्यों का संयुक्त परिवार की दृष्टि से खूब महत्त्व रहा हें देवर-भाभी, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका साली-जीजा आदि के प्रेम कई बार इन गीतों में वासनात्मक रूप भी धारण कर लेते हैं। उदाहरण के लिए एक युवती का प्रेमी मर जाता है। लेकिन शर्म के कारण वह अपने आँसू को रोके रहती है लेकिन संयागे से उसके घर का बछड़ा मर जाता है तो वह उसके माध्यम से अपना दुःख विगलित करती है। 'चल मोहन-रंगा' लोकगीत की एक पंक्ति का अर्थ है- ''मेरे मोहन, ऐसा कोई नहीं जिसे हम अपना कह सके। अतः नदी के तट पर जीवन मधुर बनायेंगें लेकिन मेरे आंसुओं से ही मेरी गगरी भर गई हैं''.....। इस प्रकार लोकगीतों में प्रकृति चित्रण भी जीवंत हो उठा है। भजन-कीर्तन आदि की परंपरा भी लोकगीतों के रूप में रही है।

तेलुगु का संगीत - कीर्तन साहित्य - त्यागराज ने कहा था- प्राण और अनल के संयोग से प्रणव सप्त स्वरों में व्यक्त हुआ है। वे कहते हैं'- ''न नादने बिन, गीतमु, न नादेन बिना स्वरम् न नादेन बिना रागम् तस्मान्नादात्मकम् जगत् है।'' कीर्तन के विकास में जनपद गेयों का बहुत महत्त्व है। तेलुगु भाषा की सहज मधुरता, प्रसाद गुण संगीत को और अधिक हृदयग्राही बना देती है। तेलुगु संगीत के लिए कर्णाटक शब् का प्रयोग किया जाता है। महाकवि श्रीनाथ और कृष्णदेवराय ने तेलुगु के लिए 'कर्णाट' शब्द का प्रयोग किया है। तेरहवीं शती में कीर्तिन गीत के लिखे जाने का उल्लेख है। जानपद गीतों में अर्थ की अपेक्षा शब्द का महत्त्व होता है। जबकि कीर्तन में स्वर ही अर्थ में हो जाते हैं। कीर्तन में अनुस्वार का अभाव तथा अन्त्य मुद्रा का प्राचुर्य होता है।

कृष्ण कवि - ताल, स्वर मिश्रित गीतों के रचनाकारों में कृष्ण कवि का नाम अग्रगण्य है। इनकी कृति 'सिंहगिरि वचन, 'तरूगंधि वचन' आदि में राग और ताल तो है किंतु 'पल्लवि (संचारि 'अनुपल्लवि' (अनुस्वर) और 'चरण' (स्वर) का विभाजन नहीं हैं।

ताल्लपाक अन्नमाचार्य - (सन् 1424 ई. से 1502 ई.) इनके कीर्तन की जनप्रियता ने ही इन्हें 'पद कविता पितामह' और 'संकीर्तनार्चा की उपाधि दिलाई। तिरूपति के गुफा में ताम्र पत्र पर इनकी रचना और मूर्ति दस वर्ष पूर्व प्राप्त हुई है। इन्होनं 32 हजार पदों की रचना थी, जिसमें 12 हजार ही प्राप्त हुए हैं। तिरूपति के अधिष्ठाता भगवाम वेंकटेश्वर और उनकी पत्नी अलिवेलुमंगम्मा के परस्पर प्रेम को उन्होनें अपने पदों में दिखाया है। कर्णाटक के संगीतकारों में अन्नयमय्या अग्रणी है। कन्नड़ में भक्त पुरंदरदास इनकी शेली का अनुसरण करते हैं। अन्नमय्या ने तेलुगु में 'कीर्तन लक्षण' ग्रंथ लिखे थे। जिसे श्री राल्लपल्ली अनन्त कृष्ण शर्मा ने अन्नमय्या के कुछ पद स्वर'लिपि प्रकाशित किया है।

क्षेत्रय्या - आंध्र के मुव्वा गांव में जन्मे क्षेत्रय्या ने अपने आधिकांश पद ग्रामदेवता गोपाल को समर्पित किए। इन्होंने 40 रागों में 18 देवताओं से सम्बन्धित गीत लिखे है। अन्नमय्या, क्षेत्रय्या

की शैली में कई अन्य कवियों ने भी संगीत लिखे हैं - शोभनगिरि, बोल्लवरमु, गट्टपल्ले, धन सीनय्या, वेणंगि, सरांगपाणि आदि। सीनय्या का 'शिवदीक्षापरूरालतु' आज भी गाया जाता है।

भद्राचल रामदास - रामदास अथवा कंचेर्ल गोपन्ना ने गोलकोण्डा नरेश द्वारा कैद किए जोने के बाद कारावास में अपने आराध्य की स्तुति मार्मिक शब्दों में की है।

सुब्रह्मण्य और उनके कीर्तन - इनके कीर्तन गीत 'आध्यात्म रामायण कीर्तन' के नाम से संकलित किया गया है। यह कीर्तन पार्वती की जिज्ञासा पर शिव द्वारा कही गया रामकथा पर आधारित है।

त्यागराज - गायक - शिरोमणि त्यागय्या का जन्म् 1759 में तिरूवैयार ग्राम में हुआ था। कर्णाटक संगीत का पूर्ण विकास इन्हीं के कारण हो पाया। किंवदंती है कि स्वयं नाद मुनि ने इन्हें संगीत की शिक्षा दी थी। उन्होंने अनेक धुन लेकर पद-गीत लिखे हैं। उन्होंने संगीत में साहित्य को भी उचित अवसर दिलाया। इनकी रचनाएँ आध्यात्मिकता से भरपूर है। 'कोबर पंचरत्न', पंचरत्न', 'धनराग पंचरत्न' विशेष रूप से उल्लेखनीय हें

श्याम शास्त्री - इन्होंने दवी मीनाक्षी 'नव रत्न मालिक', कीर्तन लिखा। आनंद भैरवी राग में ये सिद्धहस्थ थे। कांभोज राग, शंकरा भरण राग का 'सरोजदल- नेत्र' और कल्याणी राग का 'तल्ली निन्ने नेर नम्मिनानु' गीत महत्त्व पूर्ण है।

इनके अतिरिक्त कई अन्य कीर्तनकार और उनके कीर्तन महत्त्व पूर्ण है। मुतैय्यास्वामी, वीण कुप्पयर (वेंकटेश्वर पंचरत्न, जगदभिराम, कोनियाडिन, नापै'' पंत पराड्मुख मिले, कालहस्तीश आदि) सुब्बराम शास्त्री (जननी नितु बिना, निनु सेविंचिति) स्वाति तिरूनाल (पाट्टिपार्वती, सरस साभिदान') आदि। तमिल कवि श्रीनिवास अय्यंगार की 'विजय गोपाल', सामज वंरदा, (सावेरि राग) नेरम्मित (कानड़ राग) सरगनु पालिंच (केदार गोल राग) तथा पल्लवि शेश य्या की 'एदुरूगा', (खमाज राग), इकनन्नु ब्रोव ' (भैरवी राग) 'अलनाडु विन्नपंबु (तोडी़ राग), महात्रिपुर आदि महत्वूपर्ण कीर्तन गीत है।

कीर्तन के कई भेद होते हैं, जो उनकी उपयोगिता को बोधगम्य बनाते हैं- समुदाय, कीर्तन, उत्सव कीर्तन, नवार्ण-नवग्रहपंचलिंग कृति, देवी स्तोत्र, शतरत्न मालिका, कालहस्ती वेंकटेश्वर पंचक, मणिप्रवाल शली कीर्तन आदि।

आधुनिक समय में अनेक लेखक न कवि है जो और उनके कीर्तन विविध रागों में कीर्तन-रचना करते हैं। प्रमुख कीर्तनकार हैं - पट्नम् सुब्रह्मण्य अय्यर (समयनिदे) निप्नदास वरदा, नीपदमुले, निन्नजूचि धन्युडैति आनय्या, चेंगल्व राय शास्त्री, रामस्वामि शिवन्न, कुंडुकुडि कष्णराय्या, पापनाशि शिवय्या, मुतैय्या भागवतार (नीमीद चल्लंग), मैसूर वासुदेवाचार्य (ब्रोचे बारेवरूरा) करिगिर राम, कवि कुजर भारती, चिन्नि कृष्णदास, तचूरि सिंगराचार्य (देवी मीनाक्षी), रामनाथ शास्त्री, तिरूपति नारायणय्या (पराकेल सरस्वती), वेंकटेश शास्त्री, सरस्वती शेश शास्त्री, लिंगरातु दोरस्वामी (श्रृंगार लहरी), कुप्पुस्वामी प्रभृति। **19**वीं शती के प्रमुख कीर्तनकार हैं - श्री पुलुगुति लक्ष्मीनरसमाँबाने (मंगल हारति) सर्व श्री परंकुशदास बिटठ रामदास, तारिगोंड बेंकमांबा (श्री लक्ष्मी स्थितांग चिद्रप चिन्मया शिवनुत शुभांग), पुलिमेल राघवार्य, काकिनाडा

पद्यानाभदासु , एल्लुरि मल्लिकार्जुन, सरस्वतुल सुब्बारायडु, मद्धालि वेंकट नरसिंहहुडु, वीर भद्रय्या, अल्लूरि रंगारावु, मैलवरपु रामय्या आदि।

अचल बोध – संप्रदाय इस आस्था को मानने वाले पूजा, संध्या जैसे नित्य कर्मों को उपेक्षा करते हुए हह योग क्रियाओं का समर्थन करते हैं। अचल बोध या अचलर्द्धेत संप्रदाय के संस्थापक हैं - पातुलूरि वी ब्रह्मम्। इनके कई शिष्य, प्रशिष्य हुए जिनमें सिद्दय्या और नासरय्या मुस्लिम थे तथा अन्य शिष्यों में कालव कोदय्या, तिरूमलेसिद्धकोटय्या, पोकल शेश चल नायडु, ईर्रि नारायुडु, सातानि कृष्णय्या (शूद्र जाति) चीराल वीरम्मा, वेदान्तम कोटम्मा, शिवराम भागवतुलु आदि मुख्य है। इन कवियों का आमजनता से धनिष्ठ सम्बन्ध था।

तेलुगु - व्याकरण, **छंद**, **कोश -**

व्याकरण - व्याकरण विद्या के द्वारा भाषा के शब्दों, रूपों और प्रयोगों का ज्ञान होता है। यह शब्दों की व्युत्पत्ति, अर्थ तथा प्रयोग-पद्धति को स्पष्ट करने वाला विवरण है। इसके कई भ हैं, जैसे- अनुशासनिक, वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक, एकदेशी, विद्यार्थी व्याकरण आदि। तेरहवीं, शती में आंध्र भाषा – भूषण' व्याकरण ग्रंथ की रचना कन्नड़ के नागवर्मा कृत 'कर्नाटक भाषा – भूषण' के आधार पर की गयी। इसके बाद के सभी व्याकरण ' सिद्धान्त कौमुदी' के आधार पर लिखे गये। तेलुगु का प्रथम व्याकरण नन्न्य भट्ट कृत 'आन्ध्र शब्द चिन्तामणि' को कुछ विद्वान मानते हैं। जबकि **13**वीं शती प्राप्त केतना कृत 'आंध्र भाषा भूषण' को बहुत से विद्वान तेलुगु का प्रथम व्याकरण मानते हैं। केतना ने तेलुगु भाषा के शब्दों के तत्सम, तद्भव, शुद्ध तेलुगु, देशज, ग्राम्य आदि भागों में बाँटा है। इसमें कुल **190** पद है। दोनों वैयाकरण ग्रन्थ एक दूसरे की पूरक प्रतीत होती है।

विन्नकोट पेद्दना - 14वीं शती में पेदन्ना द्वारा लिखा गया ग्रंथ 'काव्यालंकार चूड़ामणि; में अलंकार शास्त्र का विवेचन है। इसमें संज्ञा, अजन्त, हलन्त, संधि, विभक्ति, समाज, तद्धित, क्रिया आदि का संक्षिप्त उल्लेख हैं। 1435 ई. में अनंत की 'छन्द' नामक कृति में छंद, छंदोभंग, विसन्धि, पुनरूक्ति, संशय आदि दशविध दोषों का उल्लेख हैं। संधि-भेद, समास, क्रिया-विशेष , विशेश णादि पर भी प्रकाश डाला गया है। इन्होंने तेलुगु में अप्रयुक्त अव्ययों को वृथ ' कहा है। 1480 में वेल्लंकि तातम भट्ट ने। कवि चिन्तामणि' के चार में से दो अधिकार व्याकरण से संबद्ध है। मुद्दरातु रामना की कृति कविजन संजीवनी' (1550ई.) की प्रथम तरंग छंद तथा शेश तीन तरंगों में शब्द समास और संधियों की व्याख्या की गई है। रघुनाथय्या की 'लक्षण दीपिका' अथवा 'सर्वलक्षण सार संग्रह' (1600ई.) में रेफ पर चर्चा की गई है। त्रिलिंग शब्दानुशासन' को कुछ विद्वान मंडलक्ष्मीनरसिंह कवि की रचना मानते हैं तो कुछ तेरहवीं शती के अथर्वण की रचना मानते हैं। 'त्रिलिंग शब्दानुशासन' में कण्व, पुष्पदन्त, रावण, सोम आदि को वैयाकरणों के रूप में उल्लेख किया गया है। गणपवरमु वेंकट कवि कृत 'सर्वलक्षण शिरोमणि' एक विशाल ग्रन्थ है। इसमें छंद, अलंकार, कोश आदि के बारे में लिखा गया एक विषय ग्रंथ के समान है। सिद्धान्त कौमुदी के आधार पर इसका 'आंध्र कौमुदी' नाम रखा गया है। 1700ई. में गालि नरसय्या ने इसका अनुकरण कर कवि शिरोमणि' भाष्यकृति की रचना की। इसमें व्याकरण के

सूक्ष्मतिसूक्ष्म बातों की व्याख्या की गयी है। 'कविशिरोमणि' को अहोबल पंडितीय' भी कहते हैं। नरसय्या ने 'विकृत' विवेक' संस्कृत में लिखा।

पट्टाभिराम शास्त्री ने **1825** ई. में 'आंध्र व्याकरण' (पद्दाभि राम पंडितीय) की रचना की । धातु माला' इनकी दूसरी व्याकरण कृति है। राविपाटि गुरूमूर्ति शास्त्री ने **1852** में प्रश्नोत्तरान्ध्रव्याकरण' प्रश्नोत्तर शैली में लिखा तथा **1856** में वेंकटमरमण शास्त्री ने 'लघु व्याकरण' सूत्र पद्धति पर लिखा। तेलुगु का सर्वांगीण और व्यस्थित व्याकरण परवस्तु चिन्नरासूरि ने लिखा। इनकी कुद आठ व्याकरण ग्रंथ हैं, जिसमें 'बाल व्याकरण' को छोड़ सभी अधूरी कृतियाँ है जैसे- 'आन्ध्र शब्द शासन-, 'संस्कृत सूत्रांध व्याकरण','आंन्ध्र शब्द चिन्तामणि की व्याख्या', 'शब्द लक्षण संग्रह', 'पद्यान्ध्र व्याकरण', आन्ध्र धातुनाममाला, विभक्ति बोधिनी' आदि। बाल व्याकरण के अनुकरण पर बहुजनपल्ली सीतारामाचार्य ने 'पौढ़ व्याकरण' की रचना की। ये दोनों एक दूसरे की पूरक भी कही जा सकती है। प्रौढ़ व्याकरण' को 'त्रिलिंग लक्षण शेष' भी कहा जाता है। संस्कृत में व्याकरण,अलंकार को काव्य-प्राण माना गया है। जबकि तेलुगु में छंद ही काव्य प्राण है। छंद शास्त्र की रचना पद्य रचना के साथ ही होता था। तंजौर के सरस्वती महल (प्राचीन पुस्तकालय) में पिंगल पुस्तकें, सुरक्षित संग्रहित हैं।

कस्तूरि रंग कवि (1740ई.) ने तथा उनसे 250 वर्ष पूर्व काचनस बमवना ने 'कवि सर्प गरूड़' में नन्नय के 'लक्षण सा' का उल्लेख किया है। छंद शास्त्र के लेखकों में नन्नय के बाद मल्लिय रेचना का नाम आता है। रेचना की कृति 'कवि जनश्रय' (छंद ग्रंथ) की रचना में भीमना के जेष्ठ पुत्र वाचकाभरण ने सहयोग दिया था। अथर्वणाचार्य को महाभारत के विराट पर्व का अनुवादक माना जाता है। 1520-60 के मध्य 'अथर्वणस छंद' प्राप्त हुआ, जिसमें शुभ-अशुभ अक्षरों के परिणाम, यति, प्रास का विवेचन हुआ है। तिक्कना कृत 'कवि बाग्बंध' में अक्षरों के कुल,गुण गणों के स्वरूप, गणाधिदेवता, वर्णाधिदेवता, गणराशि, राशि अधिपति, अक्षरों का शत्रु और मित्र, यति, प्रास आदि की विवेचना हुई है।

1320 ई. में श्रीधर का 'श्रीधर छंद' **1380** ई. में 'कवि राक्षस छंद' (अप्राप्त ग्रंथ), विन्नकोट पेद्दना 'कात्यालंकार चूड़ामणि' के नौ में से छ उल्लास अलंकारों से तथा दो छंदों से तथा एक व्याकरण से संबद्ध उल्लास है। **1480** ई. में वेल्लंकि तातम भट्ट का 'छंदोदर्पण', अनंतकवि का 'छदोदर्पण' (अनन्तामात्य छंद) आदि के छंद से संबंधित कई ग्रन्थ हैं। अन्य छंद ग्रन्थ निम्नतः दृष्यमान है-

	पुस्तक	लेखक	समय
1	कवि गजाकुश (कविराज गजांकृश)	भैरव	**15**वीं शती
2	लक्षण दीपिका	गोरना	**15**वीं शती
3	कवि सर्प गरूडमु (अपूर्ण उपलब्ध)	काचन बसवना	**1470**ई.
4	प्रयोगसार (अपूर्ण उपलब्ध)	काचन बसवना	**1470** ई.
5	कवि वर्णामृत (कुकवि कर्णकठोर)	कौलूरि आंजनेय कवि	**1590** ई.
6	कवि कंठाभरण (अपूर्ण प्राप्त)	काचन वासना	**16**वीं शती

7	लक्षण विलास (यति प्रास विलास)	वनुमूर्ति वेंकटाचार्य	**17**वीं शती
8	लक्षण दीपिका	रघुनाथय्या	**16**वीं शती
9	वादांग चूड़ामणि (अपूर्ण प्राप्त)	मल्लना	**17**वीं शती
10	लक्षण चूड़ामणि	कस्तूति रंग कवि	**1740** ई.
11	कवि लक्षण सार संग्रह	रत्नाकर गोपाल कवि	**17**वीं शती
12	कवि संशय-विच्छेदमु	आडिदमु सूचना	**1760** ई.
13	कृष्ण भूपालीयम	चंद्र कवि	**1819** ई.
14	वीर भूपालीयमु	तिम्म कवि	**18**वीं शती
15	सरलान्ध्र वृत्तरत्नाकर	वेल्लूरि लिंग मन्त्री	**19**वीं शती
16	सकल लक्षण सार	अद्दनूरि रामदास कवि	**19** वीं शती
17	सर्व लक्षण सार	रंग कवि	**19** वीं शती
18	सुकविजन मनोरंजन	कुचिमंचि वेंकटराय	**19** वीं शती
19	कविता लक्षण सार	ओरूगटि रामय्या	**19** वीं शती
20	कवि चिंतामणि	वेल्लंकि तातम भट्ट	**1480** ई.
21	छंदोवर्पण	वेल्लंकि तातम भट्ट	**1550** ई.
22	लक्षण सार संग्रह	कवि पेद्दना	**1560** ई.
23	सुलक्षण सारमु	लिंगमगुंट कवि	**1560** ई.
24	बालबोध छंदमु	लिंगमगुंट कवि	**1560** ई.

इस काल के श्रेष्ठ छंद शास्त्रियों में अप्प कवि, गणपलरमु वेंकटकवि का नाम श्रेष्ठ छंद शास्त्रियों में लिया जाता है। इनकी कृति 'सर्वलक्षण शिरोमणि' में अक्षर तथा गण, यति, वृत प्रास, यक्षगण चाटु संद्दलि, पद्दलि, कल्याण, विरूदावलि आदि की विवेचना है। 19वीं शती में नडिमेंटि वेंकटपति ने 'चित्रबन्ध दर्पण' में चित्र बन्ध के सम्बन्ध में लिखा है। आधुनिक युग में बोब्बिलि राज्य के कवि मंडपाक पार्वतीयशम शास्त्री ने 'प्रबंध संबंध बंध निबंधन' नामक लक्षण ग्रंथ की रचना करके इस कमी को पूरा किया।

अलंकार- तेलूगु साहित्य में अलंकार पर बहुत ही कम स्वतंत्र ग्रन्थ प्राप्त है। 12वीं शती में प्राप्त कवि जनाश्रय कृति में छंद के साथ अलंकारों की विवेचना की गयी है। 1402 ई. में पेद्दना कृत 'काव्यालंकार चूड़ामणि' के नौ में से छः उल्लासों में अलंकार विवेचन है। अनन्त कवि कृत 'रसाभरण' (रसालंकार) में काव्यप्रकाश (मम्मट,साहित्य दर्पण (विश्वनाथ पंचानम) प्रताप रूद्र भूश ण (विद्यानाथ) के मुख्य बातों को लिय गया है। गौरना की 'लक्षण दीपिका' में लक्षण सहित अलंकारों का विवेचन है। वेल्लंकि तातम भट्ट की 'चिन्तामणि' **1480** ई. में लिखा गया। भट्टुमूर्ति का 'काव्यालंकार संग्रह' **16**वीं शती का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। लेखक द्वारा इसे राज्याश्रयदाता को समर्पित करने के कारण 'इसे नरस भूपालीय' भी कहते हैं। इसमें **18** श्रृंगार चेष्टाओं का उल्लेख है। चिन्न कवि पेद्दना ने सर्पप्रथम 1550 ई. में 'लक्षण सार संग्रह' में नाटक के लक्षणों का उल्लेख है। कवि रघुनाथय्या ने 1600 ई. में लक्षण दीपिका में नांदी, कवि,

नायक, महाकाव्य, खंडकाव्यादि पर विचार किया है। गणपवरमु वेंकट कवि ने 1676ई. में 'सर्व लक्षण शिरोमणि' में अलंकार से संबंधित अध्याय को 'आन्ध्र प्रताप रूद्र यशोभूश ण नाम दिया गया है। इसके अतिरिक्त रस, छंद की विस्तृत व्याख्या की गयी है। 1700ई. में गुडिपाटि कोदण्ड कवि ने भानुमित्र के संस्कृत में 'रस मंजनी' को तेलुगु में प्रस्तुत किया है। **1750** ई. में नारायण कवि ने श्रृंगार ग्रंथ 'रंस मंजरी' का प्रणयन किया। अडिदमु सूरना ने **1760** ई. में 'चन्द्रालोक' की रचना की। कटिकनेनि राम कवि ने 'कुवलयानंद प्रकाशिका' का प्रणयन अप्पय दीक्षित के 'कुबलयानंद' के आधार पर किया। इस प्रकार संस्कृत के मार्ग से तेलुगु साहित्य प्रौढ़ता को प्राप्त करती रही।

कोश - 1550 में 'सीस पद्य निघंटु' कृति लिखकर चौडप्पा ने प्रथम तेलुगु कोश तैयार किया। किंतु गणपवरमु 'सर्वलक्षण संग्रह' का द्वितीय उल्लास 'बेंकटेशान्ध्र' तेलुगु का प्रथम पर्यायवाची शब्दकोश माना गया है। नुदुलपटि वेंकटार्य के 'आन्ध्र भाषार्णवमु' में शब्दों का विभाजन कर प्राचीन शब्दों को अर्थ ग्राही बनाया गया है। पैडिपाति लक्ष्मण कवि का 'आन्ध्र नाम संग्रह' आन्ध्र नाम कोश की रचना 'आंध्र नाम संग्रह' के आधार पर की। **18**वीं शती में कस्तूरि रंग कवि की 'सांब निघंटु', सन्यासी कवि के 'सर्वान्ध्र सार संग्रह' 1840 में बूरप राजु के 'आन्ध्र पदाकर' आदि में संस्कृत के अमर कोश का अनुकरण किया गया है।

अंग्रेजों के कोषों का अनुकरण करते हुए तेलुगु में प्रथम कोश मामिडि वेंकय्या के द्वारा अकारादि क्रम में 'आन्ध्र दीपिका' (अपूर्ण) की रचना की जिसमें गद्य में अर्थ दिया गया है। कैंपबेल नामक अंग्रेज ने 'कैपबेल डिक्शनरी' , 'ब्राउन ने 'ब्राउन कोश ' या 'ब्राउन डिशनरी' की रचना कर तेलुगु भाषेतर लोगों हेतु तेलुगु ग्राह्य बनाया। कर्कबाडि निघुंटु के लेखक का नाम अज्ञात है। 1875में श्री परवस्तु चिन्नयसूरि ने निघंटुओं के शब्दों का अकारादिक्रम से प्रस्तुति का काम शुरू किया जिसे उनके शिष्य श्री बुडानपल्लि सीतारामाचार्य ने 'शब्द रत्नाकरमु नाम से पूर्ण किया।

ओगिराल जगन्नाथ कवि का 'आन्ध्र पदपारिजातम् महंकालि सुब्बरामशास्त्री का शब्दार्थ चंद्रिका', कोट लक्ष्मीनारायण का 'लक्ष्मीनारायणीय', शिरेभूश णमु रंगाचार्युलु का 'शब्द कौमुदी', नादेल्ला पुरूषोत्तम का 'पुरूषोत्तममीयमु', कोटश्यामल कामशास्त्र का 'आन्ध्र वाचस्पत्यम्' कनुमर्ति वेंकट्रामश्री विद्यानंदनाथ का 'संख्यार्थ नाम प्रकाशिका', संख्यावाचक', चिंतासुंदर शास्त्री का 'संस्कृत शब्दरूप रहस्यदर्शन आदि उल्लेखनीय शब्दकोश हैं। पीठापुर रियासत के महाराज ने कई विद्वानों के द्वारा वृहत् शब्दकोश तैयार करवाया। श्री मोरेपल्लि रामचंन्द्र शास्त्री का 'नुडिकडवि' (अपूर्ण) में शब्दों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाल गया है। इस प्रकार तेलुगु कोश की समृद्ध परंपरा का विकास समय के प्रवाह के साथ होता रहा।

धर्मशास्त्र - भारत जैसे धर्मप्राण देश में दक्षिण भारत अत्यधिक धार्मिक प्रांत माना जाता है। अचल वेदांत के बाद परशुरामपंतुल लिंगमूर्ति की कृति 'सीतारामांजनेय संवाद' में साख्य योग तथा वेदांत के तत्वों का विवेचन हुआ है। सुब्रह्मण्यम् का 'आध्यात्म रामायण', श्री नागेश्वर राव पंतुलु का आंध्र बाड्मय चरित्र, 'नारद परमेष्ठि संवाद आदि उल्लेखनीय धर्मशास्त्र कृति हैं।

वेगिनाटि कोंडय्या कृत 'निर्णय सिंधु', मूलघटिक केतना का 'विज्ञानेश्वरीयमु', 'स्त्री धनाध्याय', परमानंद तीर्थ का 'ब्रह्म विद्या सुधार्णवमु', आदि महत्त्व पूर्ण धर्मशास्त्र है।

गणित - पावुलूरि मल्लनार्य का गणित शास्त्र - तेलुगु का प्राचीनतम गणित शास्त्र माना जाता है। 'दशविध गणित' को विद्वान वीराचार्य के संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद मानते हैं । कई हस्तलिखित प्राच्य पुस्तक भण्डार में संग्रहित है। कोडूरू बल्लभामात्य का 'लीलावती गणित, पिंगली वेंकटाद्रि का 'क्षेत्र गणित' आदि महत्वूपर्ण हैं।

ज्योतिष - तेलुगु में फलित ज्योतिष का अत्यधिक महत्त्व रहा है। कोंटिकलपूड़ि कोदंडराम सिद्धांती का 'आर्यभट्ट सिद्धान्त व्याख्यानमु' महत्त्व पूर्ण ज्योतिष ग्रंथ प्राच्य पुस्तक भण्डार में सुरक्षित है। धर्म, गणित, ज्योतिष के अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्विद्या, आयुध आदि पर भी ग्रंथ लिखे गये। मनुमंचि भट्ट का 'अश्वलक्षणसार' बहुत पुराना गंथ है। आयुध परीक्षा', 'धनुर्विद्या विलास' 'तुपाकि शास्त्र (बंदूक से सम्बन्धित) आदि भी महत्त्व पूर्ण है। पेरूमाणमुल गणपयामात्य का 'वास्तुसार संग्रह' वास्तु शास्त्र का उत्तम ग्रंथ है। अभिनय दर्पण' को 'दुग्गिपाल गोपाल कृष्णय्या 'डाक्टर आनंद तथा के0 कुमार स्वामी ने इंग्लैण्ड से प्रकाशित किया था। 'अभिनय लक्षण', 'नाट्य लक्षण' भी उल्लेखनीय है। गुन्नमार्य का 'मन शिल्प शास्त्रमु', शिल्प कला का उत्तम ग्रंथ है।

विज्ञान ग्रंथ (1850-1925) - अंग्रजी शासन काल के समय अन्य भाषा-भाषियों की तरह तेलुगु के लोगों में भी जागृति आई। स्व0 कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु ने तेलुगु का युग प्रवर्तन किया। आयुर्वेद संबंधी ग्रंथों पर इन्होंने विशेष ध्यान दिया। स्वर्गीय कोमर्राज वेंकट लक्ष्मणराव पंतुलु ने 'विज्ञान चन्द्रिका ग्रन्थ माला', आयुर्वेद मार्तण्ड गोपालाचार्य का 'आयुर्वेदाश्रम ग्रंथ माला तथा चरक', सुश्रुत रस प्रदीपिका', जैसी प्राकृतिक चिकित्सा से संबंधित ग्रंथों का प्रणयन हुआ। प्राकृतिक धर्म-परिषद की स्थापना हुई। 'प्रकृति चिकित्सा सार' और 'सूर्य किरण चिकिसकों इस परिश द के द्वारा ही प्रकाशित हुआ। स्वर्गीय उमर अलाशा तथा हकीम रहमतुल्ला वेग का 'इलाजुल-गुल्फा' युनानी चिकित्सा से सम्बंधित ग्रंथ है । कबूतरम् श्रीराम शास्त्री का 'पार्थिव पदार्थ चिकित्सा', श्रीमाडू गणपतिराव का 'सारूप्यौशध शास्त्रमु', 'होमियोषैथी से सम्बन्धित ग्रंथ है। चिल्लीरगे श्रीनिवास राव का 'आंग्लेय वैद्य चिन्तामणि', उल्लेखनीय एलोपैथी ग्रन्थ है। उप्पुलुरू पट्टाभिरामा राव एवं वी.वी.एन. आचारी का ग्रन्थ समस्त चिकित्सा शास्त्र के एकीकृत एवं तुलनात्मकता के लिए महत्त्वपूर्ण है। येजेंड्ल श्री रामुलु चौधरी का 'अनुभव पशु वैद्य चिन्तामणि', मुहम्मद कुतुबुद्धीन का 'अश्व चिकित्सा सार', अडवि सांबशिवराव का 'अश्व लक्षण सार संग्रह' महत्त्व पूर्ण है। नारायण मंत्री का 'सहदेव शास्त्र (**1885** ई. महत्त्व पूर्ण) पशुचिकित्सा ग्रंथ है।

आयुर्वेदिक निघंटु में बाबिल्ल वेंकटेश्वर शास्त्री का 'वस्तुगुण महोदवि' उल्लेखनीय है। फलित ज्योतिष पर लिखित ग्रंथ 'बृहजातक' के लेखक का नाम अज्ञात है। इसके अतिरिक्त 'ज्योतिषार्णव नवीनत'', 'सूर्य सामुद्रिक शास्त्र' महत्त्व पूर्ण है।

दर्शन - धार्मिक ग्रंथों में कामशास्त्री का 'धर्मसिंधु , रामचन्द्राचार्य का गोत्र प्रवर संग्रह', कनुपर्तिम, मार्कण्डेय शर्मा ने पाराशर स्मृति', को अनुदित किया। नारायण भट्ट का याक्षवल्व्य स्मृति', विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरी' को, आदिनारायण शास्त्री ने बौद्ध धर्मसूत्रों पर भाष्य लिखा। कंदार्ड शेषाचार्य ने रामानुजाचार्य के श्री भाष्य' का अनुवाद किया। पुराणपंड मल्लव शास्त्री ने 'शंकर भाष्य' तथा हांडे रामराव ने 'माध्वाचार्य के भाष्य का अनुवाद प्रस्तुत किया। भारतीय दर्शन का दर्शन 'केवल्य नवनीत-, विचार सागर- ग्रंथ में देखा जा सकता है। गोरि सुब्रह्मण्यम शास्त्री ने तिलक का 'गीता रहस्य', तेलुगु में अनुदित किया। वीरेशलिंगम पंतुलु का 'तर्क संग्रह' उल्लेखनीय दर्शन ग्रन्थ है।

तेलुगु दैनिक 'आन्ध्र पत्रिका', मासिक 'शारदा भारती' के द्वारा कई लेखक अवतीर्ण हुए। मल्लादि वेंकटरत्नम् का 'प्लेटो राजनीति शास्त्रमु-, गोपालय्या का 'सुलभ पाक शास्त्र' बुलुम रामजोगिराव का 'योग व्यायायमु', नर सिंह नायुडु का 'शिल्पशास्त्रमु', गुरूनाथ शास्त्री, सरय्या शास्त्री का 'वास्तु शास्त्रमु', जोगिराजु पिंगलि वेंकय्या का 'कृषि शास्त्रतु', चल्ला लक्ष्मी नृसिंह शास्त्री का 'खिलांगलि शास्त्रमु', पसुमर्ति यज्ञ नारयण का 'नट प्रकाशिक-, सूरिशास्त्री का 'नाट्योत्पलमु पुराणं', आदि तेलुगु साहित्य को समृद्ध करते हैं। 'इण्डियन पीनल कोड' का अनुवाद तेलुगु में किया गया। डाक्टर चिलुकूरि नारायणराव ने तेलुगु को आर्य कुलीय सिद्ध करते हुए 'आंध्र भाषा चरित्र' (दो भाग) ग्रंथ की रचना की।

तेलुगु का साहित्यिक इतिहास - गुरूजाड़ श्रीराममूर्ति और वीरेशलिंगम् पंतुलु आदि ने नये-नये विषयों को व्यक्त करने के लिए हजारों नये पारिभाषिक शब्द बनाये। भाषा की सर्वतोमुखी उन्नति का प्रयत्न किया गया।

अर्थशास्त्र और राजनीति - प्लेटों के 'पॉलिटिक्स' का अनुवाद तेलुगु में अनुवाद किया गया। आत्मकूरि गोविन्दाचार्य को 'भारतीय अर्थशास्त्रमु' तथा भारतीय राज्योग शास्त्रतु' जैसी कृतियों की रचना कर अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के लिए नये पारिभाषिक शब्द गढे।

दंडक रचनाएँ - तेलुगु साहित्य की एक विधा 'दंडक' है। दंडक रचनायें संस्कृत में भी है। तेलुगु साहित्य में तीन प्रकार की दंडक रचनायें है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार देखा जा सकता है।

भक्ति दंडक - सर्वप्रथम तेलुगु में नन्नय के 'शिवदंडक' का उल्लेख होता है। 'किरातर्जुनीय कथा' में हय दंडक प्रयुक्त हुआ है। **14**वीं शती में जक्कना ने अपने विक्रमार्क चरित्र में 'देवी दंडक' लिखा। श्रीनाथकवि का 'काशी दंडमु' की रचना की है। इस प्रकार इसका प्रयोग काव्यों में समय के अनुसार होता रहा।

श्रृंगार दडंक - अम्मेर पोतनामात्य का 'भोगिनी दंडक', श्रृंगार दंडकमु' (ताल्लपाक पेद तिरूमला पार्युलु 1530 ई. में) , श्रीकालहस्तीश्वरी दंडकमु (धूर्जटीकवि **1500** ई. में) 'विद्यावती दंडकमु गणपवरमु' (वेंकट कवि, 1670 ई. में), मोहिनी दंडकमु' (मोहनी, 1650 ई.,बृहन्नायिका दंडकमु') नदुरूमाटि वेंकन्ना, 1730 ई. में चन्द्रानना दंडकमु' (साम्बशिव कवि, 1800 ई. में) चन्द्रानना दंडकमु (चिदंबर कवि, **1830** ई.) आदि उल्लेखनीय श्रृंगार दंडक हैं।

प्रकीर्णक दंडक - ताल्लपाक के 'अष्टभाषा दंडकमु' में संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, पैशाची, मागधी, प्राची, अवन्ती, सर्वदेशी आदि भाषाओं में श्री वेंकटेश्वर की स्तुति की गयी है। जबकि आधुनिक दडंक व्यंग्य रचना (पैरोडी) के रूप में लिखी जाने लगी है। जिन्हें प्रकीर्णक दंडक भी कहते हैं, जैसे तंबाकू, सिगरेट आदि को लेकर लिखी जाने वाली दंडक। इस तरह तेलुगु साहित्य सैकडो़ दंडकों से भरी हुई है। कलुगोडु अश्वत्यनारायणराव का 7000 पंक्तियों वाला 'दंडक रामयण' आज विलुप्त है। किंतु तेलुगु भाषी 'सूर्य दंडक' से दिन की शुरूआत करते हुए 'प्रसन्नांजनेय दंडक' तक अपने दिन को विराम देते हैं।

(1) अभ्यास प्रश्न -

(क) 'हाँ' या 'नहीं' पर यह निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

1. तेलुगु का आदिकाव्य 'महाभारत' है। (हाँ/नहीं)

2. तेलुगु में 'शतक साहित्य का अभाव है। (हाँ/नहीं)

3. तेलुगु में यक्षमान की समृद्ध परंपरा रही है। (हाँ/नहीं)

4. तेलुगु में चंपू काव्य रचनाओं का अभाव रहा है। (हाँ/नहीं)

5. तेलुगु के आदिकवि तिक्कना है। (हाँ/नहीं)

6. तेलुगु साहित्य में चलचित्र गीत लेखनकार नहीं हैं। (हाँ/नहीं)

7. तेलुगु में पर्याप्त कीर्तिन साहित्य लिखे गये हैं। (हाँ/नहीं)

8. तेलुगु में हेतुवादी साहित्य प्रचुरता के साथ लिखे गये हैं। (हाँ/नहीं)

2 - निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उसीक संख्या कोष्ठक में लिखिए।

1. तेलुगु के आदिकवि कौन है?

1- तिक्कना

2- नन्नय भट्ट

3- एईन्ना

4- श्रीनाथ

2. नन्नय-तिक्कना-एईन्ना ने किस ग्रन्थ की रचना की?

1- रामायण

2- महाभारत

3- भागवत

4- शंकुतला नाटक

3. तेलुगु नाटक के शेक्सपियर कौन है?

1- चिलकमूर्ति नरसिंहम

2- पनुगंटि लक्ष्मीनरसिंहम

3- धर्मवरम रामकृष्णमाचर्युलु

4- गुरजाड़ा अप्पाराव

4. आमुक्त माल्यदा' किसकी रचना है?

1- तिम्मना

2- श्रीकृष्ण देवराय

3- अल्लसानि पेद्दना

4- वेमना

5. 'मनुचरित्र' प्रबंध काव्य के कवि कौन है**?**

1- कंदुकूरि बीरेशलिंगम पंतुलु

2- काशी कृष्णाचार्य

3- अल्लसानि पेद्दना

4- श्रीनिवासाचार्य

6. तेलुगु की प्रसिद्ध साहित्यिक-साहित्येŸार विधा कौन सी है**?**

1- दंडक रचनायें

2- अवधान

3- शतक काव्य

4- यक्षगान

7. 'प्रबंध परमेश्वर' की उपाधि किसे प्राप्त है**?**

1- तिक्कना

2- एर्रना

3- तिक्कना

4- नन्नयभट्ट

6.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप –

- ❖ तेलुगु साहित्य के क्रमबद्ध विकास का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे
- ❖ तेलुगु साहित्येतिहास के विभिन्न कालों का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- ❖ तेलुगु काव्य-साहित्य के क्रमवार विकास को समझ चुके होंगे
- ❖ तेलुगु साहित्य के विविध काव्य-रूपों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे

6.5 शब्दावली

- ❖ तंद्रा - आलस्य, नींद
- ❖ अवसान - अंत होना, खत्म होना
- ❖ अनुसरण - पीछे-पीछे चलना
- ❖ संवर्धन - विकास, उन्नति
- ❖ अवलोकन - देखना

- ❖ अग्रगण्य - आगे रहने वाला , श्रेष्ठ
- ❖ संस्थापक - स्थापना करने वाला, बनानेवाला

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) 'हाँ' या 'नहीं' पर यह निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

1. हाँ
2. नहीं
3. हाँ
4. नहीं
5. नहीं
6. नहीं
7. हाँ
8. हाँ

2 - निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उसीक संख्या कोष्ठक में लिखिए।

2- नन्नय भट्ट

2. नन्नय-तिक्कना-एईन्ना ने किस ग्रन्थ की रचना की**?**

2- महाभारत

3. तेलुगु नाटक के शेक्सपियर कौन है**?**

2- पनुगंटि लक्ष्मीनरसिंहम

4. आमुक्त माल्यदा' किसकी रचना है**?**

2- श्रीकृष्ण देवराय

5. 'मनुचरित्र' प्रबंध काव्य के कवि कौन है**?**

3- अल्लसानि पेद्दना

6. तेलुगु की प्रसिद्ध साहित्यिक-साहित्येतर विधा कौन सी है**?**

2- अवधान

7. 'प्रबंध परमेश्वर' की उपाधि किसे प्राप्त है**?**

2- एर्रना

6.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तेलुगु साहित्य का इतिहास - प्रो**0** के लक्ष्मी रंजनम् (सं)
2. सहस्त्र वर्षो का तेलुगु साहित्य - आचार्य यार्लगड्डालक्ष्मीप्रसाद (संपादक)
3. आन्ध्र कवित्य चरित्र - बसवरातु अप्पाराव
4. नत्यान्ध्र साहित्य वीथुलु- कुरूगंटि सीतारमय्या

5. आन्ध्र कबुल चरित्रमु (दो भाग)- निडदबोलु वेंकटराव
6. विजय नगर साम्राज्यान्ध चरित्रतु - ठेकुलमल्ल अच्युतराव

6.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. नन्नय भट्ट के साहित्यिक अवदान को स्पष्ट कीजिए।
2. तेलुगु साहित्य के अष्टदिग्गजों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. शतक साहित्य परंपरा पर प्रकाश डालिए तथा साथ ही तेलुगु के आधुनिक गद्य विधाओं की विवेचना कीजिए।

इकाई 7 तेलुगु साहित्य का आधुनिक काल (गद्य साहित्य) (सन् 1850 से अब तक) - 2

इकाई की रूप रेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 तेलुगु कहानी का विकास
7.4 तेलुगु उपन्यास का विकास
7.5 तेलुगु नाटक, एकांकी का विकास
7.6 तेलुगु की पत्रिकाएँ एवं समीक्षा
7.7 तेलुगु निबंध का विकास
7.8 तेलुगु साहित्य में चलचित्र गीत लेखन
7.9 तेलुगु का अवधान साहित्य
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

एम0ए0एच0एल – 204 की यह सातवीं इकाई है । पिछली इकाई में आपनें तेलुगु साहित्य के पद्य का अध्ययन किया है । इस इकाई में हम तेलुगु साहित्य के गद्य साहित्य का अध्ययन करेंगें । तेलुगु का साहित्य का आधुनिक काल- गद्य साहित्य (1850 ई. से अब तक) तेलुगु में आदिकाल से आधुनिक काल तक प्रचुर गद्य लिखे गये किन्तु आधुनिक युग में अन्य भारतीय भाषाओं की तरह तेलुगु गद्य विधाओं की इन्द्रधनुषी छटा साहित्य को मानो पर ही लगा देती है। गद्य विधा के विकास में विदेशी संपर्क एवं छापेखाने, प्रेस के अविष्कार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नवीन ज्ञान-विज्ञान को पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक सुगमता से व्यक्त किया

जा सकता है। तेलुगु साहित्य-'निर्माण में साहित्यिक भाषा और बोलचाल की भाषा का साहित्यिक रूप बहुत महत्वपूर्ण है।

7.2 उद्देश्य

एम0 ए0 एच0 एल – 204 की यह सातवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- तेलुगु उपन्यास साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- तेलुगु कहानी साहित्य के इतिहास का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- तेलुगु के नाटक एवं अन्य गद्य विधाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- तेलुगु साहित्य के प्रमुख पत्र – पत्रिकाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- तेलुगु गद्य की प्रमुख विशेष ताओं को समझ सकेंगे।

7.3 तेलुगु कहानी का विकास

आरंभिक गद्य उन्नायाकों में परवस्तु चिन्नयसूरि (1806-1862) कोक्कोंड वेंकट रत्नम् पंतुल, (1842-1915), और कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु (1858-1919) आदि त्रिमूर्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि तेलुगु साहित्य में आरंभ से ही गद्य विधा का (चंपू काव्य) का प्रयोग हुआ है। 19 वीं शती का उत्तरार्द्ध आंध्र साहित्य का गद्य युग कहा जाता है। तेलुगु गद्य साहित्य के विकास में सहायक कारकों का परिचय निम्नतः दृष्टांकित है-

चिन्नयसूरि - चिन्नयसूरि ने 'नीति-चंद्रिका' नामक अपनी कृति को फोर्ट सेंट जार्ज कालेज के सेंक्रेटरी ए0जे0 अवेथनार को समर्पित की पंचतंत्र पर आधारित यह ग्रन्थ अपूर्ण (मित्र-लाभ, मित्र भेद) रूप में ही विख्यात हो गया। चिन्नयसूरि के असमय देहांत तेलुगु साहित्य के लिए एक बडी़ क्षति सिद्ध हुई।

चार्ल्स फिलीपब्राउन- ब्राउन ने 1882 में ताताचार्य नामक व्यक्ति से कहानियाँ सुनी थी, जिसे उन्होंने अंग्रेजी में लिखा था। ब्राउन तेलुगु की दोनो भाषाओं का आदर करते थे। उनके द्वारा अंग्रेजी को तेलुगु सिखाने की प्रक्रिया छोटी-छोटी कहानियां के माध्यम से अपनायी गयी, जो प्रशंसनीय है। गिडुगु सममूर्ति पंतुलु का 'गद्य-चिन्तामणि (1899 ई. में प्रकाशित) के पृ0 92, 293,240,256 आदि पृष्ठों में तेलुगु भाषा को दुरूह बनाने की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। मध्यकाल में संस्कृत, प्राकृत से पद्य रूप में लिखी गयी रचनाओं को गद्य में अनूदित किया गया। हंसविंशती, शुक सप्तकी, ताताचार्य की कहानियाँ, 'परमानंदय्यागरि कथुलु' (1865 ई.) आदि की जरप्रियता स्वयंसिद्ध है। परवस्तु के रंगाचार्य की 1875 ई. पे 'परमानंदय्या शिष्युल कथा' जनभाषा में लिखी उत्कृष्ट कृति है।

ईसाई धर्म प्रचार - अंग्रेजों ने ईसाई धर्म के प्रचारार्थ 1880 ई. में 'ओल्ड टेस्टमेंट कथुलु' तेलुगु में सी0वी0इ9 सोसाइटी की ओर से छपवाया, किन्तु बाइबिल की तेलुगु आमजनता के लिए अपनी न वन सकी।

चार दरवेश - 1893 ई. में एन0ए0 मूर्ति ने 'अरेबियन नैट्स कथलु' अंग्रेजी से अनुवाद किया जो लोगों द्वारा खूब पसंद की गई। अमीर खुसरों की 'चार दरवेश' नामक कहानी मीर उम्मन द्वारा 1801 ई. में फारसी में लिखा गया। 1811 ई. में स्मित-नामकक अंग्रेज ने इसे अंग्रेजों में अनूदित किया। इसके बाद 1856 में एर्रिमिल्लि मल्लिकार्जुन ने 'चार दरवेश ' नाम से इसे अनूदित किया।

तड़कमल्ल वेंकट कृष्णाराव (1825-1890) की कई कृतियाँ है। जिनमें 1879 ई. में 'श्रीमदान्ध्र कविता वर्धिनी विलासमु' कल्पित कहानी खूब प्रसिद्ध हुई। 19 वी शती के उत्तरार्द्ध में चंदलवाड़ सीताराम शास्त्री ने 'दक्कन पूर्व कथलु', 'दशकुमार चरित्र', 'संस्कृत नाटक कथलु' में सहज शैली अपनाते हुए 'जनविनोदिनी' पत्रिका का संपादन भी किया। श्री एनमचिंतल संजीवराय शास्त्री का 'दशकुमार चरित्र' (1886 ई.) तथा श्री वेदम वेंकटराय शास्त्री का प्रतापरूद्रीय नाटक कथलु (1888 ई.) सरस शैली की कृतियों का उत्तम उदाहरण है।

19 वीं शती के उत्तरार्द्ध के कुछ प्रमुख लेखक हैं, जिन्होंने ने तेलुगु गद्य साहित्य के विकास में महत्पूर्ण योगदान दिया। श्री दासु श्री रामुलु का 'अभिनवप गद्य प्रबंध' (1892 ई.), वेदम वेंकटशास्त्री का 'कथा सरित्सागर' (1881ई.), चिलकपाटि वेंकटरामनुज शर्मा का 'भोंज कालिदास कथुनु', 'चमत्कार कथा कल्लोलिनी' आदि उल्लेख कृतियां हैं। श्री मधिर सुब्बत्र दीक्षतुलु का 'काशीमजिली कथुलु (1895) भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

गुरूजाड़ श्रीराम मूर्ति - इन्होंने तेलुगु प्रबंध काव्य 'कला पूर्णादयमु' को 'कला पूर्णोदय कथा संग्रह' के रूप में तथा अरेबियन नाइट्स को 'चित्र रत्नाकरमु' के रूप में गद्यानुवाद प्रस्तुत किया। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में काल्पनिक किंतु मौलिक कथाओं का प्रणयन तेलुगु साहित्य को खूब होने लगा। पनप्पपकम अनन्नचार्य का 'मजुवाणी विजयमु' (सन् 1892 ई.), कोमड्डूरि अनन्ताचार्य का 'पलूकनि पद्यावती कथा' (मूक पद्यावती को दो भागों में कहानी) 1899 ई. में प्रकाशित हुई। पी. श्रीनिवासाचार्य का 'सोमशर्माम्युदयमु' (1894 ई.) इमाम साहब तथा कस्तुरि रंगय्या ने 'गुल-बकावली' (दो भाग, 1895 ई.) आदि के द्वारा कथा साहित्य की वृद्धि की।

वीरेशलिंगम पंतुलु - वीरेशलिंगम पंतुलु आधुनिक युग के साहित्यिक और सामाजिक निर्माताओं में अग्रणी माने जाते हैं। उन्होंने गद्य के अन्य अंगों की तरह कथा साहित्य के विकास में योगदान दिया। वीरेशलिंगम ने 'विक्रमार्कुनि कथुल', 'पंचतन्त्र, 'काशी मजिली', आदि को साहित्यिक नहीं माना है। यद्यपि अपना साहित्यिक जीवन कविता से शुरू करने के पश्चात् भी उन्होंने गद्य विधा की श्रीवृद्धि की। चिन्नयसूरि की 'नीति चन्द्रिका' के तीसरे अध्याय 'विग्रह' (1874 ई.) को वीरेशलिंगम पंतुलु ने ग्रांथिक भाषा में पूरा किया। 1872 में ही प्रकाशित कर लिया था। कोक्कोड़ वेंकटरत्नम् और वीरेशलिंगम प्रारम्भ में अभिन्न थे, किंतु बाद में दोनों विरोधी बन गये । कारण यह राह कि वीरेशलिंगम समाज सुधारक विधवा विवाह के पक्षधर, एकेश्वरवादी थे जबकि वेंकटरत्नम रूढ़िवादी थे। भाषा-विषयक दृष्टिकोण भी दोनों के विपरीत थे। वीरेशलिंगम का भाषा विषयक दृष्टिकोण उनकी आत्मकथा में अभिव्यक्त हुआ है। वे भाषा की सरल, सहज शैली में प्रस्तुत करने के पक्षधर थे। शेक्सपियर ने नाटकों के अनुवाद में पात्रों के

नामों का भारतीय करण कर दिया। उन्होंने स्त्रियों में उच्चादर्श के स्थापनार्थ 'सत्यवती चरित्र' (1882 ई.), हरिशचन्द्र की पत्नी चन्द्रमती पर चन्द्रमीत कथा (1884 ई.), 'सत्यसंजीवनी' (1887 ई.) जैसी कहानियां लिखी।

बल्लंपाटि वेंकट सुब्बया कहते हैं, ''औद्योगिक सभ्यता द्वारा आधुनिक संसार को दी गई महत्वपूर्ण देन है'- कहानी।'' आधुनिक तेलुगु कहानी का जन्म् दीर्घ विराम के बाद हुआ। सन् 1819 में राविपाटि गुरूमूर्ति शास्त्री के 'विक्रमार्क कहानियों से सन 1990 के पनप्पाकम श्रीनिवासचार्युत्वु के 'भोजसुता परिणयम् तक तेलुगु कहानी अनुवाद, अनुकरण के रूप में ही विकसित होती रही। 20 शती में सन 1921 में पानुगंटि का 'कानुगचेट्टु', और गुरजाड़ा आप्पाराव के 'विद्दवाटु' (1910 ई.) से आधुनिक कहानी का श्रीगणेश होता है। सन् 1921 में चिंता दीक्षिततुलु का सुगाली कुटुंबमु', जी. रामकृष्ण का 'चिरंजीवी' (1947 ई.) आदि उल्लेखनीय प्रारंम्भिक कहानियां हैं।

सुधार युग - समाज सुधार आंदोलन के बयार को कहानीकारों ने बखूबी बपनी कहानियों में समेटा है। लंडारू अच्चामांबा की 'स्त्री-विद्या', 'धनत्रयोदशि', गुरूजाडा अप्पाराव का 'मी पेरेमिटि', 'पेद्दमसीदु' आदि समाज-सुधार से जुड़ी कहानियां हैं। अन्या प्रमुख कहानियां हैं; 'अरिकाल्ल किन्द मंटलु, 'इल्लु बट्टिन वेधवाडपडुचु', तल्लिप्राणमा', (श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री), 'शेश म्मा', वितंतुवु' (चलम), 'तेलिवि' कालम कल्पिन्येमार्पु', (मुद्दुकृष्णा), पश्चात्त यपमु', (शिवरामय्या), 'द्वितीयम (कोडवटिगंटि कुटुंबराव), 'पडुचु पेल्लाम' (राघराव), 'ग्रहचारम' (यनमंड्र सांबशिवराव), 'राजय्या सोमयाजुलु' (बी श्रीनिवास शर्मा,) 'बालिका विलापमु', (नरसिंहाराव),' कलुपु मोक्कलु' (श्रीपाद), 'इलांटि तव्वाई वस्ते' (श्रीपाद), 'अय्योपापम,' (गोटटु मुक्कल मंगायम्मा) 'ईरय्या' (अश्व वेंकटस्वामी)', मादिगवाडु' (लीला सरोजिनी), 'ग्रुक्केडु नील्लु' (बंदा कनकलिंगेश्वर राव) 'धर्मतल्लि (चंुडूरू रमादेवी) आदि प्रमुख समाज-सुधार विषयक कहानियां है।

देशभक्ति और तेलुगु कहानी - तेलुगु कहानियों में प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व स्तर पर व्याप्त मुद्रास्फीति को तेलुगु कहानियों में सजीवता के साथ बताया गया है। एसे कहानीकारों 'में' डिप्रेशन चेम्बकु' के लेखक वेलूरि शिवरामशास्त्री प्रमुख है। अन्य कहानीकार हैं- पेम्मराजु राजगोपाल (अक्रमविभागम) चितलपाटि श्रीरामुलु (अवि युद्धपु रोजुलु), क्रोब्बिडि लक्ष्मम्मा (विजयोत्सवमु,), त्रिपुरनेनि गोपीचंद (पिरिकिवाडु), चागंटि सोमयाजुलु (भल्लूक स्वप्नमु) आदि।

20वी शती के प्रारम्भ में देशभक्तिपूर्ण भावनाओं से युक्त रचनायें प्रचुर मात्रा में रची गयी। व्यक्तिगत हित की जगह देशहित की बात कहानियां में 'स्पष्टत' देखी जा सकती है। प्रमुख कहानी कार है।- मैदवालु पद्मावती (त्यागिनी), गुडिपाटि वेंकटाचलम (सुशीला), वेंकट राज्यलक्ष्मी (एवरिदद्रुष्टम) गुम्मदिदला दुर्गावाई (ने धन्यनैतिनि), ताडिनागम्म (कथकादु), करूण कुमार (सेवा धर्मम, आकलि मण्टलु, कोन्त चेप्पुलु, वेंकन्ना), चिंता दीक्षितलु (सुरासीती बें ीक जैलु प्रेवशमु, 'एकादशी', सूरि, सीति वंकि, दशमी (1940), बटीरावु कथलु आदि।

इस काल की अन्य महत्त्वपूर्ण कहानियां हैं-

'कुटीर लक्ष्मी' (कनपर्ति वरलक्ष्मम्मा), 'अनिर्वचनीय ख्याति' (जी0वी0 कृष्णा राव), 'नारी हृदयमु' (पेम्मराजु राजगोपालम)'प्रेवेदिकमीदा (चंद्रकला) 'नीवेणी' (रायसम वेंकटशिवुडु) 'मोदहि दाडि' (श्रीपाद) आदि।

तेलुगु कहानी और अभ्युदय (प्रगतिशील) आंदोलन-

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भारतीय ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की दिशा परिवर्तित होने लगी थीं। ऐसे में तेलुगु साहित्य का यह परिवर्तन अभ्युदय युग के नाम से जाना जाता है। आर्थिक समानता, शोषण और जातिगत भेद भाव का खण्डन, युद्ध संस्कृति का विरोध, मजदूरों का हित, शांति की अभिलाषा और विश्व दृष्टि आदि अभ्युदय युग की रचनाओं की विशेषता है। वर्गीय मानसिकता और मानव-संबंधों पर अर्थ संस्कृति के प्रभाव कहानी विधा अछूती न रह सकी। प्रमुख कहानियाँ हैं- 'दासरि पाटा', 'सुगाली कुटुंबमु' (चिंता दीक्षितुलु) 'आमें त्यागम', ओ पुव्वु पूसिंदि', 'आरात्रि', 'जलसी' (चलम), 'कय्या कालुब', 'पशुबुल कोट्टम', 'पिल्लल मोलताडु', 'कोन्त चेप्पुलु' (करूण कुमार) 'नुव्वुलु तेलगपिंडि', 'इंतलो उन्दि', 'कुलद्वेश मु', कोन्त-जीवितमु', 'ट्यूटर' (कोडवटिगंटि कुटुंबराव) आदि। इन कहानियों के माध्यम से लेखकों ने यथार्थ सामाजिक परिवेश को चित्रित किया है। दलितों, कृश कों का शोश ण, व्यस्था के विरूद्ध विद्रोह को पात्रा नुकूल भाषा में कहानीकारों ने प्रस्तुत किया है। प्रमुख कहानीकार हैं- रावि शास्त्री (पिपीलिकम), राविशास्त्री (आरू सारा कथलु', बुक्कुलु') कोलकलूरि इनाक (ऊरूबावि, तल्लेनोडु, पिण्डीकृतशटि, आकलि) पेद्दिभोट्ला, सी.एस.राव (मुसलम्मा मरणम कल्लजोडु') तिलक (आशा किरणम), गोखले (बल्लकटु पापय्या) आदि । इन कहानीकारों ने कलम के माधम से समाज को प्रगतिगामी बनाया।

तेलुगु कहानी और तेलंगाना मुक्ति- आंदोलन- 4 जुलाई सन् 1946 को कडिवेंडि ग्राम में जमींदारों की सेना द्वारा आम लोगों पर गोली चलवाया गया। जिसमें बंधुवा मज़दूरी का विरोध करने वाले दोड्डि कोमरय्या की मृत्यु हो गयी। जिससे यह विद्रोह ज्वालामुखी बन गया। विद्रोह की आग को शब्दों का रूप देकर लेखकों ने उत्तम कहानी सर्जना की। प्रमुख कहानियां है- 'रहीम भाई' (पी.वेंकटेश्वरराव), नवजागृति (प्रयाग), अमर वीरूलु (के0 एल नरसिंह राव), मीरे गेलुस्ताक (तुम्मल वेंकट रामय्या) महाशक्ति (तेन्नेटि सूरि) मनमे नयम (कालोजी नारायण राव) आदि। इन कहानियों में तेलंगाना प्रांत के लोगों की जीवन- स्थितियों का चित्रण है।

तेलुगु कहानी एवं क्रांतिकारी आंदोलन-

तेलंगाना मुक्ति आन्दोलन को सन् 1951 में विराम मिला। उसके पश्चात् 1969 ई. में तेलंगाना आंदोलन नक्सल आंदोलन से जुड़कर अपने उग्रतम रूप में प्रकट हुआ। तेलंगाना मुक्ति चेतना को जागरूक करने वाली कई कहानियाँ लिखी गयी, जिनमें प्रमुख हैं- 1964 में कालीपट्णम रामाराव की कहानी 'यज्ञम', रावी शास्त्री की 'पिपीलिकम', कोलकलूरि का 'ऊरूबावी', आदि। सन् 1968 में जमींदारों के विरूद्ध सशस्त्र आंदोलन वेंकटापुसत्यम और आदि भट्ल कैलाशम के नेतृत्व में शुरू हुआ। जिसे कहानीकारों की लेखनी का पूर्ण समर्थन

प्राप्त हुआ। प्रमुख कहानियाँ हैं- 'मार्पु' (अल्लम राजय्या), 'मनुषुल बेटा' (किरण), 'पंचादि' (उप्पल नरसिंहा) 'भूमि' (उप्पल), पोक्किलि' (प्रकाश), राजु (अल्लम राजय्या), 'पिच्चोडु' (कार्मिका), 'बोग्गुपोरल्लो' (तुम्मेटि)' निवुरूगप्पिन निप्पु' (समुद्रुडु) आदि।

लेखकों ने क्रांतिकारी चेतना के साथ जन-जाति के लोगों पर कई कहानियाँ लिखीं। वी0एस0 रामुलु की अंडविलो वेन्नेल', तोडसंजन्गु', राजय्या की 'मनिषिलोपलि विध्वंसम', गोपी भाग्लक्ष्मी की 'जंगुबाई', तुम्मेटि की 'जाडा', आदि में मद्यनिषेध, जनजाति के शोषण को मुख्य रूप से चित्रित किया गया है।

तेलुगु कहानी और दलित वाद- तेलुगु प्रांत दलितों पर उच्च वर्गीय लोगों द्वारा अत्याचार को एक आंदोलन के रूप में विरोध किया गया है। सन् 1925 में 'प्रबुध्दांध्र' पत्रिका में श्रीपादा की 'पुल्लुम राजु' कहानी को प्रथम दलित कहानी माना जाता है। इसके बाद एक लम्बी परंपरा दलित कहानियों की है जो अब तक चल रही है। प्रमुख दलित कहानियाँ है- गोद्दिमुक्कल-मंगायम्मा की 'अय्योपापम' (1935), एंड्लूरि सुधाकर की मल्लेमोग्गल गोडुगु', सुंदर राजु की 'मादिगोड्', 'माऊरि मैसम्मा', पी0 कनकय्या की 'रदुरूचुपु', 'मोमिट्लुंडम', जाजुल गौरी की 'मट्टिबुव्वा'' कोकलसूरि इनका की 'अस्पृश्य गंगा', शांतिनारायण की 'उक्कुपादम', नन्नपुरेड्डि वेंकट रामिरेड्डी की 'अंटु' पी कनकय्या की 'एदुरूचुपु', वी0आर0 रासानी की होमम्', स्वामी की 'प्रशांव' आदि के द्वारा दलित साहित्य को नलये आयाम प्राप्त हुए हैं।

तेलुगु कहानी और स्त्रीवाद - तेलुगु कहानी ने स्त्री को वस्तुवादी दृष्टिकोण से ही प्रस्तुत करना शुरू किया। पिछले तीन दशकों में लेखिकओं द्वारा स्त्री की समस्याओं को स्त्रीवादी दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा। वोल्गा की 'प्रयोग' कोण्डेयूड़ि निर्मला की 'शत्रुस्पर्श' सी सुजात की 'थ्री इन वन', पी0 सत्यवती की 'इल्ललकगाने', अब्बूरि छत्रयोदेवी की 'तनमार्गम' मुदिगंटि सुजाता रेड्डी की 'विसुर्राई', फुप्पिलि पद्या की 'मसिगुडडा', वी0 प्रतिमा की 'जातरा', डॉ. भार्गवी राव का 'नूरेल्ल पंटा', आदि में नारी व्यक्तित्व को पूर्ण अभिव्यक्ति की गयी है।

तेलुगु कहानी और मुस्लिम वाद -

तेलुगु में मुस्लिमवादी कहानियाँ की सर्जना 6 दिसंबर, सन् 1992 के बाबरी मस्जिद की घटना के बाद से अधिक होने लगी। इससे पूर्व 1982 ई. में सत्यं का 'पाचिकलु' (संग्रह) लिखा जा चुका था। मुस्लिमों के मन से असुरक्षा के भाव को निकालने के लिए कई कहानियाँ लिखी गयी, जिनमें महत्वपूर्ण कहानियाँ है- नेल्लूरू काशवस्वामी का 'चारमीनार', गीतांजी की 'बच्चेदानी', 'पहचान', अली की 'हर एक माल', रहमतुल्ला की 'बा', मोहम्मद खादिर बाबू की 'दर्गामिट्टा', पप्पुजान की 'बुरखा और हराम', 'सिलसिला', 'खिब्ला', मौल्वी साहैब' तथा 'जमीन', 'पत्थर' आदि में मुस्लिम परिवार की विविध पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक विकृतियों का उल्लेख किया गया है।

तेलुगु कहानियों में क्षेत्रियतावाद- तेलुगु कहानियों ने सामाजिक संघर्षों को वाणी देने मे सहृदयता, ओजस्विता का पर्याप्त परिचय दिया। क्षेत्रीय विषयों को लेकर चंद्रलता के द्वारा 'रेगब्क्लु उपन्यास को 'ताना' से पुरस्कृत किया गया । क्षेत्रीयता से जुड़ी कुछ महत्वपूर्ण

कहानियां हैं- बी0 एस0 रामुलु की 'दक्षयज्ञमु', कालुव मल्लय्या की 'अव्वतोडुगिदि तेलंगाना' पुलुमुश्रीनिवास की 'संकर विन्तुलु', कासुल प्रतपा रेड्डी की 'मण्टलु', जूकंटि जगन्नाथ की 'वलसा', पुलिकंटि कृष्ण रेड्डी की 'बंगारू संकेत्लु', बी0वी0एस0 स्वामी की 'कंठनम', सभा की 'पाताल गंगा', सिंगमनेनि नारायण की 'अडुसु', शांति नारायण की 'दलारी', स्वामी की 'नील्लु', श्रीनिवास मूर्ति की 'मेडमीद वेलाडे कान्ति' आदि कहानियाँ आंध्र के विविध स्थानों के लोगों की जीवन शैली को उद्घाटित करते हैं।

अपनी ही जमीन पर परायेपन का अहसास क्षेत्रीयता को उग्र रूप प्रदान करती है। चिलुकूरि देवपुत्रा की 'समिधलु', 'आयुधवा'', दलितों की व्यथा कहती है तो 'वंशधारा कथलु', 'नागवल्ली कथलु', जझावती कथलु', आदि क्षेत्रीयतावाद को उजागर करती है। गंटेडा गेरूनायुडु की 'ओक रात्रि रेडुं स्वप्नालु', अट्टाड अप्पलनायुडु की 'प्रत्याम्नायम' में अपनी ही जमीन के मालिक से मजदूर बनते तेलांगाना जनता की व्यथा-कथा है।

1.8.2 जीवन चरित्र-

जीवन चरित्र पाठकों पर विशेष प्रभव डालते हैं। कवियों के जीवन-चरित्र लेखकों में वीरेशलिंगम पंतुलु, गुरूजाड़ श्रीराममूर्ति का नाम उल्लेखनीय है। वीरेशलिंगम पंतुल का 'कबुल चरित्र' (3 भाग 1887 ई.) उनके अध्यवसाय का प्रतिफल है। उन्होंने देश-विदेश के महापुरूषों की भी जीवनियां लिखी। 1913 में ईसामसीह का जीवन चरित्र लिखा। उत्तम चरित्र के विकास हेतु स्त्रियों के लिए 'उत्तम चरित्र के विकास हेतु स्त्रियों के लिए 'उत्तम स्त्री चरित्र' लिखा, जिसमें ' ग्रेसडर्लिंग गर्ल,' जोन आफ आर्क,' 'मेरी कार्पेटर', 'एलिजाबेथ लेडीजान' आदि का उल्लेख है। राजाराम मोहनराय पर आधारित जीवनी भी उल्लेखनीय है।

गुरूजाड़ श्रीराममूर्ति- इन्होंने 'कवि जीवितमुलु' 'वेंडपूडि अन्नय मंत्रि चरित्र (सन् 1896 में), 'तिम्मरूसु चरित्र' (सन् 18898 में), 'रायन भास्कर मंत्रि चरित्र' (सन् 1899 में) 'वैयाकरण अप्पय दीक्षित की जीवनी' सन् 1897 में आदि कवियों, मंत्रियों के जीवन पर आधारित है। आंध्र के कुछ राज्यों के इतिहास भी इन्होंने अपनी जीवनी कृति में दिया है। इनके अतिरिक्त के रामनुजाचार्य और वीर रंगय्या ने 1885 में 'चाणक्य चरित्र', वेंकट रंगय्या' ने कबुल चरित्र में प्राचीन कवियों की जीवनी लिखा।

तेलुगु कहानी और वैश्वीकरण- वैश्वीकरण की उड़ान में मुँह के बल गिरे विश्व अर्थव्यस्था ने स्थानीय समस्याओं की सदैव उपेक्षा की । ऐसे में बेरोजगारी, कारीगर, किसानों की आत्म हत्याएँ, शिक्षण संस्थानों का कुकुरमुत्ते की तरह फैलना, शिक्षा का स्तर गिरना आदि समस्याओं को लेकर कहानी -सर्जना की। प्रमुख कहानियाँ हैं- कुप्पिलि पद्या की 'इन्स्टेंट लैफ', मोहम्मद खदीर बाबू की 'खदर लेडु', 'न्यू बाम्बे टैलर्स', 'वेंडेम् शोड़ा शॉप', पेद्दिटि अशोक कुमार की 'कीलबोम्मलु', बोल्गा की' कोकाकोला', वी.चंद्रशेखर राव की 'गीताजंलि', विजन 2020', 'आत्महत्यल ऋतुवु', विश्वनाथ रेड्डी की 'विरूपम', पंजाल जगन्नाथम की 'व्यापार मृगम', स्वामी की 'तेल्ल देय्यम' आदि। इन कहानियों में वैश्वीकरण के दुष्परिणामों को मानव जीवन के

विविध कोणों से विश्लेषित किया गया है। एन0आर0आई. शादियों का दोश आरि सीतारमय्या के 'गट्टु तेगिना चेरूवु' में दृष्टव्य है। जी0 विजय-लक्ष्मी का 'स्वर्णान्ध्र', नग्न मुनि की 'विलोम कथुल' बी0आर0इन्द्रा की 'रावण ज्योस्यमु'आदि में नये प्रयोग हुए हैं।

इस प्रकार तेलुगु कहानी, उपन्यास विधा की तरह आशातीत वृद्धि विकास करती रही। सन् 1952 में 'गलिवाना' कहानी को अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिलने के बाद ऐसी सैकडो़ कहानियाँ लिखी गयी जो तेलुगु कहानी की उत्तरोत्तर प्रगति की घोतक हैं।

'भद्राचल रामदासु चरित्र' (1878 ई.) पी0 दक्षिणामूर्ति का 'पिंगलि सूरना चरित्र' (1893 ई.) राजा मृत्युंजय निःशंक बहादुर का 'कोंड जाति चरित्र' (1971 ई.) तथा भल्लनारायण चरित्र' (1897 ई.) महत्वपूर्ण जीवनियाँ है। श्री वेंकट शिवराव पंतुलु का 'काग्रेस संस्थ लघु चरित्र' (1897 ई.), पनप्पाकम श्री निवा साचार्युलु का 'महामना मदन मोहन मालवीय का जीवन चरित्र' (1894 ई.), भक्त वत्सल नायडू का 'काटम राजु का जीवन चरित्र' (1889) आदि प्रमुख जीवनी कृतियाँ है। वीरेशलिंगम के साहित्यिक सामाजिक औछात्य रूप को तोलेटि वेंकट सुब्बाराव ने 'वीरेशलिंगम कवि चरित्र' में दिखाया है। एन0 बेंकटराव कृत 'वेंकट महीपती गंगाधर राज चरित्र' (1871 ई.) मृत्युंजय राव का 'चैतन्य महाप्रभु की जीवनी (1893 ई.), श्री वेंकटरमणय्या' का 'शिवाजी चरित्र (1899) आदि तेलुगु साहित्य की जीवनी विधा के प्रौढ़तम उदाहरण हैं।

इस प्रकार जीवन-चरित्र के तीनों रूप तेलुगु साहित्य में विकसित हुए हैं। पहला-स्वीय चरित्र जो स्वयं की आत्मकथा होती है। दूसरा महापुरूषों, साहित्यिकों, सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के जीवन वृत्त तथा तीसर- महापुरूषों की दैनंदिनी। वीरेशलिंगम के 'स्वीय चरित्र' को उत्तम आत्मकथा का स्थान प्राप्त हैं। टंगुटूरि प्रकाशम का 'ना जीवित यात्रा' उनकी निष्पक्ष राजनीतिक जीवन को रूपायित करती है। श्री केसरी का 'ना चिन्ननाटि मुच्चट्लु, वेटूरि प्रभाकर शास्त्री का 'प्रज्ञा प्रभाकरमु' बंडारू अच्चमांबा का 'अबला सच्चारित्र रत्नमाला' (1902 ई.) पालेपु सुब्बाराव का 'आन्ध्र पुरूषुल जीवितमुल' (1913ई.), वाविल्ल वेंकटेश्वर शास्त्री का 'अनिविसेंटु जीवन चरित्र', मल्लंपल्लिसोमशेबर शर्मा का 'देशोद्धारकुलु', चिलकमूर्ति लक्ष्मी नरसिंहमु का 'महापुरूषुल जीवितमलु' (1909ई.) आदि तेलुगु गद्य साहित्य की जीवन चरित्र विधा को सम्बर्धित करने वाली कृतियाँ है।

7.4 तेलुगु उपन्यास का विकास

तेलुगु उपन्यास साहित्य ने 1872 से 2013 तक के 141 वर्षों का दीर्घतम मार्ग तय करते हुए विकास के नये-नये आयाम को गढा़ है। तेलुगु उपन्यास साहित्य के विकास -क्रम को विभिन्न युगों में अवलोकित किया जा सकता है।

आरंभयुग (1872-1905) नरहरि गोपालकृष्णम शेट्टी का 'श्री रंगराज चरित्रमु' को तेलुगु का पहला उपन्यास माना जाता है, जो 'किववेकवर्धिनी', पत्रिका में धरावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। इसे 'सोनाबाई परिणयम' तथा 'विवेक चंद्रिका' भी कहते हैं। कुंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु

के 'राजरोयर' उपन्यास में अंधविश्वासी ब्राह्मण राजशेखर के द्वारा सामाजिक रूढि की बखिया उधेडी़ गई है। वीरेशलिंगम का 'सत्य राजा पूर्वदेशी यात्रालु' तथा 'आडुमलयालम' भी उल्लेखनीय उपन्यास है। 1891 में न्यापति सुब्बाराव के साथ मिलकर वीरेशलिंगम पंतुलु ने 'चिंतामणि' पत्रिका के माध्यम से कई उपन्यास लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया। इनमें खण्डवल्लि रामचन्द्रुडु का 'धर्मवती विलासम', तल्लाप्रगड़ा सूर्यनारायण का 'संजीवराय चरित्रमु', चिलकमूर्ति का 'रामचन्रद विजयमु', गोटेटि कनकरातु का 'विवेक विजयमु', पी0 श्रीनिवास चार्युलु का 'सोमेश्वराभ्युदयमु', नंबूरू तिरूनाराधस्वामी का 'प्रणय महिमुमु' टेकुमल्ल राजगोपाल राव का 'त्रिविक्रम विलासमु', खण्डवल्लि रामचंद्रुडु का 'मालतीराघवमु', चिलकमूर्ति का 'हैमलता', खण्डवल्लि रामचंद्रुडु का 'लक्ष्मी सुंदर विजयमु आदि को 1892 से 96 के बीच प्रथम और द्वितीय पुरस्कार दिये गये। इन उपन्यासों समर्थन, मूल्य स्थापना के साथ ही अंधविश्वासोंका खंडन मुख्य विषय था।

अनुवाद युग- (1900-1920) उपन्यास के लिए यह समय कुछ विद्वानों केमत में ऐतिहासिक' तो कुछ की दृष्टि में 'अनुवाद युग' है। बंगाली, अंग्रेजी आदि के तेलुगु रूपांतरित उपन्यासों की दीर्घ परंपरा रही। बंकिम की 'कपाल कुण्डला ' को दोरस्पामय्या ने 1899 में तेलुगु अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त 'आनंद मठ' (1907), 'कमला कोमल' (1908) का भी इन्होंने अनुवाद किया। कनरूवल्ली भास्कररराव का 'प्रफुल्ल मुखी' (1909), चिल्लरिग श्रीनिवास राव का 'कृष्णकातुनि मरणशासनम' (1910), तल्लाप्रगड़ा सूर्यनारायण का 'शैवालिनी चंद्रशेखरमु (1910), चागंटि शेषय्या का 'राधाराणी' (1910), 'दुर्गशनंदिनी' (1911), नवाबुनंदिनी (1915), वेंकट पार्वतीश्वर कविद्वय का 'जयसिंह' (1915) 'मुगांगुलीयकमु' आदि बंगला के उत्तम अनुदित तेलुगु उपन्यास है।

अनुदित के साथ ऐतिहासिक मौलिक उपन्यास भी लिखे गये। धरणप्रगड़ वेंकट शिवराज जी द्वारा शिवाजी पर 'कांचन माला', भोगराजु नारायण मूर्ति द्वारा चंद्रगुप्त मौर्य पर 'विमला देवी', वेंकट पार्वतीश्वर कविद्वय का 'वसुमति वसंतम', रत्नाकरम वेंकटप्पा और तुम्मगोण्डी केशवराव का 'सत्यबाई', वेंकट पार्पतीश्वर का 'प्रमदावनम', श्रीपादजी का 'आंग्लराज्य स्थापनलु', ताल्लाप्रगड़ा सूर्यनारायण का 'हैलावली' (1913), वेंकट पार्वतीश्वर कविद्वय का 'मात् मंदिरमु' (1918) आदि में सामाजिक अत्यवस्था और वर्ण-व्यवथा के विरूद्ध आवाज उठाई गयी है।

केतवरपु का 'रायचुरू' युद्धम' (1913), भोगराजु का 'आन्ध्र राज्पमु', दुग्गिराला राघवचंद्र चौधरी का 'विजयनगर साम्राज्यमु', चिलुकूरि वीरभद्रराव का 'कर्ण साम्राज्यमु' आदि इस युग की उल्लेखनीय उपन्यास कृतियाँ हैं।

विकास युग: (1920-1992)- इस युग राजनीतिक सामाजिक परिवर्तन उपन्यासों में स्पष्टः सलकता है। तेलुगु प्रदेश को इतिहास को लेकर तथा परिवार, सामज में होने वाल परिवर्तनों को उपन्यास का विषय बनाया गया हैं। इस युग के प्रमुख उपन्या एवं उनकी कृतियाँ निम्नतः दृष्टव्य हैं-

चिलकमूर्ति का 'कृष्णवेणी' और 'सुवर्ण गुम्मडु', उन्नव लक्ष्मीनारायण का 'मालपल्ली', 'संघ विजयमु', विश्वनाथ सत्यनारायण का 'अंतरात्मा' (1918), 'एकवीरा' (1925), 'वोमिपडगलु, माबाबु, चेलियलिकट्टा,' बद्द्र सेनानी', 'धर्मचक्र आदि विविधमुखी उपन्यास है।

चलम की 'शशिरेखा;' (1918), देवमिच्चिन भार्या,' मैदानम', 'हंपीकन्यलु', 'जीवतादर्शम', ब्राह्मणीकम' आदि आधुनिक विचारों से युक्त उपन्यास है। बापिराजु का, 'हिमबिंदु', मोना गन्नारेड्डी', नारायणराव', कोनंगी', 'तूफान', रागमिल्का', 'जालिमल्लि' और 'सूरीड' आदि प्रमुख ऐतिहासिक सामाजिक उपन्यास है। विश्वनाथ सत्यनारायण, मोक्पाटि नपरसिंह शास्त्री, श्रीपाद सुब्रह्मण, मुनिमाणिक्यम नरसिंह राव आदि प्रसिद्ध उपन्यासकार है। मोक्कपाटि को 'बारिस्टर पार्वतीशम' (1925), एकोदरूलु' (1931) मुनिमाणिक्यम का 'कांतम कथलु', 'दीक्षितुलु', रूक्तल्लि, तिरूमालिग आद हास्य-व्यंग्य, करूण आदि विषयों पर आदि विषयों पर आधारित है।

मनौवैज्ञानिक युग (1941-1960)-फ्रायड के अनुसार तेलुगु कथा-वस्तु की संयोजना में कई परिवर्तन किए गये। बुच्चिबाबू , जी.वी0 कृष्णराव, गोपीचंद, राविशास्त्री आदि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अग्रणी है। बुच्चिबाबु का 'चिवरिकि मिगिलेदि' गोपीचंद का 'परिवर्तन', 'असमर्थुनि जीवन यात्रा', मेरूफुल मरकलु', 'पिल्लतिम्मेरा', पंडित परमेश्वरशास्त्री वीलुनामा', 'गडियपडनि तलुपुलु,' 'प्रेमोहपनुलु', शिथिलाल यम', धीकटि गदुलु', यमपाशम', जी0वी0 कृष्णराव का 'कीलुबोम्मलु', रावि शास्त्री का 'अल्पजीवी', बलिवाडा कांताराव का गोडमीद बोम्मा', 'बूचि' 'सुगुणा', भास्करभट्ला कृष्णाराव का 'युग संधि', 'विचित्र प्रणयम', आर0एस0 सुदर्शनम का 'मल्ली वसंलमु', नोरि नरसिंह शास्त्री का 'नारायण भट्टु,' 'रूद्रमा देवी', 'मल्ला रेड्डी' 'कवि सार्वभौमुडू', कविद्वयम', तेन्नेटि सूरि का 'चंगेजखाँ' आदि उक्त मनोवैज्ञानिक ऐतिहासिक उपन्यासों के बाद इस युग का सामाजिक उपन्यास भी महत्वपूर्ण है।

इस युग के प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में हैं- रावूरि सत्यनारायण राव का 'नेलवंका', बोल्लिमुंत शिवरामकृष्णा का 'मुत्युजयलु', 'बट्टिकोट अल्वारू स्वामी का प्रजल मनिषि', पोतकूचि सांबशिव राव का 'उदयकिरणालु', आदि। इस प्रकार इस युग में कालजयी मनौवैज्ञानिक, ऐतिहासिक सामाजिक उपन्यास लिखे गये।

समकालीन युग (1960 से अब तक)- सन् 1958 के लगभग 'आंध्र पत्रिका' ने उपन्यास लेखन की पुरानी प्रक्रिया शुरू करते हुए प्रतियोगिता आयोजित किया। समय-समय पर आयोजित इन प्रतियोगिताओं का सुफल इन उपन्योसं के रूप में तेलुगु साहित्य को मिला।

	उपन्यास	**उपन्यासकार**	**विषय**
1	कोंत अल्लुडु	श्री कोडवटिगंटि कुटुंगबराव	विविध
2	कोंत कोडलु	श्री कोडवटिगंटि कुटुंगबराव	विविध
3	'अनुभव'	श्री कोडवटिगंटि कुंटुबराव	विविध
4	तिमिंगलम वेटा	,,	,,

5	गोडमिदि बोम्मा	,,	,,
6	सुगुणा	,,	,,
7	दगापडिन तम्मुडु	,,	,,
8	सखिया सुन्दरी	,,	,,
9	चंदुनिको नलुथोगु	पुराण सुब्रह्मण्यम	,,
10	विशाल नेत्रालु	पिलका गणपति	,,
11	कत्तुल वंतेना	महीधर राममोहन राव	राजनीतिक
12	ओनमालु	,,	,,
13	कोल्लायि गट्टितेनेमि	,,	विविध
14	स्वयंवरम	,,	वैवाहिक समस्या
15	मंचि-चेडु	श्रीमती इल्लिंदल सरस्वती	नारी-जीवन
16	अप्पस्वरालु	,,	,,
17	पंकुटिल्लु	कोम्मूरि वेणुगोपाल राव	सामाजिक
18	हाउस सर्जन	,,	,,
19	जीवन गमा	पुराणम प्रकाश राव	,,
20	मानेमनुश तु	,,	,,
21	मनंमिगिलां	कंदुकूरि लिंगराजु	,,
22	आदर्शलु - आंतर्यालु	सिंगराजु लिंगमूर्ति	,,
23	जारूडु मेट्लु	मंजुश्री	,,
24	स्वर्गारोहुन	,,	,,
25	नूरू शरन्तुलु	,,	,,
26	चीकटिलो चीलिकलु	गोलपूडि मारूतिराव	,,
27	सगटु मनिषि	आदि विष्णु	,,
28	मिथ्या	,,	,,
29	तोलि मजली	शीला वीर्राजु	,,
30	इद्दरू ओक्कटे	,,	,,
31	आदि प्रश्न इदि जवाबु	अवसराल रामकृष्ण राव	
32	इद्दम्मायिलु मुगग्गुरब्वायिलु	मुल्लपूडि वेंकटरमणा	

समकालीन युग में आंचलिक उपन्यास की भी श्रीवृद्धि हुई। प्रमुख आंचलिक उपन्यास है- दाशरथी रंगाचार्युलु का 'चिल्लर देवुल्लु', पोरंकि 'दक्षिणामूर्ति का 'मुत्याल पंदिरि' (तेलंगाना की बोलियों पर), 'वेलुगु वेन्नेल', 'गोदावरी' (पूर्वी प्रांत की बोलियों का प्रयोग), पालगुम्मि पद्यरातु का 'बतिकिन काले', नल्लरेगडि', कोंडमूदि श्रीराम- मूर्ति का 'करूणा',

पोलाप्रगड का 'संघ चेसिन मनिषि', 'कौसल्या', ताल्लूरि नागेश्वर राव का 'कोत्तियिल्लु', 'एदिगी एदगति पुब्बु', 'जीवन ज्योति' आदि।

यह युग महिला-लेखना का स्वर्णिम युग है। श्रीदेवी, बीनादेवी, मालती चंदूर, लता (पदविहीन, मोहनवंशी, महानगरंलो स्त्री), कोडूरि कौसल्यादेवी (चक्रवाकम, चक्रनेमि) मुप्पाल रंगनायकम्मा (बलिपीठं, पेकमेडलु, स्वीट होम), द्विवेदुल विशालक्ष्मी (वैकुण्ठ पाली, ग्रहणम विडिचिंदि ,वारदिमारिन विलुवलु), यद्दनपूडि सूलोचना रानी (सेक्रटरी, विजेता), डॉ. सी0 आनंदरामं (संपंगि पोदलु, 'आत्मबलि, चिकटि कडुपुन कांति) उन्नव विजयलक्ष्मी, निर्मला प्रभावती, ए0 श्यामला देवी, कोलपाक राममणी, डी0 कामेश्वरी, पावनी, परिमला सोमेश्वर आदि।

दाशरथि ने गोदिगपुलु', 'जनपद' उपन्यास में तेलंगाना के लोगों की समस्याओं को उकेरा है। सीतादेवी वासिरेड्डी ने 'समता' में राजनीतिक भ्रष्टाचार की बखिया अधेडी है। साथ ही 'मट्टिमनिषि', 'मरीचिका' में नक्सलवाद के दुष्परिणाम को बताया है। बीनादेवी का 'हैंग भी क्विक', राविशास्त्री का 'रातु महिषि', 'गोवुलु वस्तुन्नायि', 'रन्तालु-रांबाबु', नवीन का 'मुल्लपोदलु', चीकटि रोगुलु', पसुपुलेटि मल्लिकार्जुन 'पक्षुल' आदि में विविध समस्याओं का जीवंत चित्रण हुआ है।

प्रयोगधर्मी तेलुगु उपन्यासों में नवीन का 'अंपशय्या', विनुकोंण्डा का 'ऊबिलो दुन्ना', महीधर राममोहन राव का 'रथचक्रालु', 'कन्तुल बंतेना' आदि में राजनीतिक समस्या को समाविश्ट किया गया है। एन0 आर0 नंदि का 'नैमिशारण्य', बलिवाड़ा कांताराव का 'दगा पडिन तम्मुडु', गोल्लपूडि मारूति राव का 'चीकटिला चीलिकलु', पालगुम्मि पद्मरातु' बतिकिन कालेज', 'नल्लरेगडि' आदि विशिष्ट उपन्यास कृतियाँ हैं। रूसी उपन्यासों को लेकर गोरा जी ने समरं-शांति', 'अन्ना केरेनिन' नाम से अनुवाद किया। रवीन्द्र के उपन्यासें को 'नौका भंगम', 'तपोवन', 'ईटा-वयटा' नाम से रूपांतरित किया गया। कोमरमु भी का 'सरिहट्टु' (1970), यंडमूरि का 'मरणमृदंगम', राक्षसुडु, नल्लंचु तेल्ल चीरा', 'तुलसीदल', काश्मोरा' जैसे सूडो साईस उपन्यासों की रचनाये हुई।

दलित उपन्यासों में डॉ. केशवरेड्डी का 'क्षुद्रदेवता' (1976), 'स्मशान दुन्नेरू' (1971), 'चिवरिगुडिसे' (1999) मापल्ले (1974), रवि शास्त्री का 'मूडुकथल बंगारमु' आदि सामाजिक चेतना से जुड़े उपन्यास हैं। नारी मुक्ति से जुडी ओल्गा की 'स्वेच्छा, आकाशंलो संगं', 'खाकी बतुकलु', चिलुकूरि देवपुत्रा का 'पंचम', जी0 कल्याणराव का 'अंटरानिवसंतं', एलेक्स हैली का 'एडु तरालु', कल्याण राव का 'मैलुरायि', बेमूरि एल्लय्या का 'कक्का', 'सिद्ध'आदि दलित उपन्यास का बेजोड़ उदाहरण हैं।

इस प्रकार इन वर्षों में (1872-2013) सहस्त्रों उपन्यास लिखे गये,जो तेलुगु साहित्य की विविध रंगीतियों को प्रस्तुत करते हैं।

7.5 तेलुगु नाटक, एकांकी का विकास

20वीं शती तक आंन्ध्र वाङ्मय में नाटक विधा का अभाव बना रहा। तेलुगु कवियों ने संस्कृत को प्रबंध-काव्य हेतु चुना। अपवादस्वरूप 13वीं शती में मंचना का केयूरबाहु चरित्र (श्रव्य काव्य) को आधार बना कर राजेशखर ने 'सालभंजिका' नाटक की रचना की। 15वीं शती में पिल्ललमर्रि पिनवीर मद्रुडु का 'श्रृगांर शाकुंतलम'' काव्य रूप में प्रस्तुत हुआ। संस्कृत में कृष्णमिश्र कृत 'प्रबन्ध चंद्रोदय' का नंदि मल्लन्ना, धंटा सिंगना ने काव्य नाट्य प्रस्तुत किया। तिम्म भूपालूडु का 'मुरारि अनर्घरावघव' वोड्ड चर्ल तिम्मना का 'प्रसन्न राघव', श्री भास्कर का 'उन्मन्त राघव', पशुपति नायुडु का 'मदन विलास बाणमु', गंगाधर कवि का 'महाभारतमु', विश्वनाथ कवि का 'सौगंधिकापहरणमु', वेंकट ध्वरि का 'प्रद्युम्नानंद', राविपाटि त्रिपुरांतकुडु का 'प्रेमाशिरामम्', धर्मसूरि का 'नरकासुर विजयमु,' रावु सर्वज्ञसिंग भूपालुडु का 'रत्न पांचालि;, श्रीकृष्ण देवरायलु का 'जांबवती परिणय' आदि संस्कृत नाटक तेलुगु कवियों द्वारा लिखे गये।

नाट्य रचना के साथ रंगमंचीय निर्देशन का तेलुगु कवियों ने विशेष ध्यान दिया। रामराजुभूशणुडु को 'वसुचरित्र' के चौथे अध्याय में पर्दे के उपयोग के बारे में बताया गया है। संस्कृत नाटक राजमहल तक सीमित थे। सर्वसाधारण के मनोरंजनार्थ यक्षगान, वीथी-'भागवत नाटक, कठपुतली'-खेल थे। तिक्कना का 'भारतमु' (संचर नाटक) उल्लेख है।

तेलुगु साहित्य के प्रारम्भ से लेकर सन् 1860 तक 'यक्षगान', 'गोल्लकलापम्', वीथ्शि भागवतम्,' 'भामा कलापम्' जैसे नाट्य रूप का विकास हुआ जबकि सन् 1860 से 1960 तक का काल आधुनिक तेलुगु नाटक विकास युग माना जाता है।

तेलुगु नाटकों का विकास -क्रम-

तेलुगु का पहला मौलिक नाटक कोराड़ा रामचंन्द्र शास्त्री का 'मंजरी मधुक वीयमु' (1860) को माना जाता है। इनके द्वारा रूपांतरित नाटक 'वेणी संहारमु' अप्रकाशित ही रह गया। कोक्कोंड वेंकटरत्नं पंतुलु' का 'नरकासुर विजय व्यायोगमु' (सन् 1871) संस्कृत नाटक का आन्ध्री करण है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम' के 20 भी अधिक तेलुगु अनुवाद किए गये। पड्डादि सुब्बाराव का 'वेणी संहराम' (1886) 'चंडकासिकम' (1900 ई.), वाविलाल वासुदेव शास्त्री का 'उत्तरराम चरित' (1889 ई.) सुसर्ल अनंत रा का 'मुद्रा राक्षस' (सन् 1890), वेदंवेंकट राय शास्त्री का 'नागनंदम', (1891 ई.) तिरूपति वेंकट कवि का 'मृच्छकटिकम' (1890 ई.), 'मुद्राराक्षस' (1908), दासु श्रीरामुलु का 'महावीर चरित्र' (1902)' मालत माधवम', मल्लदि सूर्यनारायण शास्त्री का 'उत्तररामचरित्र' (1908), वेटूरि प्रभाकर शास्त्री का 'प्रतिमा', बुलुसु वेंकटेश्वर का 'अभिषेक', प्रतिभा' आदि तेलुगु नाटक संस्कृत द्वारा रूपांतरित किया गया।

वाविलाल वासुदेव शास्त्री का 'सीजर चरित्रमु' (1875) पहला अंग्रजी नाट्यानुवाद माना जाता है। 1880 में 'नंदक राज्यमु' मौलिक नाट्य रचना किया।

नाट्य-मंचनीयता-

कंद्कूरि वीरेशलिंगम पंतुलु ने 'विद्यार्थी' नाटक समाज' की स्थापना कर स्वरचित नाटकों का प्रदर्शन किया। धारवाड़ में 'धारवाड़-संख्या', गुंटूर में 'हिन्दू नाटक समाज,' बंदरू में

'हिन्दू नेशनल थियोटिकल सोसायटी' आदि संस्थाओं के अध्यक्ष तथा निर्देशक स्वयं नाटककार रहै।

वीरेशलिंगम पंतुलु ने 'कॉमेठी ऑफ एरर्स' को 'चमत्कार रत्नावली' (1881ई.) नाम से लेखन एवं प्रदर्शन करवाया। कोंडमद्ला सुब्रह्मण्यम शास्त्री द्वारा नाटकों का ऐतिहासिक, पैराणिक प्रणयन एवं मंचन करवाया। नादेल्ल पुरूषोत्तम कवि द्वारा 'रामदासु चरित्रा' 'सत्य हरिश्चन्द्रं' की रचना तथा मंचन कराया गया।

आधुनिक तेलगु नाटकों का विकास-

बल्लरी के धर्मवरम राम कृष्णमाचार्युलु ने तेलुगु में दुःखांत, नाटकों की शुरूआत की। सन् 1886 में 'सरल विनोदिनी सभा' की स्थापना की। इनकी 'चित्रनलीयम' (1887), 'विषाद सारंगधर' (1889) कृतियाँ खूब चर्चित हुई। इनके नाटक में प्रोलाग, ऐपिलाँग के साथ अंकों का विभाजन भी हुआ है। 'चंद्रहास' (नमक कर का विरोध), 'प्रमीलार्जुनीयम' (स्त्री स्वतन्त्रता का समर्थन) की रचना कर उसका प्रदर्शन कराया। धर्मवरम राम को 'आन्ध्र नाटक पितामह' कहा जाता है।

बल्लारी के वकील कोलाचलम श्रीनिवास राजु का 'सुमनोहर कथा', 'वाणी विलासमु' (1905 ई.), 'विजयनगर राज्य पननमु', 'सुल्लाना चाँद', 'चन्द्रगिरि अभ्युदयमु', मैसूर राज्यमु आदि महत्वपूर्ण' ऐतिहासिक कृतियों के कारण इन्हें, 'चारित्रिक पितामहुलु', (ऐतिहासिक पितामह) कहा जाता है। 'पादुका पट्टाभिषेकमु', 'प्रह्लाद चरित्र' तथा 'प्रपंच नाटक चरित्रा (विश्व नाटक का इतिहास) आदि उल्लेखनीय है। 'दी ड्रमेटिक हिस्टरी ऑफ दी वर्ल्ड' के ये ही लेखक है।

चिलकमूर्ति नरसिंहम का 'गयोपाख्यानम्' की एक लाख प्रतियाँ विकी थी। 'प्रसन्न यादवम्','पारिजातापहरणमु', 'प्रह्लाद चरित्र' आदि इनकी अन्यकृतियाँ है। उनकी आख्यानात्मक, व्यग्यात्मक शैली उनकी लेखनी को जीवंत बनाती है। 'आन्ध्र शेक्सपीयर' पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहम ने रामायण को चार नाटकों में ('कल्याण राघवम्', 'पादुका पट्टाभिषेकम्', 'वनवास राघवम्, विजय राघवम्) में बाँटते हुए लिखा। इनके अन्य मुख्य नाटकों में 'कंटाभरणम्' (हास्य रस प्रधान) का नाम लिया जाता है। कोकिल, सरस्वती, वृद्ध-विवाह; राति स्तंभ (पाषाण स्तंभ), प्रचंड चाणक्य, चूड़ामणि, बुद्ध बोध सुधाआदि पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंहघ्राव के उल्लेखनीय नाटक हैं।

महाभारत की कथा को 'पांडवोद्ययोग विजयम' (1911 ई.) नाम से अद्भुत शैली में पद्यात्मक नाट्य प्रस्तुति करने वाले तिरूपति वेंकट कवुलु जनप्रिय नाटकार हैं। बलिजेपल्लि लक्ष्मीकांतम् का 'सत्य हरिचंन्द्रयमु' रसपूर्ण पद्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया नाटक हैं। इनके द्वारा श्मश्ज्ञानघाटका वर्णन कोकिला जशुआ की कृति 'श्माशान वाटिका' (खंडकाव्य) से पार्याप्त साम्प रखता है। ऐतिहासिक नाटकारों में वेदांत वेंकटराय शास्त्री का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनका 'नागानंद', 'शाकुंतलम्' 'प्रियदर्शिका', 'मालविकाग्निमित्र' 'उत्तररामचरित, 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली' आदि अनूदित नाटक है तथा 'प्रतापरूद्रीयम',

उसा परिणयम', बोब्बिलि युद्ध' आदि मौलिक नाटक है। जिनमें पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। गुडिमेंटा वेंकट सुब्बाराव का 'खिलजी राज्य पतनमु', इच्छापुरमु यज्ञनारायण का 'रस पुत्र विसयमु' 'सिंहगडमु' आदि उल्लेखनीय है।

शोंठि भद्राद्रि रामशास्त्री (1850-1915) ने संस्कृत नाटकों का (वेणी संहार विक्रमोर्वशीयम, कुंदमाला, मल्लिका मारूत) अनुवाद सशक्त शैली में प्रस्तुत किया।
ताडूरि लक्ष्मी नरसिंह राय का 'श्रृंगार भूषण', 'उन्मत्त राघव' 'रूक्मिणी स्वयंवर', 'जयंती रामय्या पंतुलु का 'उत्तर रामचरित' ,'काशीभट्ट शास्त्री का 'मंगतायि', 'सौधववध', 'चंद्रहास चरित्र, 'अहल्यासंक्रंनीयद्यमु' 'द्रौपदीवस्त्रापहरण', 'सारंगधर', 'पारिजातापह्णमु,' श्रीदासु श्रीराकवि का अनूदि नाटक (मालती-माधव महावीर चरित', मालविकाग्निम्त्रम, रत्नावली आदि) इन्हें श्रव्य नाटककार के रूप में ख्यातिलाभ कराता है।

सामाजिक नाटक- 1897 में प्रकाशित 'कन्याशुल्कमु'- गुरजाड़ा अप्पाराव (1965-1915) कृत प्रथम सामाजिक नाटक है, जिसमें बाल-विवाह का जीवंत चित्रण है। तीन साल की बच्ची का साठ साल के वृद्ध से विवाह तत्पश्चात विधवा होना दिखाया गया है। इसमें वेश्याओं की, विधवाओं की विवशता, पुरूश वर्ग का उन पर अत्याचार, पुलिस का क्रूरतम रूप आदि सम्यायें जीवंतता के साथ रूपायित हुई है। अप्पाराव से प्रेरित होकर काल्लकूरि नारायणराव का 'चिंतामणि', 'वर विक्रममु' नाटक लिखा गया।

दादाजु पुंडरीकाक्षुडु का ' गांधी विजयमु, पांचाली पराभवमु, ' ग्रथि सुब्बारायुडु का 'आंध्रमाता', दोणराजु सीता रामाराव का 'आन्ध्र पताकम', दुब्बूडि रामिरेड्डी का 'कुमराणा'आदि विविध विषय से सम्बन्धि नाटक हैं। तेलुगु के ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का 'नर्तनशाला',' त्रिशूलम' (दुःखांत), अनार्कली आदि उत्तम नाट्य कृति है। 1929 ई. पनारस गोविदराव ने 'आन्ध्र नाटक कला परिश द' की स्थापना करते हुए 'नाट्यकला' नामक त्रैमाषिक पत्रिका निकाला। 1938 में हरीशचन्द्र चटर्जी ने वेलूरि चन्द्रशेखर की 'कांचनमाला' का प्रदर्शन सशकत रूप में कराया। 'आन्ध्र नाटक कला परिश द' के द्वारा प्रोत्साहित नाटक लेखक एवं अभिनय कार्यकर्ताओं ने नाटक में खूब प्रयोग किए। नाटकों में बालचाल की भाषा के साथ ही आचलिकता ने भी प्रवेश पाया। नैतिक नाटकों में, 'भाग्य रेखा' (कोपेल्ला वेंकटराव), 'वेन्नेला' (चाँदनी) तथा मनोवैज्ञानिक नाटकों में 'आत्मवंचना' (बुच्चिबाबु), 'कप्पलु' 'भयम' 'एन0जी0ओ0 (आत्रेय) नाटक खूब पसंद किए गये। श्री त्रिपुरनेनि रामशास्त्री का 'शंभूक बध' 'जाति',आंकचर्ला गोपालराव का 'हिरण्यकशिपुडु', गुडिपाटि वेंकटा चलम की 'सावित्री', जी0वी कृष्णराव का भिक्षापात्र' आदि उल्लेखनीय धार्मिक एवं पौराणिक तेलुगु नाटक है।

जमींदारों और किसानों के बीच संघर्स को पद्मश्री बोयि भीमन्ना ने 'पालेरू', 'कूलिराजु', 'आदि नाटकों में चित्रित किया है। तेलुगु के जासूसी नाटकों में पी0 श्रीराम मर्ति की 'फणि' और 'कालरात्रि' प्रसिद्ध है तो सुब्बाराव की शेशनआरा', 'राणाप्रताप', 'शशांक', पिंगलि की 'जेबुन्निसा' 'विद्याराणी', 'ना रजु' आदि उल्लेखनीय साहित्यिक धरोहर है। इस

प्रकार मात्र 50 से 60 वर्षो मे ही 3000 से भी अधिक विविधताओं से भी तेलुगु नाट्य-रचना को देख्कार उसकी प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है। नाटकों के मापध्यम से समाज सुधार को लक्ष्य बनाकर वीरेशलिंगम पंतुलु ने 'चतत्कार रत्नावली' (कामेडी आफ एर्रस' का अनुवाद) 'विवेक दीपिका-, 'प्रह्लाद' 'दक्षिण गोग्रहण', 'हरिश्चन्द्र', 'तिर्थ ग्विद्वन्महासभा', 'महारण्य पुरधिपत्युमु' आदि नाटाकों को अपना हथियार बनाया। अतः तेलुगु नाटकों में विविधता को और उसके उज्जवल भविष्य की अपेक्षा की जा सकती है।

तेलुगु एकांकी-

तेलुगु साहित्य में नाटकों का सूत्रपात संस्कृत से हुआ तथा एकांकी का विकास अंगेजी के ''व्दम ।बज च्संल'' से हुआ। सन् 1912 में 'ड्रामास इन सिविक्स' ग्रन्थ में कवि सर्वारायुडु की कृति 'गा्रम कचेरी' को स्थान मिला। इसके बाद 'भारती' , शारदा' आदि पत्रिकाओं द्वारा कई एकांकी प्रकाशित हुए। पाश्चात्य नाटककार इब्सन के सुधारात्मक नाटकों के तर्ज पर तेलुगु में देशी कविता मंडली के द्वारा पी0वी0 राजमन्नार के 15 नाटकों (राजमन्नार नाटिकाएँ) का प्रकाशन हुआ। इसके बाद तेलुगु एकांकियों ने भी जोर पकड़ा तो कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

तेलुगु की प्रगतिशील एकांकियाँ गुडिपाटि वेंकटाचलम की 'भानुमती' 'नरसिंहावतारमु', 'सावित्री आदि उल्लेखनीय है। श्रीपाद सुब्रह्मण शास्त्री की 'रूपिकलु' (एंकांकी) दो संग्रहों में (कलम पोटु', 'टी पार्टी') प्रकाशित हुई। विश्वनाथ कविराजु का 'लेता विडाकुलु', 'डोंकलो श राबु', मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री ने 'मोक्कुश डि', चिंता दीक्षितलु का 'दीक्षितुलु की एकांकियां' (श्रीकृष्णडु अहल्या', 'जटायुवु', 'दशहरा दिब्बा', 'मानवुडु', 'वरूधिनी') आदि महत्वपूर्ण है।

हास्य एकांकियों में 'कचटतपलु' 'एप्पडू इंते' (भमिडिपाटि कामेश्वर राव) 'कांतम', (मुनिमाणिक्यम नरसिंहराव), 'एंकि-नायुडु बावा 'बुच्चम्मा गिरीशम' गुरजाड़ा अप्पाराव के नाट्यपात्रों पर आधारित एकांकी सुब्बाराव द्वारा लिखे गये।

मल्लादि वेंकटकृष्णशर्या ने 'सुरभि नाटक संस्था' हेतु कई एकांकियाँ लिखी,अतः उन्हें नाटक समाज ने 'आस्थान कवि' (दरबारी कवि) की उपाधि द्वारा सम्मानित किया। उस समय के एकांकी में लेखक 'बिना स्त्री पात्रों की एकांकी' लिखा करते थे। इसी वाक्य को व्यंग्य बनाकर वेंकट कृष्ण ने एकांकी लिखा था। इसी समय ऐतिहासिक एकांकिया भी लिखे गये । प्रमुख ऐतिहासिक एकांकी हैं- आंकचर्ल गोपालराव की 'मल्लमदेवी उसुरू' मारेमंडा रामाराव की 'नैवेद्यम', 'प्रतीकाराम', जी0वी0 कृष्णाराव की 'तोलुबोम्मलु', नार्ल वेंकटश्वर राव का 'कोत्तगुड्डा' आदि।

तेलुगु एंकाकीकारों ने अन्य भाषाओं से भी एकांकियों को रूपांतरित किया। प्रमुख अनुदित एकांकी हैं - 'चेप्पुडु माटलु' (कन्नड़ से - तिरूमल रामचंद्र), 'तीरनि बाकी' (मलयालम से - पुट्पर्ति नारायणाचार्युलु), 'नवनाटिकलु' (तमिल से श्रीवास्तव) आदि। इस प्रकार एकांकी, गीत नाटक, नाटक, लघुनाटक, संगीत रूपक आकद विविधमुखी नाट्य रचनासें प्रचुर मात्रा में की गयी।

गेय नाटक- तल्लावर्झल शिशंकर शास्त्री द्वारा सन् 1933 में 'पद्मावती चरण-चरण चक्रवर्ती'? नाम से गेय नाटक जयदेव के गीत गोविंद के आधार पर लिखा गया। इसके बाद तो इनकी प्रेरणा से कई गेय नाटककार (सी.नारायण रेड्डी, वाविलाला सोमयाजुलु, पापु रेड्डी, एव.वी. जोगाराव, बोयि भीमन्ना, मल्लवरमु विश्वेश्वर राव आदि) उभरे । डॉ. सी. नारायण रेड्डी का 'रामप्पा' संगीत रूपक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराह गया, इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

रेडियो नाटक - तेलुगु साहित्य में रेडियो नाटक की समृद्ध परम्परा रहीं रेडियो नाटक के क्षेत्र में श्री मुट्टुकृष्णा की 'अनारकली' सर्वप्रथम है। कपिल काशीपति की 'पिंगलि सूरन्ना', 'कवितायज्ञमु', 'शिलक्षरमु;', राजगुरूवु', 'प्रतिष्ठानमु' आदि महत्पूर्ण रेडियो नाटक है। देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री की 'शर्मिष्ठा' संग्रह (गौतमी', 'वेणुकुंजम', 'एड़ादि पोडुगुना', 'यमुना बिहारी') 'धनुरदासु' संग्रह ('सायुज्यमु', 'गुड्डु', 'शिप क्षेत्रय्या', 'धनुरदासु' आदि) पाठकों ने खूब पंसद किए। मुनिमाणिक्यं नरसिंहराव का 'करूपुराजुल्लो कांतमम्मा', 'इंटिलो ब्रह्मराक्षसी' (घर में ब्रह्मराक्षसी), 'राजबंदी','मूटल दोंगा', ' (गडिडयों का चोर), ' पिदुश कुडु' आदि उल्लेखनीय हास्य रेडियो नाटक है। प्रगतिवादी लेखक श्री श्री का रेडियो नाटक - 'चतुरस्त्रम', 'मरोप्रपंचमु', 'अतंरपात्रा' 'गुमास्ता कला', 'गणेश', 'ओंटरिबावि', 'भूताल कोलिमि', ग्रामफोन रिकार्डुल तिरूगुबाटु' आदि। इनके अतिरिक्त गोरा शास्त्री (आशा खरीदु अणा),गोपीचंद (तत्वमसि) आदि का नाम भी सफल रेडियो नाटककार के रूप में लिया जाता है। आकाशवाणी केन्द्र में 'अन्नय्या' न्यापति राघवराव', 'अक्कय्या न्यापति कामेश्वरी के नाम से प्रसिक्र है। इन्होंने बाल हास्य नाटाकों, बाल पौराणिक नाटकों की रचना की। 'नागुलु', 'मुडु पेल्लिलल्लु' आदि गेय नाटक इन्ही के हैं। अन्य प्रमुख बाल नाट्यकारों के ना उल्लेखनीय हैं- वी0वी0 नरसिंहराव जी (पूलावाललु', 'बाललललोकम', 'उत्तराल संतय्या', 'ऋतुराणी', 'प्रियदर्शिनी',), 'इल्लिंदल सरस्वती (बाल वीरूलु', 'सहवास दोश मु, 'पटाटोमप', 'बोम्मल पेल्लि', 'अपकारिकि उपकारमु',) के सभा, एडिदा रामेश्वर राव, नार्ल चिरंजीवी, मुद्दिपट्ला वेंकटराव, सोमंचि राममू, पिल्ला सुब्बाराव शास्त्री, मल्लपल्लि डमामहैश्वर राव, उन्नव सेतु माधव राव, विश्व प्रसाद, प्रयाग नरसिंह शास्त्री, विंजमूरि शिव रामाराव आदि ने प्रचुरता के साथ बाल नाट्य रूपकों की सर्जना की। तेलुगु नाट्यपर' नाटकांतम हि साहित्यम ' की सूक्ति पूर्णतः चीरतार्थ होती है। एम0 रजनी के आलोचनात्मक ग्रन्थ 'तेलुगु मेंबाकल नाटिकलु' (सन 1982) में 165 प्रकाशित नाटकों की समीक्षा की गयी है। नाट्य साहित्य पर श्री राम अप्पाराव का 'आंध्र नाटक किकासमु' महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस प्रकार लेखकों की लेखनी सतत् चलायमान है। अतः नाट्य साहित्य की प्रगति निश्चित है।

7.6 तेलुगु की पत्रिकाएँ एवं समीक्षा-

समाज की गतिविधियों का समाचार देना तथा उसकी व्याख्या करना पत्रकारिता का कार्य होता है। पत्रकारिता के कई सोपान है- दैनिक, 'पीरियाडिकल्स', 'साप्ताहिक'द्व 'पाक्षिक', 'मासिक', 'द्वैमासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक, वार्षिक आदि।

तेलुगु का प्रथम दैनिक 'कर्नाटक क्रानिकल (1932 ई.) को माना जाता है। इसके पूर्व इसाई धर्म प्रचारकों द्वारा 'सत्यदूत' (सन् 1835) तेलुगु में प्रकाशित हो चुका था। किंतु कुछ विद्वान सन् 1838 में प्रकाशित पत्रिका 'वृत्तांतिनि'को मानते हैं जो मंडिगल वेंकट राय शास्त्री द्वारा संपादित होता था। सन् 1842 में 'वर्तमान तरंगिणि' पत्रिका में काव्य, प्रबंध शतकों की सूची आदि पुव्वाड़ा वेंकटराव द्वारा संपादित होने लगा। सन् 1848 में 'दिनवर्तमान' 'हितवादी' में साहित्यिक लेखों का प्रकाशन हुआ। सन् 1862 में 'सृजन रंजनी', 'श्री चक्षिणि', 'तत्वबोधिनी', 'आंध्र भाषा संजीवनी' आदि पत्रिकाओं में खूग लेख , साहित्य आदि प्रकाशित हुए।

सन् 1872 में 'पुरूषार्थ प्रदायिनी' (उमा रंगनायकुलु संपादक) पत्र में मुहावरे, लोकोक्तियों, प्राचीन सूक्तियों आदि का प्रकाशन हुआ। तेलुगु भाषा के विकास हेतु, 'स्वर्धम प्रकाशिनी', 'सुधिरंजनी', 'सकल विद्याभिवर्धिनी' आदि का प्रकाशन हुआ। सन् 1874 में विवेक वर्धिनी' (कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु), श्री चिंतामणि' 'सत्यवादी', 'सतहितबोधिनी' आदि पत्रिकाओं द्वारा तेलुगु साहित्य को चहुओर प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त 'जन विनोदनी', 'हिंदू सुंदरी' (1902), 'वंदेमातरम् (1970), तेलुगु' (गिडुगु राममूर्ति पंतुलु द्वारा संपादित), 'बज्रायुधम्' (श्रीपाद कृष्णमूर्ति) 'मनोरमा', देशमता' (राजमहैन्द्रवरम), आंध्र पत्रिका (1908 काशी नाथुनि नागेश्वरराव) द्वारा संपादित की गयी। 'आन्ध्र भारती' (1910), 'आंध्र साहित्य परिपुष्पत्रिकका' (1912), 'त्रिलिंग' (1912), 'मुक्त्याला सरस्वती' (1923), आंध्र सर्वस्मम्' 'सारस्वत सर्वस्म्' 1924, 'प्रबुद्धांर्ध', (1924, गिडुगु राममूर्ति) पत्रिकाओं द्वारा विविध साहित्यिक विधाओं का प्रकाशन किया गया। काव्य भाषा के प्रचारार्थ, वज्रायुधम (1925 श्रीपाद कृष्णमूर्ति) रेड्डी राणी' (1924) पत्रिका में रेड्डी राजाओं के शासनकाल की रचनाएँ प्रकाशित हुई।

तेलुगु गद्य के प्रचारार्थ सन् 1923 में 'श्री साधनों 'शारदा' (1922), 'कला' (1924), 'भारती' (1924), 'गोलकोण्डा' (1924 में सुरवरम प्रतापरेड्डी द्वारा), 'आन्ध्र भूति' (1937 में आंड्रशेश गिरि राव द्वारा)', उदयिनी' (1935, द्वैमासिक) 'प्रतिभा', 'वीणा' (1936), 'आंध्र' (1946) आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। पहली कम्युनिस्ट पत्रिका 'प्रभा' (1935) गद्दे लिगय्या ने संपादित की । 'स्वतन्त्र भारत' (1939-42)', जनता' (1948-1950), 'आंध्र प्रभा' (1938) आदि में राष्ट्रप्रेम से पूर्ण रचनाओं, लेखें को प्रकाशित किया जाता था। 'अभ्युदय' (मासिक), 'सत्य साची' (1959) 'संदेशम', (1950,) 'संवेदना' (1965 त्रैमासिा) आदि पत्रिका संपादन अभ्युदय रचनाकारों द्वारा किया गया। 'प्रजाशक्ति 1942, 'विशालांध्रा' (1953, तिरूमल रामचंन्द्र एवं कोदंड रामय्या द्वारा संपादित), 'आंध्र ज्योति (1960 नार्ल वेंकटेश्वर राव) 'आंध्रभूति' (1960, गोरा शास्त्री तथा गज्जल मल्लारेड्डी द्वारा संपादित) आदि पत्रिकाओं ने पत्रिकाओं के इतिहास में क्रांति के परचम लहराये। इन पत्रिकाओं में उपन्यासों तथा अन्य विधाओं का अत्यधिक प्रकाशन हुआ।

राष्ट्रोन्नति का विषय लेकर 'ईनाडु' (1974, ए0बी0 के0 प्रसाद द्वारा संपादित) का प्रकाशन हआ, जो अंतराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठि हुई। 'उदयम' (1984, दासरी नारायणराव द्वारा संपादित पत्रिका) में लघु कथाएँ, कविताएँ आदि खूब प्रकाशित हुई। 'वार्ता; (1996) दैनिक में राजनीतिक, वैज्ञानिक, स्त्री, बच्चों आदि से संबंधित विषयों को प्रकाशित किया जाता है।

अन्य प्रत्रिकाओं में समकालीन विषयों को प्रमुखत के साथ प्रकाशित किया जाता है। 'भारति' (काशीनाथुनि नागेश्वर राव), 'चतुरा', षिपुला' 'इण्डिया टूडे', (मासिक से पाक्षिक साप्ताहिक) पत्रिकाओं ने समाज, धर्म, राजनीति, सांस्कृतिक, साहित्यिक विषयों का प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया। तेलुगु साहित्य को उन्नति के शिखर तक पहुँचाने में पत्रिकाओं के साथ-साथ समीक्षा आदि का भी विशेष योगदान है।

समीक्षा- तेलुगु आलोचना के साथ ही समीक्षा शास्त्र में साहित्य के समस्त अगों पर विस्ृत दृष्किोण के साथ विश्लेषण किया गया। प्रमुख सीक्षकों में हैं- कोराड राकृष्णय्या (सारस्वत व्यासमुलु') काशीभट्ल सुब्बय्या शास्त्री (साहित्य कला), मुतिमाणिक्यम नरसिंहा राव (साहित्य व्यासमु), शिष्टा रामकृष्णशास्त्री (विमर्श व्यासमुलु), राल्लपल्लि अनंत कृष्ण शर्मा (सारस्व तोपन्या समुलु), जोन्नल गड्ड सत्यनारायण मूर्ति (साहित्य विमर्शन), वेमूरि वेंकटरामनाथम (सौन्दर्य निबंध, भाषण , आलोचना आदि की संतुलित दृष्टि से व्याख्या की है।

भारतीय एवं यूरोपीय शास्त्रों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रभावित होकर कई लेखकों ने समीक्षा की नयी दृष्टि अपनाई। इनमें प्रमुख हैं- पुराणम् सूरिशास्त्री। इनकी 'नाट्योपलमु', 'रूपक रसालम', 'विमर्शाक परिजातमु' आदि महत्वपूर्ण तुलनात्मक समीक्षा कृति है। बुर्रा शैश गिररिराव का 'विमर्शादर्शमु' 1971 ई., गोर्रेपाट वेंक सुब्बय्या का 'अक्षरराभिषेकमु' (1952 ई.) मुहम्मद कासिम खं का 'कथानिका रचना' शोंठि कृष्णमूर्ति का 'कथलु रायटमेला', आदि कहानी विधा से सम्बन्धित समीक्षा कृति है। तेलुगु के वर्ष भर में प्रकाशित 'साहित्य समालोचना' को श्रीवास्तव द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

सन् 1919 में कोराड रामकृष्णय्या का 'आन्ध्र भारत कविता विमर्शनमु' में तेलुगु के कवित्रय (नन्नय-'तिक्कना, एर्रना) पर आधारित उत्तम समीक्ष्य कृति है। इनकी 'कालिदासुनि कला प्रतिमलु', दक्षिण देश सारस्वतमुलु' (1949 ई..) भी महत्वपूर्ण कृति है, जो तेलुगु समीक्षा शास्त्र की शोभा बढ़ाते हैं।

7.7 तेलुगु निबंध का विकास-

निबंध- तेलुगु निबंध का आरम्भ कुछ लेखकों ने 19 वीं शती से शुरू किया। आरम्भ में इन निबंध तथा लेखों का उद्धेश्य किसी अन्य लेखक की कृति की आलोचना करना रहा। इन आलोचनात्मक निबन्धों के साथ ही निबन्ध जलेखन की शुरूआत होती है। प्रायः सीमारहित बड़े-बड़े लेख जाते थे। ऐसी स्थिति में लेखक निजी विषयों तक पहुँच कर मर्यादाहीन भी हो जाता है।

निबंध का दूसरा पड़ाव समाज -सुधार जैसे विषयों को लेकर लिखे जाने वाले निबंध थे। इन निबन्धों में लम्बे-चौड़े वाक्य, उपमा , रूपक, दृष्टांत आदि की प्रचुरता रहती थी। समाज प्रधान वाक्य विद्वता की पहचान माने जाते थे। प्रायः विद्वानों के वाद-विवादोपरांत निबंध सर्जना होती थी। तेलुगु की अन्य गद्य विधाओं की अपेक्षा निबंध विषय की प्रगति मंथर गति से हो रही थी। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ निबंधों का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित हैं

'हितसूचिनी' को तेलुगु का प्रथम निबंध माना जाता है। स्वामिनेनि मुद्दुनरसिंह नायुडु के इस निबंध संकलन को उनके पुत्र ने सन् 1962 में प्रकाशित कराया। इसमें लेखक ने जन- भाषा में, विवरणात्मक शैली के साथ उपेदश प्रधान निबंध लिखे है। नरसिंह नायुडु के बाद सीरेश लिंगम पंतुलु ने समाज सुधार का उद्धेश्य लेकर इस विधा को आगे बढ़ाया। निबंधों का रूप स्थिर करने के साथ ही उसकी मर्यादा स्थापित करने का गुरूभार वीरेशलिंगम ने उठाया। इन्होंने स्त्रियों से सम्बन्धित लेखों को '-सती हित बोधिनी' नाम से प्रकाशित किया। तेलुगु के कुछ प्रसिद्ध निबंधकारों का उल्लेख निम्मनतः किया गया है- पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् (गौतमी व्यासलु'- 1952 ई..) गुरूजाड़ा अप्पाराव ('व्यास चन्द्रिका'- 1953 ई.0), तिरूपति वेंकट कविद्वय (कथलु गाथलु ' 1949 ई.) आदि। निबंध विधा के क्षेत्र में तेलुगु साहित्य आधिक विकास नहीं कर पाया है। किंतु पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले नियमित लेख निबंध की कमी का आभास नपहीं होने देते। धीरे-धीरे इस विधा की ओर निबंधकारों की रूचि बढ़ती जा रही है, अतः अधिक निबंध लेखन की अपेक्षा की जा सकती है।

भाषा-विज्ञान, व्याकरण, कोश - तेलुगु गद्य के विकास में भाषा-विज्ञान, व्याकरण आदि के नियमन ने भी महत्वपूर्ण योग दिया। 'अमुद्रित ग्रंथ चिन्तामणि' में नाटकों की भाषा, लिपि, शब्दों के प्रयोग आदि पर विचार किया जाता था। शब्दद्वय विचार, रेफ द्वय आदि विषयों को लेकर वाविवाल वासुदेव शास्त्री ने कई लेख लिखे (संस्कृत, अंग्रेजी, तेलुगु भाषा के ज्ञाता वासुदेव शास्त्री तेलुगु के उद्भव तथा विकास पर प्रकाश डाला। टी0 एम0 शेश गिरि शास्त्री का 'अर्द्धानुस्वार तत्वमु' (1893 ई.), 'आन्ध्र शब्दतत्वमु' आदि में अनुस्वार तथा द्रविड़ कुल की भाषाओं का विज्ञान सम्मत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।)

तेलुगु कोश निर्माण के क्षेत्र में चार्ल्स फिलिप ब्राउन का योगदान अविस्मरणीय है। 1853 ई. इन्होंने तेलुगु व्याकरण लिखा। तेलुगु और इतालवी भाषा का तुलनात्मक व्याकरण उल्लेखनीय है। ब्राउन का 'इंग्लिश तेलुगु निघंठु' (1845 ई.), तेलुगु अंग्रेजी कोश 'महत्वपूर्ण है। 1955 ई. में विदेश वापस जाकर भी कोश निर्माण कार्य जारी रखा। ''ए डिक्शनी आफ दी मिक्स्ड डायलेक्ट्स एण्ड फारेन वडर्स यूज्य इन तेलुगु'' में फारसी, तेलुगु, अंग्रेजी, बोल चाल आदि शब्दें को स्थान दिया। इन्होंने न्यायालय से सम्बन्धित छोटे-छोटे कोश का भी निर्माण किया। परवस्तु चिन्नय सूरि का बाल-व्याकरण' (1855 ई.) तथा बहुनपल्लि सीतारामाचार्युलु का 'प्रौढ़ व्याकरण;, त्रिलिंग लक्षण शेश मु' (1885 ई.) शब्द रत्नाकर' (1885) उल्लेखनीय व्याकरण ग्रन्थ है।

वीरेशलिंगम पंततुलु ने शब्दों की सूची मूल अंग्रजी शब्द के साथ अपनी पुस्तकों के अंत में दिया है। धीरे-धीरे अनेक वैज्ञानिक विषयों पर ग्रंथ लिख जोने लगे। 1821 ई. में 'उपयुक्त ग्रंथ करण सथा' का प्रकाशन वैज्ञानिक विषयों की जानकारी के लिए हुआ। वीरेशंलिगम पंतुलु का 'पदार्थ विज्ञान शास्त्र' (सन् 1878), शरीरशास्त्र' (सन् 1888 ई.' देहारोग्य धर्म बोधिनी' (1889 ई.)'ज्योतिष शास्त्र संग्रह' (1895) 'जन्तु स्वभाव चरित्र' (1896 ई.) आदि लेखक के परिष्कृत वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक है।

रेंटाल वेंकट सुब्बाराव ने 'पक्षी शास्त्र' ग्रन्थ के द्वारा जीवविज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। पी.सूर्यनारायण का 'कृषि चन्द्रिका' (1894 ई.0) धनकोटि राजू का 'आरोग्य शास्त्र' (1889 ई.) आदि के अतिरिक्त शिलालेख, ताम्र-पत्र, मुद्रादि का शोध एवं संकलन और उनका प्रकाशन किया गया। जिसके आधार पर कई रचनायें हुई।

7.8 तेलुगु-साहित्य में चलचित्र गीत-लेखन

ग्यारहवीं शती में नन्नया के मार्गदेशी परम्परा के साथ तेलुगु को संस्कृत साहित्य के समान महत्व मिला। इसकेबाद तेलुगु साहित्य रचना ने विविध आयामों को प्राप्त किया। इनमें प्रमुख हैं- महाभारत-युग, पुराण-युग, सामगान -युग, गंधर्व-युग, आख्यान-युग, ध्रुवगान-युग, सभा साप्रदान-युग, हरिकथा युग, देश-भाषा, संकीर्तन-युग, यक्षगान-युग, धातु कल्पना, परिणाम युग आदि।

चलचित्र गीत का विकास - सन् 1931 में इंपीरियल कंपनी द्वारा एच0एम. रेड्डी के निर्देशन में पहली 'टाँकी चलचित्र 'भक्त प्रह्लाद' का निर्माण हुआ। डॉ. पैडिपाला सत्यनारायण रेड्डी के 'तेलुगु चलिचित्र गीत' को सर्वप्रथम चित्रगीत कृति मानी जाती है। तेलुगु चलचिखगीत की विकास यात्रा भक्ति से शुरू होकर सामाजिक समस्याओं तक विस्तार पाता है। तेलुगु का प्रथम सामाजिक चलचित्र गीत है- गूडवल्लि रामब्रह्म का 'मालपल्ली' (सन् 1938)। समुद्राला राधवाचारी की 'गृहलक्ष्मी', कोसराजु राघवय्या चौधरी का 'रैतुबिड्डा', पिंगलि नागेन्द्रराव का 'भल्लेपेल्लि' आदि सफल चलचित्र है।

सन् 1931-37 के चलचित्र रचना काल को 'अरूणोदय-'युग' कहा जाता है। इस काल में 'रामदासु', 'सावित्री' सीता कल्याणम' संपूर्ण रामायणम' आदि चलचित्रों में कीर्तन साहित्य का उपयोग किया गया था। सन् 1938-50 का काल 'भावोदय' काल पूर्णतः सामाजिक कुरीतियों को दूर करने वाले चलचित्रों से भरा हुआ है। देश -भक्ति के गीतों की चलचित्रों में उपयोग किया जाने लगा था। देश-भक्ति के गीतों को चलचित्रों में उपयोग किय जाने लगा था। श्री श्री का 'महाप्रस्थानम' गीत, 'कालचक्रम' चित्र गीत के नाम से प्रस्तुत हुआ। श्री री अपने 'पाडवोयी भारतीयुड़ा में 'प्रेमय जनन मरण लीला को प्रथम चलचित्र गीत मानते हैं। छठे दशक में चलचित्र गीत को काव्य-गौरव मिला। देवलु-पल्लि कृष्णशास्त्री के 'मल्लेश्वरी;' चित्रगीत जन-जन के जिह्वा और हृदय में बस गयी थी। 'निर्दोषी' (श्री श्री), 'बीदल पाट्लु' (आरूद्रा),

'आकाशरजु' (विश्वनाथ सत्यनारायण) 'पाताल भैरवी' (पिगलि) आदि गीत जनता के जिह्वा पर राग छेड़ते हैं।

सन् 1961-70 के गीत साहित्य 'रसोदय' के नाम से जाने जाते हैं। क्योंकि इस काल में चित्र गीत अत्यंत सरस और सुंदर रूप में लिखे गये। कोसराजु के लोक पदों ने जनता में खूब धूम मचाई। डॉ. सी0 नारायण रेड्डी ने दाशरची व गुलेबकावली के कथा' वाग्दान' पर चित्रगीत लिखा तथा श्री श्री का 'वेलुगु नीडगु' चलचित्र के लिए लिखे गीत खूब पसन्द किए गये। देबुलपल्लि द्वारा 'सुखदुःखातु' चलचित्र के लिए 'इदि वेन्नेल वेलयनी' गती भावुकता में रसिकों को सराबोर कर देता है। चित्रगीत का 'चंद्रोदय युग ' (सन् 1971-78) प्रेम मय गीतों के लिए जाना जात है। आरूद्रा का 'मुत्यमंता पसुपु मुखमंत छाया', 'दसराबुल्नोडु', 'प्रेमनगर' आदि चलचित्रों के लिए लिखा गया चित्रगती मानवीय आवेगों की सशक्त अभिव्यक्ति प्रतीत होती है। देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री द्वारा 'राजेश्वरी विलास काफी क्लब' हेतु 'ना दारि एड़ारि ना पेरू भिखारी। चित्रगीत लिखा गया। श्री श्री के 'अल्लूरि सीताराम राजु' चलचित्र गीत के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। ग्रामीण सौंदर्य को अपने चलचित्र में स्थान देने वाले मल्लेमाला का 'नायुडुबाबा गीत जनता ने खूब पसंद किया। जालाअि ने 'प्राण खीदु', 'पल्लेसीमा' गीत लिखे ,जो जनता में खूब लोकप्रिय हुए। राजश्री का 'बुल्लेम्मा बुल्लोहु', 'शिवरंजनी। चलचित्र के लिए लिखें गेय गीत तथा गोपाल कृष्ण द्वारा 'ओ सीता कथा' चलचित्र के लिये लिखे गीत, वेदूरि सुन्दर राममूर्ति के द्वारा ' सिरिसिरिमुव्वा' के गीत लिखे गये। इस काल में गीतों का दीवानापन इतना बढ़ गया कि साहित्यिकता ढूँढे से भी नहीं मिलती थी। ऐसे में बालसुब्रह्मण्यम के गीतापालपन से वैविध्य का प्रवेश हुआ जिससे यह काल चलचित्र युग का स्वर्णकाल बन गया।

डॉ. पेडिपाला ने सन् 1979-91 तक के चलचित्र काल को 'अस्तव्यस्त काल' कहा है। मादाला रंगाराव द्वारा क्रांतिकारी गीतों का दौर शुरू हुआ। (विप्लवशंखम,' नवोदयम, प्रजाशक्ति', एर्रमल्लेतु' नवोदयम, प्रजाशक्ति)। इन क्रांतिकारी भावों से भ्रष्टाचार तथा कुटिल राजनीति के विरूद्ध विद्रोह का स्वर फूका गया। सिखिन्नेला सीताराम शास्त्री, वेटूरि, साहिति, वेन्नेलकंटि, जोन्नविन्तुनला, भुवनचंन्द्र आदि ने सुर प्रधान गीत रचना की। चलचित्र गीत में परिवर्तन का दौर सन 1992 से सामाजिक प्रयोजन की ओर मुड़ गयां इस दौर के प्रमुख चल'- चित्र गीतकार है- रविकिरण, भास्कर भट्ला रविकुमार, चंट्रबोस, आदि इनके गीतों में सामाजिक, सांस्कृतिक राजनीतिक तथा आर्थिक अंशों से परिपूर्ण विषयों की प्रधानता रही। समकालीन समाज में व्याप्त असमानताओं की गीतकारों ने अपने गीतों में जीवन्ता के साथ स्थान दिया।

7.9 तेलुगु का अवधान साहित्य-

साहित्य के क्षेत्र में 'गृह कवियों' की संख्या हजार है तो 'सभा-कवि' सौ-पचास से अधिक नहीं मिलते। अवधान विधा तेलुगु तथा संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में

न के बराबर ही है। अवधान का अर्थ है- 'चित्त की विशेष एकाग्रता' अथवा 'चित्त को एक ही समय में अनेक अंशों पर केन्द्रित करना'। गृह कवि, घर में बैठकर सोच-समझकर ग्रंथ कोशादि की सहायता से जब साहित्य सर्जना करे तो वह सामान्य काव्य सर्जक होते हैं। किंतु किसी सभा में 'आशुरूप' में छंदोबद्ध काव्य बोलने वाले कवि जब प्रश्न कर्त्ताओं के नाम प्रश्न सहित बताये तथा कई दिनों बाद भी स्वयं के पद्य को अचानक पूछे जाने पर बताये तो वे 'अवधानी होते हैं।

आन्ध्र प्रदेश में 'अवधान'विधा 13 वीं , 14वीं शती से ही प्रचलित है। अद्यतन अवधानी तिरूपति'-वेंकट कवियों द्वारा इस विधा को चार चाँद लगाये गये हैं। अवधान में रंजन ही नहीं अपितु उद्बोधन की भी क्षमता है। 1285 ई. से तेलुगु अवधान के अस्तित्व का पता चला है । जक्कन तात पे दैय्या ने (सन् 1285 में) अपनी कृति 'विक्रमार्कचरित्र में स्वयं को 'अनेकावधानों में दक्ष कहा था। सन् 1350 ई. के प्रसिद्ध नाचन सोमना 'अष्टावधान' में सिद्धहस्त थे। 15 वीं शती के रामराजभूषण (भट्टमूर्ति') ने स्वयं को 'सकल भाषा विशेष निरूपमानावधान शारदामूर्ति' कहा था। गणपरपु वेंकट कवि (1620-1660) 20 प्रकार के 'अवधान कार्यों' में निपुण थे। अवधान विधा के चार पड़ाव है। आरंभ (सन् 1050 से 1850 तक), विकास (1850 से 1950 ई.) स्थिर युग (1950 से 1985तक) उत्थान युग (1985 से अब तक) आदि । अवधान मुख्यतः 21 प्रकार के साहित्यिक तथा चार प्रकार के साहित्येहर अवधान है। तथा पाँच धारणावधान, तेरह सांकेतिक संबंधी अवधान, चार वैज्ञानिक, पाँच कला संबंधी अवधान है, इन अवधानों को निम्नतः विश्लेषित किया जा सकता है-

क- साहित्यिक अवधान (21)

1. अष्टावधान
2. दशावधान
3. अष्टदशावधान
4. शतावधान?
5. सहस्त्रावधान
6. द्विसहस्त्रावधान
7. पंच सहस्त्रावधान
8. नवरस नवाधान
9. अलंकार अष्टावधान
10. साहित्य प्रक्रियावधान
11. वचन कविता प्रधान
12. घटिका शत ग्रंथ निर्माण
13. समय लेखिनी
14. शतलेखिनी पद्य संधान निर्माण
15. चतुर्विध कवित्व विद्यावधान
16. अष्टभाषा व्यस्ताक्षरावधान

17. हास्यावधान
18. नवघंटा लेखन
19. काव्यावधान
20. अक्षरावधान
21. धारणावधान आदि।

ख- साहित्येतर अवधान (04)-

1. धारण सम्बन्धी अवधान
2. सांकेतिक सम्बन्धी अवधान
3. शास्त्र सम्बन्धी अवधान
4. कला सम्बन्धी अवधान

ग- धारण संबन्धी अवधान (05)-

1. रामायणावधान
2. भगवद्गीतावधान
3. शतकसशावधान
4. सहस्त्रनामावधान
5. शब्दावधान

घ- सांकेतिक सम्बन्धी अवधान (13)-

1. नेत्रावधान
2. पुष्पावधान
3. शुष्कावधान
4. तृणावधान
5. गमनावधान
6. खड्गावधान
7. भूरकसावधान
8. भुजावधान
9. हस्तावधान
10. अंगुष्टावधान
11. घंटावधान
12. चक्रावधान
13. अक्षस्मुष्टिकावधान

ङ- वैज्ञानिक अवधान (04)-

1. गणितावधान
2. ज्योतिषावधान
3. वैज्ञाष्टावधान

4. अक्षरगणितावधान

च- कला सम्बन्धी अवधान (05)-

1. नाट्यावधान
2. संगीताष्टावधान
3. चित्रकलाष्टावधान
4. ध्वन्यनुकरणावधान
5. चतुरंगावधान आदि।

अवधान व्यक्ति विशेष की बौद्धिक प्रतिभा की होती है। प्राचीन अष्टावधानी निम्न आठ प्रक्रियाओं से गुजरते थे।

1. व्यस्ताक्षरी - पद्य के कुछ वर्णों के व्यस्त रूप में टुकड़े-टुकड़े करने के बाद उनको क्रम में रखकर अवपधानी को बताने के लिए कहा जाता है।
2. गणना- अवधानी की पीठ पर सुपारी रूक-रूक कर कई बार मारते हैं। और अंत में उनकी संख्या बताने को कहा जाता है।
3. आरोहण-अवरोहण- पद्य को अरोहण या अवरोहण में बताना पडता है।
4. लेखन-कुशलता – प्रश्नकर्त्ताओं की माँग के अनुसार पद्य को लिखना पड़ता था।
5. अग्र पद्य ग्रहणभिक्ति- किसी भी काव्य में को पद्य कहने पर तुरंत पूर्व पद्य को अवधानी बताता है।
6. अनवलोकित शारिकाभिलेखन रीति- कलम हिलने - डुलने की रीति देखकर पढ़ना या स्पर्श रेखाओं के अनुरूप अक्षर या पद को बताना पड़ता हैं।
7. समस्या- किसी समस्या से सम्बन्धित प्रश्न पूछने उत्तर देना पड़ता है।
8. समुदग्रनेक्षित चतुरंग बलकेलि- आंखे बंद करके एक से अधिक व्यक्तियों शतरंज खेलना पड़ता है।

वर्तमान समय में अवधानी को इन आठ अंशों से बढ़ना पड़ता है।

1. कविता निर्माण
2. व्यस्ताक्षरी
3. निषेधाक्षरी
4. समस्यपूर्ति
5. चतुरंग विनोद
6. ताश
7. वार्तालाप
8. पुष्प गणन।

वर्तमान तेलुगु अवधान में 50 के लगभग अंश शामिल है। अवधानी को कई बार फिल्मों के शबद अथवा अंग्रेजी के शब्द देकर उनसे पद्य रचना करवाया जाता है। अवधानी को शास्त्रार्थ करने हेतु विविध विषयों पर पूर्ण अधिकार रचना पड़ता है। इस प्रकार अवधान में साहित्येक एवं

साहित्येकर अंश पूर्णतः विद्यामान रहते हैं। श्री सी.वी0 सुब्बन्ना प्रसिद्ध अष्टावधानी तथा शतावधानी थे। सहस्त्रावधानी को हजारों प्रश्नकर्त्ता के हजार प्रश्नों का हजार पद्य निर्माण पकरना पड़ता है। श्रीमती एम0 के प्रभावती एवं कुलशेखराचार्य प्रसिद्ध अष्टावधानी तथा शतावधानी थे। सहस्त्रावधानी को हजानों प्रश्नकर्त्ता के हजार प्रश्नों का हजार पद्य निर्माण करना पड़ता है। श्रीमती एम. के प्रभावती एवं कुलशेखराचार्य प्रसिद्ध अष्टावपधानी है। नाग फणि शर्मा, गरिकपाटि नरसिंहराव, मेडसानि मोहन आदि सहस्त्रावधानी के रूप में प्रसिद्ध हैं इस प्रकार तेलुगु साहित्य अपनी इस मौलिक विधा पर आत्ममुग्ध हों सकता है। क्योंकि अन्य भाषाओं में यह परंपरा न के बराबर है।

7.10 सारांश

एम0एच0एल0 204 की सातवीं इकाई तेलुगु गद्य साहित्य पर केन्द्रित है। इस इकाई का आपनें अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- तेलुगु कहानी भारतीय साहित्य की समृद्ध कहानी परम्परा को अपने में समेटे हुये है। भाव पक्ष हो या विचार पक्ष सभी दृष्टियों से तेलुगु कहानी समृद्ध है।
- तेलुगु उपन्यास के विविध पक्ष है। आरम्भ युग, विकास युग, मनोवैज्ञानिक युग से होते हुये यह समकालीन युग तक की यात्रा कर चुका है। कुल मिलाकर तेलुगु उपन्यास की परम्परा अत्यन्त समृद्ध है।
- तेलुगु नाटक एवं एकांकी साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध है। अपनी सामाजिक चेतना और रंगमंचीय विधान के कारण तेलुगु नाटक पर्याप्त समृद्ध है।
- तेलुगु साहित्य के विकास में पत्र पत्रिकाओं का विशिष्ट योगदान रहा है। इस दृष्टि से तेलुगु की पत्र पत्रिकायें अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

7.11 शब्दावली

- अग्रगण्य - सबसे आगे रहने वाला
- अनिर्वचनीय - जिसकी व्याख्या न की जा सके
- शोश ण – अत्याचार
- विद्रोह – रूढियों से मुक्ति का प्रयास
- क्षेत्रीयता – अपने क्षेत्र के प्रति विशेष राग
- वैश्वीकरण – चिन्तन की दृष्टि का वैश्विक सन्दर्भ

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

तेलुगु साहित्य का इतिहास – प्रो. रंजनम, के लक्ष्मी

सहस्र वर्षों का तेलुगु साहित्य - सम्पादक – आचार्य लक्ष्मीप्रसाद, यार्लगड्डा

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तेलुगु कहानी की विकास परम्परा को रेखांकित कीजिये।
2. तेलुगु नाटक साहित्य की विशेष ताओं का परिचय दीजिये।
3. तेलुगु की प्रमुख पत्र पत्रिकाओं का विवरण दीजिये।

इकाई 8 कुमाउनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप
8.3.1 कुमाउनी लोकगीत : स्वरूप विवेचन
8.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण
8.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
8.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ
8.4.2.कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व
8.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.10 सहायक ग्रंथ सूची
8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप ने कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास स्वरूप का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई कुमाउनी लोकसाहित्य की अनूठी विधा लोकगीत पर आधारित है। लोकसाहित्य का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए लोकगीतों को समझना आसान होगा, क्योंकि लोकसाहित्य की एक विधा लोकगीत भी है। लोकगीत आरंभिक काल से लोक की गहन अनुभूति को प्रकट करते रहै हैं। लोकमानस की जमीन से जुड़ी यथार्थता स्वतः लोकगीतों में प्रस्फुटित हुई है। इस इकाई में हम लोकगीतों के दीर्घकालीन इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तथा इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए इसके महत्त्वपूर्ण पक्षों को समझ सकेंगे। कुमाउनी लोकगीतों के महत्त्व को समझकर उनकी सामाजिक प्रासंगिकता का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे। कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से अलग अलग प्रकार के लोकगीतों का परिचय प्राप्त हो सकेगा। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से हम विविध कुमाउनी लोकगीतों में निहित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति विधान सहित स्वरूप को भलि भाँति जान सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का प्रादुर्भाव एवं इतिहास को समझ सकेंगे।
- आप बता पायेंगे कि कुमाउनी लोकगीत आरंभ से लोगो की जुबान पर किस प्रकार अवस्थित रहै हैं।
- कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से आपको कुमाउनी साहित्य का समग्र बोध हो सकेगा।
- कुमाउनी रचनाकारों के अनुभूत ज्ञान का आपको ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- आप जान सकेगे कि किस तरह लोकगीत हमारे लोकजीवन की अपूर्व वस्तु है।
- कुमाउनी लोकगीतों की गेयता से आप एक गूढ़ अस्तित्व का भान कर सकेंगे।
- इन लोकगीतों के सामाजिक पक्ष से उद्घाटित होने वाली समरस सरल दृष्टि का अनुशीलन कर पाएँगे।

8.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप

कुमाऊँ में लोकगीत प्रारंभ से प्रचलित रहै हैं। कुछ लोकगीत युगो से चली आ रही परंपरा को प्रदर्शित करते हैं तथा कालान्तर में परिनिष्ठित साहित्य के विकास के साथ ही लोकगीतों का अभिनव निर्माण किया जाने लगा। लिखित साहित्य के इतिहास में कुमाउनी लोकगीतों के रचयिता ज्ञात हैं। प्रारंभ से चले आ रहै लोकगीत लोकमानस का स्वच्छंद प्रवाह हैं

प्रायः इनके निर्माता अज्ञात रहते हैं। आपने जिस इकाई का पूर्व में अध्ययन किया है उसमें कुमाउनी साहित्य के उद्भव एवं विकास के अन्तर्गत ज्ञात रचनाकारों की रचनाओं का परिचय दिया गया है। यही लोकगीतों का इतिहास भी है। उन्हीं विकास के चरणों में लोकगीतों की ऐतिहासिक दृष्टि हमें प्राप्त होती है। कुमाऊँ में लोकगीतों का प्रचलन तो आरंभिक काल से रहा है। लिखित साहित्य के रूप में उपलब्ध लोकगीतों को हम ऐतिहासिक रूप से स्वीकार करेंगे, डॉ त्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लिखित साहित्य को निम्नलिखित कालक्रमानुसार विभाजित किया है-

(1) 19वीं सदी का साहित्य

(2) 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का साहित्य

(3) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का साहित्य

हम उपर्युक्त काल विभाजन को लोकगीतों के क्रम में मान सकते हैं क्योंकि उपर्युक्त काल विभाजन में अस्सी फीसदी लोकगीतों वाली सामग्री हमें प्राप्त होती है। गुमानी कवि को सबसे प्राचीनतम कवि माना जाता है। इनका पुराना नाम लोकरत्न पंत था, इन्होनें लगभग 18 ग्रंथ लिखे जिनमें 'रामनाम पंच पंचाशिका ,गंगाशतक, कृष्णाष्टक, नीतिशतक प्रमुख हैं, इनका काल सन् 1790 से 1846 ई.तक माना जाता है। बैर और भगनौल विधा के कुशल प्रणेता कृष्णा पाण्डे (सन् 1800-1850) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था, व्यवस्था की बदहाली का वर्णन उनकी कविताओं का मुख्य विषय था। इनकी प्रमुख काव्य रचना 'कृष्णा पाण्डे को कलियुग' है।

नयनसुख पाण्डे अल्मोड़ा के पिलखा नामक ग्राम में जन्मे थे। पहाड़ी स्त्री की मनोदशा पर इन्होंने कई कविताएं लिखी। 19वीं शताब्दी के अवसान काल में गौरीदत्त पाण्डे का प्रादुर्भाव हुआ। इनका जन्म भी अल्मोड़ा के बल्दीगाड नामक स्थान में हुआ था। इनकी रचना गीदड़ सियार के गीत से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में ज्वालादत्त जोशी, लीलाधर जोशी, चिन्तामणि जोशी का नाम उल्लेखनीय है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियों ने पद्य रचनाओं के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। शिवदत्त सती इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका जन्म 1870 ई. में फल्दाकोट रानीखेत में हुआ था। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं- बुद्धिप्रवेश, मित्र विनोद, गोपीगीत, नेपाली भाषा के गीत, गोरखाली गीत, भाबर के गीत। गौरीदत्त पाण्डे गौर्दा (सन् 1872-1939) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में गांधी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। इनकी रचना गौरी गुटका नाम से प्रसिद्ध है। शिरोमणि पाठक (सन् 1890-1955) का जन्म स्थान शीतलाखेत है। इनके द्वारा झौड़े ,चांचरी तथा भगनौल लिखे गए। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में श्यामाचरण दत्त पंत, रामदत्त पंत, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी ,जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती देवी पंत, पार्वती उप्रेती, दुर्गादत्त पाण्डे, दीनानाथ पंत, तथा लक्ष्मी देवी के नाम प्रमुख है।

स्वतंत्रता के बाद अर्थात 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ी चीजें कुमाउनी लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होने लगी। भाषा भी अपने परिष्कार तथा

परिमार्जन की तरफ अग्रसर हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद लिखी गई कुमाउनी कविताओं में वैयक्तिक चेतना के अतिरिक्त सामाजिक सुधार के स्वर अधिक मुखरित हुए। इस काल के प्रमुख कवियों में चारूचन्द्र पाण्डे प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 1923 ई. को हुआ। ब्रजेन्द्र लाल साह का नाम भी 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के कवियों में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की मधुरतम छवि दिखाई देती है। कुमाउनी रामलीला को गेयपूर्ण ढंग से इन्होनें लिखा। इस काल को अद्यतन तक माना जाता है। शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़ इस समय के प्रख्यात रचनाधर्मी रहै। इनकी काव्य प्रतिभा लोगों के मन में नए उत्साहपूर्ण स्वर जाग्रत करती है। शेरदा अनपढ़ की प्रमुख रचनाएं , मोरि लटि पटि, जांठिक घुडुर, हसणै बहार हैं। बंधीधर पाठक जिज्ञासु का जन्म सन् 1934 को हुआ। ये एक कुशल आकाशवाणी के कलाकार थे। इनकी कुमाउनी रचना 'सिसौंण' युगीन परिस्थितियों का जीता जागता उदाहरण है। इसके अतिरिक्त देवकी महरा,गोपाल दत्त भट्ट ,किसन सिंह बिष्ट, कत्यूरी, रतन सिंह किरमोलिया, देव सिंह पोखरिया, शेर सिंह बिष्ट, दिवा भट्ट, बालम सिंह, जनोटी, त्रिभुवन गिरी, बहादुर बोरा, श्रीबंधु, दीपक कार्की एम0डी0अण्डोला, दामोदर जोशी, देवांशु, विपिन जोशी ,श्याम सिंह कुटौला, देवकीनंदन काण्डपाल ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में परिनिष्ठित कुमाउनी लोकगीतों का प्रणयन किया।

8.3.1 कुमाउनी लोकगीतः स्वरूप विवेचन

लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता हैं। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है। लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं। लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित

लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता हैं। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है।

लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है। डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते है कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं।

8.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकगीतों के सम्यक अध्ययन के लिए हम उनका वर्गीकरण करेंगे। पूर्व मे लोक साहित्यकारों द्वारा किए गए वर्गीकरण को आधार मानकर उनका विषयवस्तुगत भाषायी, प्रकृति, तथा जातिगत आदि आधारों पर वर्गीकरण किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। डा. पोखरिया ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है- 'वर्ण्य विषय, भाषा क्षेत्र और काव्य रूप आदि की दृष्टि से लोकगीतों के निम्न आधार हो सकते हैं-

(1) विषयगत आधार (2) क्षेत्रीय आधार (3) भाषागत आधार (4) काव्य रूप गत आधार (5) जातिगत आधार (6) अवस्था भेद (7) लिंगगत आधार (8) उपयोगिता का आधार (9) प्रकृति भेद

कुमाउनी के आधिकारिक विद्वानों , विशेष ज्ञों तथा शोधकर्ताओं ने सामान्यतया विषयवस्तु सम्मत आधार को ही अपनाया है। वर्ण्य विषय को स्वीकारते हुए हम अन्य विद्धानों के वर्गीकरण को इस प्रकार समझ पाएंगे-

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे का वर्गीकरण

मुक्तक गीत

I. नृत्य प्रधान -झोड़ा चांचरी छपेली
II. अनुभूति प्रधान- भगनौल तथा न्यौली
III. तर्क सम्मत- बैर
IV. संवाद प्रधान तथा स्फुट

(2) संस्कार प्रधान

I. अनिवार्य
II. विशेष

(3) ऋतुगीत

(4) कृषिगीत

(5) देवीदेवता व्रत त्योहार के गीत

(6) बाल गीत

डा. कृष्णानंद जोशी ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) धार्मिक गीत

(2) संस्कार गीत

(3) ऋतु गीत

(4) कृषि संबंधी गीत

(5) मेलों के गीत

(6) परिसंवादात्मक गीत

(7) बाल गीत

लोकसाहित्य तथा कुमाउनी भाषा साहित्य के विद्धान भवानीदत्त उप्रेती ने विषयस्तुगत आधार को वर्गीकरण के लिए उपयुक्त माना है-

(1) संस्कार गीत

(2) स्तुति पूजा और उत्सव गीत

(3) ऋतु गीत

(4) जाति विषयक गीत

(5) व्यवसाय संबंधी गीत

(6) बाल गीत

(7) मुक्तक गीत

विभिन्न विद्वानों द्वारा किए वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी विद्वानों ने विषय को ही वर्गीकरण का आधार माना है। यहां हम वर्गीकरण के लिए विषयवस्तुगत आधार का चयन करेंगे तथा विभिन्न लोकगीतों की मौलिक प्रवृत्तियों से अवगत हो सकेंगे।

धार्मिक पुराण कालीन संदर्भित लोकगीत- पुराण काल की कथाओं एवं आख्यानों को आरंभिक दौर से लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता रहा है। कृष्णानंद जोशी ने धार्मिक गीतों के विषय में लिखा है- इन गीतों में सर्वप्रथम वे गीत आते हैं, जिनकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से संबंधित है। इसी प्रकार के एक गीत में वर्णित है वह क्षण जब सृष्टिकार ने महाशून्य में हंस का एक जोड़ा प्रकट किया और हंसिनी का अंडा गिरकर फूटने से एक खंड से आकाश बना और दूसरे से धरती।इसी प्रकार महाभारत काल के कौरव पाण्डवों की कथा के अंश लोकगीतों के माध्यम से प्रकट किए जाते रहै हैं। रामचरित मानस में उल्लिखित श्रीरामचन्द्र जी कथा का वर्णन भी इन गीतों के माध्यम से देखे जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ

बाटो लागी गया मुनि तपसिन
जै पिरथी राजा को रैछ एक पूत
तिनरा देश वैछ बार बिसी हलिया, बार बीसी बौसीया
रोपन का खेत भगवान कूल टुटी भसम पड़ी गेछ,

लोकमानस की महाभारत कालीन प्रस्तुति इन पंक्तियों में देखी जा सकती है-

पांडवन की लछण बिराली, कौरवन की पहाड़ी कुकुड़ी,
तेरी बिराली कुकुड़ी ब्यूज बैरछ बिराली कुकुड़ी मारी दीयो ।

इन गीतों में पौराणिक कथा सार की अभिव्यक्ति को हम सरलता से समझ सकते हैं।

संस्कार गीत- मनुष्य के जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। कुमाउनी संस्कार गीतों में जन्म छठी, नामकरण उपनयन विवाह आदि के गीत सम्मिलित हैं, ये गीत प्रायः महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। संस्कारों में होने वाली पूजा अनुष्ठान के अनुसार इन गीतों को गाया जाता है। यहां हम कुछ कुमाउनी संस्कार गीतों को संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे। कुमाऊँ में प्रत्येक सुअवसर पर शकुनांखर सगुण (सगुन) के गीत गाने की परंपरा है।

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैये,थाति को थत्याल
ध्यायनु भयै , ध्यायनु भैय ,भुई को भूम्याल

बच्चे के जन्म के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

धन की धौताला, धन की धौ,
धन की धौताला धन की धौ,
यरबा सिर सिड़ जोड़ सिरसिड़
पाडव्वा बाबै जोड़ जोड. बावै

विवाह के समय फाग के गीतों की विशेष परंपरा देखी जा सकती है।

पैलिक सगुन पिडली पिठाक
उति है सगुन दई दई माछ।
पिड.ली पिठाक कुटल है
खनल पनीया ध्वेज उखल कुटल

ऋतु गीत- विभिन्न ऋतुओं के आगमन पर कुमाऊं में लोकगीत प्रचलित हैं, बसंत ऋतु के आगमन पर लोगों का तनमन सुवासित हो जाता है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन पर भी मन में उठने वाली तरंगे नया आभास जगाती है। ऋतु गीतों में विरह वेदना प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन समविष्ट रहता है। आप ऋतुराज बंसत के यौवन को इस गीत में देख सकते हैं।

रितु ऐ गे हैरी फेरी ओ गरमा रितु,
मारीया मानीख पलटी नी ऊंनो।

इन गीतों में अपने प्रियजनों की स्मृति, निराशा तथा भावुकता देखी जा सकती है।

कृषि विषयक गीत- कुमाऊँ में कृषि विषयक गीतों को हुड़की बौल के नाम से जाना जाता है। प्राचीन विचाराधारा के अनुसार कृषि कार्यो में तत्परता तथा एकाग्रता के लिए मनोरंजक गीत सुनाए जाने का प्रचलन है। हुड़की बौल में एक व्यक्ति हुड़के की थाप पर गाता हुआ आगे बढ़ता रहता है तथा कृषि कार्य निराई गुड़ाई या रोपाई करने वाले लोग कार्य करते हुए बड़ी लगन से बौल लगाने वाले के स्वर को दुहराते हैं, इसमें कार्य भी जल्दी सम्पन्न हो जाता है तथा मनोरंजन के द्वारा लोगों को थकान का अनुभव नहीं होता है। हुड़कि बैल में ऐतिहासिक लघु गाथाएं गायी जाती हैं।

लोकोत्सव एवं पर्व संबंधी गीतः- लोक के विविध उत्सवों, पर्वो पर जो गीत गाए जाते हैं, उनमें लोक मनोविज्ञान तथा लोकविश्वास के लक्षण पाए जाते हैं। स्थानीय पर्वों फूलदेई तथा घुघुतिया को प्रथागत आदर्शो के साथ मनाया जाता है। फूल संक्रान्ति के अवसर पर बच्चे गांव के प्रत्येक घर के दरवाजे पर सरसों तथा फूलदेई के फूल अर्पित करते हुए कहते हैं-

फूल देई छममा देई
भरभकार दैणी द्वारा
जतुकै दिछा उतुकै सई
फूल देई छम्मा देई

घुघुतिया (मकर संक्रान्ति) को बच्चे आटे के बने घुघुतों की माला गले में डालकर प्रातः कौवे को बुलाते हैं-

'काले कौवा काले काले काले
घुघुती मावा खाले खाले खाले
तु ल्हि जा बड़ म्यकै दिजा सुनु घड़
काले कौवा काले काले काले

कुमाऊँ में हरेला पर्व हरियाली का प्रतीत है। हरेले के त्यौहार में हरेला आशीश के रूप में सिर पर रखा जाता है। इस अवसर पर आशीर्वचन देते हुए कहते हैं-

हर्याली रे हर्याली हरिया बण जाली
दुबड़ी कैंछ दुबै चड़ि जूलो
चेली कैंछ मैं मैतुलि जूंलो, आओ चेलि खिलकन मैत
तुमारे बाबू घर, तुमारे भइयन घर हरयाली को त्यार
विभिन्न प्रकार के पर्वोत्सवों पर गाए जाने वाले इन गीतों में उद्बोधन तथा आशीर्वाद के भावों को देखा जा सकता है।

मेलों के गीतः- मेला शब्द की उत्पत्ति मेल से हुई है। कुमाऊँ में विभिन्न प्रकार के मेले आयोजित होते आए हैं। इन मेलों में लोग पारस्परिक मेल मिलाप करते हैं। प्राचीन काल से ज्ञानी लोग मेले में अपनी कवित्व शक्ति का प्रदर्शन करते आए हैं। इनमें सामूहिक नृत्यगीत भी शामिल हैं। यहां पर हम देखेंगे कि मेलों के माध्यम से सामूहिक गायन पद्धति से लोग मनोरंजन करते हैं। इन गीतों में झोड़ा, चांचरी, छपेली, भगनौल और बैर का प्रचलन है। हुड़के की थाप पर लोग एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध होकर थिरकते दिखाई देते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति के साथ-साथ प्राचीन वैदिक कालीन संदर्भ कथाओं का गायन भी किया जाता है। झोड़ा और चाँचरी में गोल घेरे में कदम से कदम मिलाकर नृत्य किया जाता है। इसमें लयबद्ध तरीके से गायन पद्धति अपनाई जाती है।

चौकोटै कि पारवती स्कूल नि जानि बली इस्कूला नि जानी ,
मासी का परताप लौंडा स्कूल नि जानि बली इस्कूलनि जाना।

छपेली नृत्य में द्रुत गायन शैली अपनाई जाती है। ओहो करके गीत शुरू किया जाता है। भगनौल में पद्यात्मक उक्तियों को आरोह अवरोह के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इन उक्तियों को गेयपदों में जोड़ने वाली गीत शैली जोड़ के रूप में जानी जाती है। बैर में युद्धों का वर्णन किया जाता है। इसमें तार्किक कथनों के द्वारा एक दूसरे को निरुत्तर करने की प्रतियोगिता होती है।

परिसंवादात्मक गीत- संवाद शैली से युक्त गायन पद्धति को परिसंवादात्मक गीतों की श्रेणी में रखा जाता है। इन गीतों में संवादों के माध्यम से विभिन्न पात्रों के कौशल को जाना जा सकता है। डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार- 'हरियाला का त्यौहार आने पर एक माँ अपनी बिटिया को मायके बुलाने का अनुरोध करती है- कन्या के पिता के जाते समय के अपशकुन माँ के हृदय को दुखित कर देते हैं। बेटी के ससुराल जाकर पिता को बताया जाता है कि 'रघी' घास लकड़ी लाने जंगल गई हुई है, पानी भरने गई हुई है आदि। रघी के पिता बेटी की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। उस रघी को, जो अब कभी नहीं लौटेगी, गीत के दूसरे भाग में वह दृश्य 'फ्लैश बैक' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें रघी की ननद अपनी माँ से अनुरोध करती है कि पोटली में रखे च्यूले उसने खाए हैं। रघी ने नहीं, रघी को मत पीटो। ओ क्रूर माँ! तुमने रघी को मारकर उसका शव तक गोठ में छिपा दिया।

खाजा कुटुरी मैले लुकैछ ईजू पापिणी बोजि नै मार,
पाना मारीछ गोठ लुकैछ, ईजू पापिणी बोजि नै मार।
साग काटछ राम करेली, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

इन गीतों में लोक जीवन की मर्मान्तक पीड़ा का भाव देखा जा सकता हैं। हमें पता चलता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के तौर तरीकों में कितनी असभ्यता थी। कुछ ऐतिहासिक लोक कथाओं के आख्यान भी हम इन संवाद प्रधान गीतों के माध्यम से जान सकेंगे।

बाल गीत - व्यक्ति के जीवन की शुरूआत बचपन से होती है। बालपन में शिशु का मन निश्छल होता है। वह खेलना पंसद करता है। जीवन के गंभीर उतार चढ़ावों से अनभिज्ञ शिशु अपनी किलकारियों में ही खेल का अनुभव करता हैं। बच्चों द्वारा आपस में खेले जाने वाले खेलों में ही गीत विकसित होते हैं। इन गीतों का निर्माण स्वत: स्फूर्त माना जाता है। यथा -

डक्की डक्की मुक्का पड़ौ
ओ पाने ज्यू भ्यो पड़ो
सात समुन्दर गोपी चन्दर
बोल मेरी मछली कितना पानी
(दूसरी कहती है) इतना पानी

बच्चे गीतों के साथ साथ अपने भावों को हाथ हिलाकर भी प्रकट करते हैं। कहना उचित होगा कि बालगीत बच्चों के सुकोमल मनोविज्ञान की स्वच्छंद सरल अभिव्यक्ति है। जिनमें किसी गंभीर विषय बोध की सदा अनुपस्थिति रहती है।

बोध प्रश्न

क - सही विकल्प को चुनिए -

1. 'फूल देई छम्मा देई' लोकगीत की किस कोटि में आता है?
   I. बालगीत
   II. नृत्यगीत
   III. पर्व संबंधी गीत
   IV. भगनौल
2. 'गौरी गुटका' नामक रचना है -
   I. गुमानी पंत
   II. रामदत्त पंत
   III. गौरीदत्त पाण्डे
   IV. शेरसिहं विष्ट
3. ऋतुओं का वर्णन किस गीत में मिलता है ?
   I. संस्कार गीत
   II. ऋतु गीत
   III. कृषि संबंधी गीत
   IV. पर्व उत्सव संबंधी गीत

ख - 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के लोकगीतों का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

ग - लोकगीत क्या हैं ? विषयगत आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण कीजिए।

घ - 'झोड़ा' और 'भगनौल' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

8.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

हम सब जानते हैं कि लोकगीत लोकमानस की वह तंरगायित अभिव्यक्ति है, जो नियति और मानवीय सत्ता के विविध रूपों को समाहित किए रहती है। मानव ने भौतिक विकास के सापेक्ष मानसिक विकास के द्वारा समाज में अपने अस्तित्व को मुखर किया हैं। लोकगीत लोकमानस के संवेदना के मौलिक तत्व हैं। अनुभूति तथा ज्ञान की लयबद्ध अभिव्यक्ति प्रायः लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

भावपक्ष की दृष्टि से हम देखते हैं कि गीतों का निर्माण ही भाव भूमि पर हुआ है। ये वही भाव हैं, जो प्रकृति के नाना रूपों में, व्यथा, वेदना, हर्ष ,विषाद आदि के रूपों में शब्दों में स्वत: उतर आते हैं। इनकी यही लयात्मक प्रवृत्ति इनकों रोचक बनाए हुए है। लोकगीतों में व्यष्टि और समष्टि का अपूर्व मिश्रण होता है, जो समाज के चेतनामूलक फलक को प्रभावित कर उसे सरस बना देता है। अत: हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की सुख दुखात्मक स्थितियों में अन्तर्मन से जो वाणी फूट पड़ती है तथा लोक के लिए एक रूचिकर शैली बन जाती है, वही लोकगीत कहलाता है।

8.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ

कुमाउनी लोकगीत कुमाऊँ के जनमानस की व्यापक संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं। वाचिक तौर पर वर्षों से जीवित इन गीतों में अपनी माटी की सुगंध निहित हैं। ये गीत मानव को मानव से जोड़ने में यकीन रखते हैं। कहीं कहीं आप पाएँगे कि इन गीतों में पौराणिक चरित्रों का चित्रण भी हुआ है। वैदिक कालीन समाज व्यवस्था तथा प्रमुख पात्र एवं घटनाओं से संबंधित आख्यान इन लोकगीतों के आधार बनें हैं। सत्य की अनुभूति लोकगीतों के माध्यम से स्पष्ट झलकती है।
इन गीतों में पहाड़ के पशुपक्षियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन देखने को मिलता है। 'न्योली' नामक लोकगीत एक विरही पक्षी पर आधारित है। न्योली एक पहाड़ी प्रजाति की कोयल को कहा जाता है। इसे विरह का प्रतीक माना जाता है। ऐसी धारणा है कि न्यौली अपने पति के वियोग में दिन रात मर्मान्तक स्वरों से जंगल को गुंजायमान बनाती फिरती है। लोकमानस ने उस पक्षी को अपने संवेदना के धरातल पर उकेरा है।सामान्य अर्थों में न्यौली का अर्थ 'नवेली' 'नई' से लिया जाता है।

कुमाउनी लोकगीत विभिन्न धार्मिक संस्कारों के संवाहक हैं। गर्भाधान,नामकरण,अन्नप्राशन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों में गाए जाने वाले लोकगीत युगों से चली आ रही वाचिक परंपरा के सत्यानुभूत कथन हैं। लोकगीतों की विशेष ता उनके लयात्मक गायन शैली में निहित है। प्रेम, करूणा विरह आदि की अवस्थाओं पर कई लोकगीत समाज में प्रचलित हैं।

डॉ. त्रिलाचन पाण्डे ने कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ता को बताते हुए कहा है - 'कुमाऊँ में जमीदार प्रथा तो नहीं है, फिर भी कुछ लोगों के पास बहुत जमीन हो गई है। दूसरे लोग बटाई

पर काम करते हैं। जमीन भी 'तलाऊँ ', मलाऊँ, आबाद,बंजर कई प्रकार की है। नदियों की घाटियों वाली भूमि अधिक उत्पादक होती है, जिसे 'स्यारा' कहते हैं। दलदली भूमि 'सिमार' कहलाती है। इसकी उत्पादक क्षमता को ध्यान में रखकर जो लगान वर्षों पूर्व अंग्रेजों द्वारा निर्धारित किया गया या उसमें समय पर परिवर्तन होते गए। अब कुछ वर्ष पूर्व भूमि नाप संबंधी नई योजना प्रारंभ हुई तो कुछ लोग अपनी जमीन बढ़ा चढ़ाकर लिखाने लगे। कुछ पीछे रह गए। गीतकारों ने इस स्थिति की सटीक व्याख्या की है।'

इस प्रकार आप देखेंगे कि कुमाउनी लोक गीत स्वंय में अनेक विशेष ताओं को समेटे हैं। लौकिक ज्ञान की धरातल से जुड़ी प्रस्तुतियाँ इन गीतों के माध्यम से होती है। इन गीतों में कल्पना भी चरम सीमा पर होती है। इन गीतों में अपने समय की सजीवता है। मानव व्यवहार के तौर तरीकों तथा समाज मनोविज्ञान के कई तथ्य इन गीतों द्वारा अभिव्यक्त होते आए हैं। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन इन गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। लोक सत्य के उद्घाटन में ये गीत अग्रणी हैं। प्राचीन काल की रोचक एवं ज्ञानवर्धक ज्ञान की समाविष्टि इन गीतों का स्वभाव है।

अत: कहा जा सकता है कि कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ता यहाँ के जनमानस की सांगीतिक प्रस्तुति है। ये विषय वैविध्य का लक्षण प्रदर्शित करते हैं। वर्गीकरण के आधार पर अलग अलग विषयों के लोकगीतों में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ हैं, जिनके द्वारा समाज को मानसिक जगत में बहुत लाभ प्राप्त हुआ है।

8.4.2 कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व

कुमाउनी लोकगीतों द्वारा मनुष्य के भावों को प्रकट करने की तरल क्षमता प्रकट होती है । ये लोकगीत समाज का उचित मनोरंजन करते हैं। साथ ही इनमें अपने समय को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता होती है। प्रोफेसर देवसिहं पोखरिया ने 'कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम' पुस्तक में संतराम अनिल के विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है – 'लोकगीत साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक एक रेखा , सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक विजय पराजय , प्रकृति की गति, विधि, वृक्ष ,पशु, पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध बलि,पूजा, टोने टुटके , आशा,निराशा,मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है।'

लोकगीतों के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

(1) लोकगीतों में युगीन परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।

(2) ये गीत मानवी संवेदना के हर्ष - विषाद, सुख दुःख तथा काल्पनिकता को अभिवृद्ध करते हैं।

(3) लोकगीतों में सामाजिक परिवेश को सरस बनाने की कला होती है।

(4) लोकगीतों में गीति तत्व तथा लय होने से ये वाचिक परंपरा के मनोहारी आख्यान कहै जाते हैं।

(5) लोकगीत मानव समाज को आदिम परंपरा से सभ्य समाज की तरफ अग्रसर करते हैं।

(6) लोकगीतों में मौलिकता होती है, जो व्यक्ति के जीवन के यथार्थ स्वरूप को सामने लाती है।

(7) कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों में प्रत्येक युगानुसार उनकी विकासवादी धारणा को समझा जा सकता है।

(8) ये कार्य संपादन के तरीकों में प्रयुक्त होकर कार्य का निष्पादन त्वरित गति से करते हैं।

स्पष्टत: लोकगीतों में समाज के विभिन्न जातियों , धर्मो,अनुष्ठानों तथा उनके तौर तरीकों पर प्रकाश पड़ता है। हम लोकगीतों के माध्यम से समाज की तत्कालीन स्थिति को सरलता से जान सकते हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क - नीचे दिए गए प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. लोकगीत की वह पद्धति जिसमें स्त्री पुरूश एक दूसरे के कंधे में हाथ डालकर गोलाकार भाग में कदम मिलाकर चलते है कहलाती है -

I. बैर
II. जागर
III. झोड़ा
IV. जोड़

2 - संवादक मूलक लोकगीत है -

I. झोड़ा
II. छपेली
III. चाँचरी
IV. बैर

3. संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत हैं -

I. छपेली
II. भगनौल
III. फाग
IV. होली के गीत

(4) लोकगीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए

(5) कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण का सबसे सरल और व्यावहारिक आधार कौन सा है ? लोकगीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

8.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

कुमाउनी लोकगीत प्राचीन काल से वर्तमान काल तक लोकजीवन में निर्बाध रूप से प्रचलित रहै हैं।आरंभिक काल से चली आ रही लोकगीतों की परंपरा में यहाँ कें जनमानस की

प्रकृतिपरक , मानवीय संवेदना, विरह एवं मनोरंजन का पुट स्पष्ट झलकता है। पर्वतीय जीवन शैली को आप इन सुरधाराओं में आसानी से पा सकते हैं। पशु पक्षियों का आलंबन लेकर उसे मानवीय सत्ता से जोड़कर लोकगीतों को मर्मस्पर्शी बनाया गया है। कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में समय के साथ आए बदलाव को भी परखा जा सकता है। लोकवाणी की तर्ज पर जिन प्राचीन गीतों में प्रकृति सम्मत आख्यान मिलते हैं, वहीं आधुनिक लोकगीतों में नए जमाने की वस्तुओं ,फैशन का उल्लेख मिलता है। नए लोकगीत व्यावसायिक दृष्टिकोण से बनाए तथा गाए जाते हैं। इन गीतों का ध्वनिमुद्रण उच्च इलेक्ट्रॉनिक तकनीक पर आधारित होता है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि कुमाऊँवासी पहाड़ को छोड़कर मैदानी इलाकों को पलायन कर रहै हैं। मैदानी शहरी जिन्दगी में उन्हें ये लोकगीत पहाड़ी भाषा की मनोरंजक स्मृति मात्र का सुख देते हैं। फिर भी कुछ लोग मौलिक प्राचीन वाचिक परंपरा को अपनाने में ही विश्वास रखते हैं।कुमाउनी लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ. देवसिहं पोखरिया तथा डॉ. डी. डी. तिवारी ने अपनी संपादित पुस्तक 'कुमाउनी लोकसाहित्य' में न्योली ,जोड़, चाँचरी, झोड़ा, छपेली, बैर तथा फाग का विशद वर्णन किया है। यहाँ हम इन लोकगीतों को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

न्यौली - न्यौली एक कोयल प्रजाति की मादा पक्षी है । ऐसा माना जाता है कि यह न्यौली अपने पति के विरह में निविड़ जंगल में भटकती रहती है। शाब्दिक अर्थ के रूप में न्यौली का अर्थ नवेली या नये से लगाया जाता है। कुमाऊँ में नई बहू को नवेली कहा जाता है। सुदूर घने बांज, बुरांश के जंगलो में न्यौली की सुरलहरी को सहृदयों ने मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर उतारने का प्रयास गीतों के माध्यम से किया है।न्यौली की गायनपद्धति में प्रकृति, ऋतुएँ, नायिका के नख शिख भेद निहित हैं। छंदशास्त्र के दृष्टिकोण से न्यौली को चौदह वर्णों का मुक्तक छंद रचना माना जाता है।

न्यौली का उदाहरण -

चमचम चमक छी त्यार नाकै की फूली
धार में धेकालि भै छै, जनि दिशा खुली

(तेरे नाक की फूली चमचम चमकती है, तुम शिखर पर प्रकट क्या हुई ऐसा लगा कि जैसे दिशाएँ खुल गई हों)

जोड़ - जोड़ का अर्थ जोड़ने से है । गणित में दो और दो चार होता है। कुमाउनी लोकसाहित्य में जोड़ का अर्थ पदों को लयात्मक ढ़ग से व्यवस्थित करना है। संगीत या गायन शैली को देखते हुए उसे अर्थलय में ढाला जाता है। जोड़ और न्यौली लगभग एक जैसी विशेष ता को प्रकट करते हैं। द्रुत गति से गाए जाने वाले गीतों में हल्का विराम लेकर ' जोड़' गाया जाता हैं। जोड़ को लोकगायन की अनूठी विधा कहा जाता है।

उदाहरण -

दातुलै कि धार दातुलै की धार
बीच गंगा छोड़ि ग्यैयै नै वार नै पार

(अर्थात दराती की धार की तरह बीच गंगा में छोड़ गया, जहाँ न आर है न पार)

चाँचरी - चाँचरी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर्चरी' से मानी गई है। इसे नृत्य और ताल के संयोग से निर्मित गीत कहा जाता है। कुमाऊँ के कुछ भागों में इसे झोड़ा नाम से भी जाना जाता है। 'चाँचरी' प्रायः पर्व,उत्सवों और स्थानीय मेलों के अवसर पर गाई जाती है। यह लोकगीत गोल घेरा बनाकर गाया जाता है, जिसमें स्त्री पुरूश पैरों एवं संपूर्ण शरीर को एक विशेष लय क्रमानुसार हिलाते डुलाते नृत्य करते हैं। चाँचरी प्राचीन लोकविधा है। मौखिक परंपरा से समृद्ध हुई इस शैली को वर्तमान में भी उसी रूप में गाया जाता है। चाँचरी में विषय की गहनता का बोध न होकर स्वस्थ मनोरंजन का भाव होता है, जो लोगों को शा ीरिरक और मानसिक रूप से लाभ पहुँचाता है।

उदाहरण - काठ को कलिजों तेरो छम

(वाह! का कलेजा तेरा क्या कहने)

चाँचरी में अतं और आदि में 'छम' का अर्थ बलपूर्वक कहने की परंपरा है। छम का अर्थ घुघरूँ के बजने की आवाज को कहा जाता है। छम' कहने के साथ ही चाँचरी गायक पैर व कमर को झुकाकर एक हल्का बलपूर्वक विराम लेता है।

झोड़ा - जोड़ अर्थात जोड़ा का ही दूसरा व्यवहृत रूप है झोड़ा। कुमाउनी में 'झ' वर्ण की सरलता के कारण 'ज' वर्ण को 'झ' में उच्चरित करने की परंपरा है। झोड़ा या जोड़ गायक दलों द्वारा गाया जाता है। एक दूसरे का हाथ पकड़कर झूमते हुए यह गीत गाया जाता है। इसे सामूहिक नृत्य की संज्ञा दी गई है। किसी गाथा में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति या किसी गाथा में निहित पराक्रमी चरित्रों के चित्रण की वृत्ति निहित होती है।

उदाहरण -

ओ घटै बुजी बाना घटै बुजी बाना

पटि में पटवारि हुँछौ गौं में पधाना

आब जै के हुँ छै खणयूंणी बुड़ियै की ज्वाना

(नहर बांध कर घराट (पनचक्की) चलाई गई पट्टी में पटवारी होता है गांव में होता है प्रधान अब तू बूढ़ी हो गई है कैसे होगी जवान)

छपेली - छपेली का अर्थ होता है क्षिप्र गति या त्वरित अथवा द्रुत वाकशैली से उद्भूत गीत। यह एक नृत्य गीत के रूप में प्रचलित है। लोक के तर्कपूर्ण मनोविज्ञान की झलक इन गीतों में आप आसानी से पा सकते हैं। लोकोत्सवों, विवाह या अन्य मेलो आदि के अवसर पर लोक सांस्कृतिक प्रस्तुति के रूप में इन नृत्य गीतों को देखा जा सकता है। छपेली में एक मूल गायक होता है। शेश समूह के लोग उस गायक के गायन का अनुकरण करते है। स्त्री पुरूश दोनों मिलकर छपेली गाते हैं। मूल गायक प्रायः पुरूश होता है, जो हुड़का नामक लोकवाद्य के माध्यम से अभिनय करता हुआ गीत प्रस्तुत करता है।

छपेली में संयोग विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता होती है। प्रेम की सच्ची भावना को सुमधुर ढ़ग से गायकी में अभिव्यक्त किया जाता है।

उदाहरण - भाबरै कि लाई

भाबरै की लाई
कैले मेरि साई देखि
लाल साड़ि वाई

(भाबर की लाही भाबर की लाही किसी ने मेरी लाल साड़ी वाली साली देखी)

बैर - बैर शब्द का प्रयोग प्रायः दुश्मनी से लिया जाता है। लोकगायन की परंपरा में बैर का अर्थ 'द्वन्द्व' या 'संघर्ष' माना गया है। बैर तार्किक प्रश्नोत्तरों वाली वाक् युद्ध पूर्ण शैली है। इसमें अलग अलग पक्षों के बैर गायक गूढ़ रहस्यवादी प्रश्नों को दूसरे पक्ष से गीतों के माध्यम से पूछते हैं। दूसरा पक्ष भी अपने संचित ज्ञान का समुद्घाटन उत्तर के रूप में रखता है। बैर गायक किसी भी घटना , वस्तुस्थिति अथवा चरित्र पर आधारित सवालों को दूसरे बैरियों के समक्ष रखता है। अन्य बैर गायक अपनी त्वरित बुद्धि क्षमता से इन प्रश्नों का ताबड़तोड़ उत्तर देकर उसे निरूत्तर करने का प्रयास करते है। कभी कभार इन बैरियों में जबरदस्त की भिड़न्त देखने को मिलती है। हार जीत के लक्ष्य पर आधरित इस गीत का परस्पर संवादी क्रम बड़ा ही रोचक होता है। इनके प्रश्नों में ऐतिहासिक चरित्र एवं घटना तथा मानवीय प्रकृति के विविध रूप समाविष्ट रहते हैं।

फाग - कुमाउनी संस्कृति में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले मांगलिक गीतों को 'फाग' कहा जाता है। कही कही होली के मंगलाचरण तथा धूनी के आशीर्वाद लेते समय भी फाग गाने की परंपरा विद्यमान है। शुभ मंगल कार्यों यथा जन्म एवं विवाह के अवसर पर 'शकुनाखर ' और फाग गाने की अप्रतिम परंपरा है। 'फाग' गायन केवल स्त्रियों द्वारा ही होता है। होली के अवसर पर देवालयों में 'फाग' पुरूश गाते हैं। कुमाऊँ में संस्कार गीतों की दीर्घकालीन परंपरा को हम 'फाग' के रूप में समझते हैं। फाल्गुन मास के आधार पर ही 'फाग' का प्रादुर्भाव माना जाता है। मनुष्य के गर्भाधान,जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, चूड़ाकर्म
विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर यज्ञ अनुष्ठान के साथ इन गीतों का वाचन किया जाता है। गीत गाने वाली बुजुर्ग महिलाओं को 'गीदार' कहा जाता है।

उदाहरण - शकूना दे, शकूना दे सब सिद्धि
काज ए अति नीको शकूना बोल दईणा

(शकुन दो भगवान शकुन दो सब कार्य सिद्ध हो जाएँ सगुन आखर से सारे काज सुन्दर ढ़ग से सम्पन्न हो जाएँ)

बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1- 'न्यौली' का एक उदाहरण दीजिए।
2- फाग किस रूप में गाए जाते हैं ?
3- झोड़ा किस प्रकार गाया जाता है ?
4- चाँचरी से क्या तात्पर्य है ?

8.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप -

- ☐ कुमाउनी लोकगीतों का अर्थ स्वरूप तथा इतिहास समझ गए होंगे।
- ☐ आपने समझ लिया होगा कि विषयवस्तुगत आधार पर वर्गीकरण करने से आपके अध्ययन की रूपरेखा सरल और स्पष्ट हो गई है।
- ☐ कुमाउनी भाषा और बोलियों के लयात्मक स्वरूप को जान गए होंगे।
- ☐ कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों की विशेष ताएँ और महत्त्व को समझ चुके होंगे।
- ☐ प्रमुख कुमाउनी लोकगीतों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

8.7 शब्दावली

आशु	-	मौखिक
उद्गार	-	प्रकट होने वाले भाव
निश्छल	-	छल रहित
उपोदय	-	उपयोगी
स्फुट	-	अन्य, प्रकीर्ण
सन्निहित	-	समाया हुआ
गीदार	-	गीतकार
शकुनाखर	-	सगुन के आखर
न्यौली	-	नवेली, नई
अप्रतिम	-	अनूठी, अनोखी
फाग	-	संस्कार गीत
बैर	-	संघर्ष
छपेली	-	क्षिप्रगति वाली

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.3 के उत्तर

1- पर्व संबंधी गीत

2- गौरीदत्त पाण्डे

3 - ऋतु गीत

8.4 के उत्तर

क (1) झोड़ा

(2) बैर

(3) फाग

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, कृष्णानंद , कुमाउनी लोकसाहित्य , धार्मिक गीत ,112
2. पूर्वोक्त , संस्कार गीत (1)
3. पाण्डे त्रिलोचन ,कुमाऊँ का लोकसाहित्य , पृ -124,
4. पूर्वोक्त , पृ - 126
5. अचल, जुलाई 1938, श्रेणी - 1, श्रृंग - 6,
6. इंडियन एंटीक्वेरी ,जिल्द 14 (1885)
7. धर्मयुग , अक्टूबर 31, 1954 ,
8. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, खंड 9, भाग 4 ,पृ -167.
9. कुमाउनी लोकसाहित्य , देवसिहं पोखरिया , डी.डी. तिवारी , पृ 2- 12
10. पाण्डे, त्रिलोचन ,कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, उत्तर प्रदेश ,हिन्दी संस्थान, पृ - 190- 211
11. बटरोही , कुमाउनी संस्कृति, पृ - 13-25
12. पोखरिया, देवसिंह , कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम, पृ- 13- 15

8.10 उपयोगी / सहायक ग्रंथ सूची

1- न्यौली सतसई , डॉ.देवसिहं पोखरिया, अल्मोड़ा बुक डिपो

2- कुमाउनी कवि गौर्दा का काव्य दर्शन, सं. चारूचन्द्र पाण्डे

3- कुमाउनी भाषा , डॉ. केशव दत्त रूवाली

4- कुमाउनी हिन्दी शब्द कोश, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल

5- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे

6- कुमाउनी भाषा का अध्ययन, डॉ. भवानी दत्त उप्रेती

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ बताते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. कुमाउनी लोकगीतों के विषयगत आधार पर विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
3. लोकगीत क्या हैं ? कुमाउनी लोकगीतों की विविध विधाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 9 कुमाउनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप
9.3.1 कुमाउनी लोकगीत : स्वरूप विवेचन
9.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण
9.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
9.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ
9.4.2.कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व
9.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.10 सहायक ग्रंथ सूची
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप ने कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास स्वरूप का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई कुमाउनी लोकसाहित्य की अनूठी विधा लोकगीत पर आधारित है। लोकसाहित्य का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए लोकगीतों को समझना आसान होगा, क्योंकि लोकसाहित्य की एक विधा लोकगीत भी है। लोकगीत आरंभिक काल से लोक की गहन अनुभूति को प्रकट करते रहै हैं। लोकमानस की जमीन से जुड़ी यथार्थता स्वतः लोकगीतों में प्रस्फुटित हुई है। इस इकाई में हम लोकगीतों के दीर्घकालीन इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तथा इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए इसके महत्त्वपूर्ण पक्षों को समझ सकेंगे। कुमाउनी लोकगीतों के महत्त्व को समझकर उनकी सामाजिक प्रासंगिकता का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे। कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से अलग अलग प्रकार के लोकगीतों का परिचय प्राप्त हो सकेगा। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से हम विविध कुमाउनी लोकगीतों में निहित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति विधान सहित स्वरूप को भलि भाँति जान सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का प्रादुर्भाव एवं इतिहास को समझ सकेंगे।
- आप बता पायेंगे कि कुमाउनी लोकगीत आरंभ से लोगो की जुबान पर किस प्रकार अवस्थित रहै हैं।
- कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से आपको कुमाउनी साहित्य का समग्र बोध हो सकेगा।
- कुमाउनी रचनाकारों के अनुभूत ज्ञान का आपको ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- आप जान सकेगे कि किस तरह लोकगीत हमारे लोकजीवन की अपूर्व वस्तु है।
- कुमाउनी लोकगीतों की गेयता से आप एक गूढ़ अस्तित्व का भान कर सकेंगे।
- इन लोकगीतों के सामाजिक पक्ष से उद्घाटित होने वाली समरस सरल दृष्टि का अनुशीलन कर पाएँगे।

9.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप

कुमाऊँ में लोकगीत प्रारंभ से प्रचलित रहै हैं। कुछ लोकगीत युगो से चली आ रही परंपरा को प्रदर्शित करते हैं तथा कालान्तर में परिनिष्ठित साहित्य के विकास के साथ ही लोकगीतों का अभिनव निर्माण किया जाने लगा। लिखित साहित्य के इतिहास में कुमाउनी लोकगीतों के रचयिता ज्ञात हैं। प्रारंभ से चले आ रहै लोकगीत लोकमानस का स्वच्छंद प्रवाह हैं प्रायः इनके निर्माता अज्ञात रहते हैं। आपने जिस इकाई का पूर्व में अध्ययन किया है उसमें

कुमाउनी साहित्य के उद्भव एवं विकास के अन्तर्गत ज्ञात रचनाकारों की रचनाओं का परिचय दिया गया है। यही लोकगीतों का इतिहास भी है। उन्हीं विकास के चरणों में लोकगीतों की ऐतिहासिक दृष्टि हमें प्राप्त होती है। कुमाऊँ में लोकगीतों का प्रचलन तो आरंभिक काल से रहा है। लिखित साहित्य के रूप में उपलब्ध लोकगीतों को हम ऐतिहासिक रूप से स्वीकार करेंगे, डॉ त्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लिखित साहित्य को निम्नलिखित कालक्रमानुसार विभाजित किया है-

(1) 19वीं सदी का साहित्य

(2) 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का साहित्य

(3) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का साहित्य

हम उपर्युक्त काल विभाजन को लोकगीतों के क्रम में मान सकते हैं क्योंकि उपर्युक्त काल विभाजन में अस्सी फीसदी लोकगीतों वाली सामग्री हमें प्राप्त होती है। गुमानी कवि को सबसे प्राचीनतम कवि माना जाता है। इनका पुराना नाम लोकरत्न पंत था, इन्होनें लगभग 18 ग्रंथ लिखे जिनमें 'रामनाम पंच पंचाशिका ,गंगाशतक, कृष्णाष्टक, नीतिशतक प्रमुख हैं, इनका काल सन् 1790 से 1846 ई.तक माना जाता है। बैर और भगनौल विधा के कुशल प्रणेता कृष्णा पाण्डे (सन् 1800-1850) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था, व्यवस्था की बदहाली का वर्णन उनकी कविताओं का मुख्य विषय था। इनकी प्रमुख काव्य रचना 'कृष्णा पाण्डे को कलियुग' है।

नयनसुख पाण्डे अल्मोड़ा के पिलखा नामक ग्राम में जन्मे थे। पहाड़ी स्त्री की मनोदशा पर इन्होंने कई कविताएं लिखी। 19वीं शताब्दी के अवसान काल में गौरीदत्त पाण्डे का प्रादुर्भाव हुआ। इनका जन्म भी अल्मोड़ा के बल्दीगाड नामक स्थान में हुआ था। इनकी रचना गीदड़ सियार के गीत से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में ज्वालादत्त जोशी, लीलाधर जोशी, चिन्तामणि जोशी का नाम उल्लेखनीय है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियों ने पद्य रचनाओं के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। शिवदत्त सती इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका जन्म 1870 ई. में फल्दाकोट रानीखेत में हुआ था। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं- बुद्धिप्रवेश, मित्र विनोद, गोपीगीत, नेपाली भाषा के गीत, गोरखाली गीत, भाबर के गीत। गौरीदत्त पाण्डे गौर्दा (सन् 1872-1939) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में गांधी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। इनकी रचना गौरी गुटका नाम से प्रसिद्ध है। शिरोमणि पाठक (सन् 1890-1955) का जन्म स्थान शीतलाखेत है। इनके द्वारा झौड़े ,चांचरी तथा भगनौल लिखे गए। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में श्यामाचरण दत्त पंत, रामदत्त पंत, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी ,जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती देवी पंत, पार्वती उप्रेती, दुर्गादत्त पाण्डे, दीनानाथ पंत, तथा लक्ष्मी देवी के नाम प्रमुख है।

स्वतंत्रता के बाद अर्थात 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ी चीजें कुमाउनी लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होने लगी। भाषा भी अपने परिष्कार तथा परिमार्जन की तरफ अग्रसर हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद लिखी गई कुमाउनी कविताओं में

वैयक्तिक चेतना के अतिरिक्त सामाजिक सुधार के स्वर अधिक मुखरित हुए। इस काल के प्रमुख कवियों में चारूचन्द्र पाण्डे प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 1923 ई. को हुआ। ब्रजेन्द्र लाल साह का नाम भी 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के कवियों में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की मधुरतम छवि दिखाई देती है। कुमाउनी रामलीला को गेयपूर्ण ढंग से इन्होनें लिखा। इस काल को अद्यतन तक माना जाता है। शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़ इस समय के प्रख्यात रचनाधर्मी रहै। इनकी काव्य प्रतिभा लोगों के मन में नए उत्साहपूर्ण स्वर जाग्रत करती है। शेरदा अनपढ़ की प्रमुख रचनाएं , मोरि लटि पटि, जांठिक घुडुर, हसणै बहार हैं। बंधीधर पाठक जिज्ञासु का जन्म सन् 1934 को हुआ। ये एक कुशल आकाशवाणी के कलाकार थे। इनकी कुमाउनी रचना 'सिसौंण' युगीन परिस्थितियों का जीता जागता उदाहरण है। इसके अतिरिक्त देवकी महरा,गोपाल दत्त भट्ट ,किसन सिंह बिष्ट, कत्यूरी, रतन सिंह किरमोलिया, देव सिंह पोखरिया, शेर सिंह बिष्ट, दिवा भट्ट, बालम सिंह, जनोटी, त्रिभुवन गिरी, बहादुर बोरा, श्रीबंधु, दीपक कार्की एम0डी0अण्डोला, दामोदर जोशी, देवांशु, विपिन जोशी ,श्याम सिंह कुटौला, देवकीनंदन काण्डपाल ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में परिनिष्ठित कुमाउनी लोकगीतों का प्रणयन किया।

9.3.1 कुमाउनी लोकगीतः स्वरूप विवेचन

लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता हैं। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है। लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है।

डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं। रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते है कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं। लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता हैं। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है।

लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है। डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते है कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं।

9.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकगीतों के सम्यक अध्ययन के लिए हम उनका वर्गीकरण करेंगे। पूर्व मे लोक साहित्यकारों द्वारा किए गए वर्गीकरण को आधार मानकर उनका विषयवस्तुगत भाषायी,

प्रकृति, तथा जातिगत आदि आधारों पर वर्गीकरण किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। डा. पोखरिया ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है- 'वर्ण्य विषय, भाषा क्षेत्र और काव्य रूप आदि की दृष्टि से लोकगीतों के निम्न आधार हो सकते हैं-

(1) विषयगत आधार (2) क्षेत्रीय आधार (3) भाषागत आधार (4) काव्य रूप गत आधार (5) जातिगत आधार (6) अवस्था भेद (7) लिंगगत आधार (8) उपयोगिता का आधार (9) प्रकृति भेद

कुमाउनी के आधिकारिक विद्वानों , विशेष ज्ञों तथा शोधकर्ताओं ने सामान्यतया विषयवस्तु सम्मत आधार को ही अपनाया है। वैश यिक तथा वर्ण्य विषय को स्वीकारते हुए हम अन्य विद्धानों के वर्गीकरण को इस प्रकार समझ पाएंगे-

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे का वर्गीकरण

मुक्तक गीत

V. नृत्य प्रधान -झोड़ा चांचरी छपेली

VI. अनुभूति प्रधान- भगनौल तथा न्यौली

VII. तर्क सम्मत- बैर

VIII. संवाद प्रधान तथा स्फुट

(2) संस्कार प्रधान

III. अनिवार्य

IV. विशेष

(3) ऋतुगीत

(4) कृषिगीत

(5) देवीदेवता व्रत त्योहार के गीत

(6) बाल गीत

डा. कृष्णानंद जोशी ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) धार्मिक गीत

(2) संस्कार गीत

(3) ऋतु गीत

(4) कृषि संबंधी गीत

(5) मेलों के गीत

(6) परिसंवादात्मक गीत

(7) बाल गीत

लोकसाहित्य तथा कुमाउनी भाषा साहित्य के विद्धान भवानीदत्त उप्रेती ने विषयस्तुगत आधार को वर्गीकरण के लिए उपयुक्त माना है-

(1) संस्कार गीत

(2) स्तुति पूजा और उत्सव गीत

(3) ऋतु गीत
(4) जाति विषयक गीत
(5) व्यवसाय संबंधी गीत
(6) बाल गीत
(7) मुक्तक गीत

विभिन्न विद्वानों द्वारा किए वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी विद्वानों ने विषय को ही वर्गीकरण का आधार माना है। यहां हम वर्गीकरण के लिए विषयवस्तुगत आधार का चयन करेंगे तथा विभिन्न लोकगीतों की मौलिक प्रवृत्तियों से अवगत हो सकेंगे।

धार्मिक पुराण कालीन संदर्भित लोकगीत- पुराण काल की कथाओं एवं आख्यानों को आरंभिक दौर से लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता रहा है। कृष्णानंद जोशी ने धार्मिक गीतों के विषय में लिखा है- इन गीतों में सर्वप्रथम वे गीत आते हैं, जिनकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से संबंधित है। इसी प्रकार के एक गीत में वर्णित है वह क्षण जब सृष्टिकार ने महाशून्य में हंस का एक जोड़ा प्रकट किया और हंसिनी का अंडा गिरकर फूटने से एक खंड से आकाश बना और दूसरे से धरती।इसी प्रकार महाभारत काल के कौरव पाण्डवों की कथा के अंश लोकगीतों के माध्यम से प्रकट किए जाते रहै हैं। रामचरित मानस में उल्लिखित श्रीरामचन्द्र जी कथा का वर्णन भी इन गीतों के माध्यम से देखे जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ

बाटो लागी गया मुनि तपसिन
जै पिरथी राजा को रैछ एक पूत
तिनरा देश वैछ बार बिसी हलिया, बार बीसी बौसीया
रोपन का खेत भगवान कूल टुटी भसम पड़ी गेछ,

लोकमानस की महाभारत कालीन प्रस्तुति इन पंक्तियों में देखी जा सकती है-

पांडवन की लछण बिराली, कौरवन की पहाड़ी कुकुड़ी,
तेरी बिराली कुकुड़ी ब्यूज बैरछ बिराली कुकुड़ी मारी दीयो ।

इन गीतों में पौराणिक कथा सार की अभिव्यक्ति को हम सरलता से समझ सकते हैं।

संस्कार गीत- मनुष्य के जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। कुमाउनी संस्कार गीतों में जन्म छठी, नामकरण उपनयन विवाह आदि के गीत सम्मिलित हैं, ये गीत प्रायः महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। संस्कारों में होने वाली पूजा अनुष्ठान के अनुसार इन गीतों को गाया जाता है। यहां हम कुछ कुमाउनी संस्कार गीतों को संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे। कुमाऊँ में प्रत्येक सुअवसर पर शकुनांखर सगुण (सगुन) के गीत गाने की परंपरा है।

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैये,थाति को थत्याल
ध्यायनु भयै , ध्यायनु भैय ,भुई को भूम्याल

बच्चे के जन्म के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

धन की धौताला, धन की धौ,
धन की धौताला धन की धौ,
यरबा सिर सिड़ जोड़ सिरसिड़
पाडव्वा बाबै जोड़ जोड. बावै
विवाह के समय फाग के गीतों की विशेष परंपरा देखी जा सकती है।
पैलिक सगुन पिडली पिठाक
उति है सगुन दई दई माछ।
पिड.ली पिठाक कुटल है
खनल पनीया ध्वेज उखल कुटल
ऋतु गीत- विभिन्न ऋतुओं के आगमन पर कुमाऊं में लोकगीत प्रचलित हैं, बसंत ऋतु के आगमन पर लोगों का तनमन सुवासित हो जाता है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन पर भी मन में उठने वाली तरंगे नया आभास जगाती है। ऋतु गीतों में विरह वेदना प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन समविष्ट रहता है। आप ऋतुराज बंसत के यौवन को इस गीत में देख सकते हैं।
रितु ऐ गे हैरी फेरी ओ गरमा रितु,
मारीया मानीख पलटी नी ऊंनो।
इन गीतों में अपने प्रियजनों की स्मृति, निराशा तथा भावुकता देखी जा सकती है।
कृषि विषयक गीत- कुमाऊँ में कृषि विषयक गीतों को हुड़की बौल के नाम से जाना जाता है। प्राचीन विचाराधारा के अनुसार कृषि कार्यो में तत्परता तथा एकाग्रता के लिए मनोरंजक गीत सुनाए जाने का प्रचलन है। हुड़की बौल में एक व्यक्ति हुड़के की थाप पर गाता हुआ आगे बढ़ता रहता है तथा कृषि कार्य निराई गुड़ाई या रोपाई करने वाले लोग कार्य करते हुए बड़ी लगन से बौल लगाने वाले के स्वर को दुहराते हैं, इसमें कार्य भी जल्दी सम्पन्न हो जाता है तथा मनोरंजन के द्वारा लोगों को थकान का अनुभव नहीं होता है। हुड़कि बैल में ऐतिहासिक लघु गाथाएं गायी जाती हैं।
लोकोत्सव एवं पर्व संबंधी गीतः- लोक के विविध उत्सवों, पर्वो पर जो गीत गाए जाते हैं, उनमें लोक मनोविज्ञान तथा लोकविश्वास के लक्षण पाए जाते हैं। स्थानीय पर्वों फूलदेई तथा घुघुतिया को प्रथागत आदर्शो के साथ मनाया जाता है। फूल संक्रान्ति के अवसर पर बच्चे गांव के प्रत्येक घर के दरवाजे पर सरसों तथा फूलदेई के फूल अर्पित करते हुए कहते हैं-
फूल देई छममा देई
भरभकार दैणी द्वारा
जतुकै दिछा उतुकै सई
फूल देई छम्मा देई
घुघुतिया (मकर संक्रान्ति) को बच्चे आटे के बने घुघुतों की माला गले में डालकर प्रातः कौवे को बुलाते हैं-
'काले कौवा काले काले काले

घुघुती मावा खाले खाले खाले
तु ल्हि जा बड़ म्यकै दिजा सुनु घड़
काले कौवा काले काले काले

कुमाऊँ में हरेला पर्व हरियाली का प्रतीत है। हरेले के त्यौहार में हरेला आशीश के रूप में सिर पर रखा जाता है। इस अवसर पर आशीर्वचन देते हुए कहते हैं-

हर्याली रे हर्याली हरिया बण जाली
दुबड़ी कैंछ दुबै चड़ि जूलो
चेली कैंछ मैं मैतुलि जूंलो, आओ चेलि खिलकन मैत
तुमारे बाबू घर, तुमारे भइयन घर हरयाली को त्यार

विभिन्न प्रकार के पर्वोत्सवों पर गाए जाने वाले इन गीतों में उद्बोधन तथा आशीर्वाद के भावों को देखा जा सकता है।

मेलों के गीतः- मेला शब्द की उत्पत्ति मेल से हुई है। कुमाऊँ में विभिन्न प्रकार के मेले आयोजित होते आए हैं। इन मेलों में लोग पारस्परिक मेल मिलाप करते हैं। प्राचीन काल से ज्ञानी लोग मेले में अपनी कवित्व शक्ति का प्रदर्शन करते आए हैं। इनमें सामूहिक नृत्यगीत भी शामिल हैं। यहां पर हम देखेंगे कि मेलों के माध्यम से सामूहिक गायन पद्धति से लोग मनोरंजन करते हैं। इन गीतों में झोड़ा, चांचरी, छपेली, भगनौल और बैर का प्रचलन है। हुड़के की थाप पर लोग एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध होकर थिरकते दिखाई देते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति के साथ-साथ प्राचीन वैदिक कालीन संदर्भ कथाओं का गायन भी किया जाता है। झोड़ा और चाँचरी में गोल घेरे में कदम से कदम मिलाकर नृत्य किया जाता है। इसमें लयबद्ध तरीके से गायन पद्धति अपनाई जाती है।

चौकोटै कि पारवती स्कूल नि जानि बली इस्कूला नि जानी ,
मासी का परताप लौंडा स्कूल नि जानि बली इस्कूलनि जाना।

छपेली नृत्य में द्रुत गायन शैली अपनाई जाती है। ओहो करके गीत शुरू किया जाता है। भगनौल में पद्यात्मक उक्तियों को आरोह अवरोह के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इन उक्तियों को गेयपदों में जोड़ने वाली गीत शैली जोड़ के रूप में जानी जाती है। बैर में युद्धों का वर्णन किया जाता है। इसमें तार्किक कथनों के द्वारा एक दूसरे को निरुत्तर करने की प्रतियोगिता होती है।

परिसंवादात्मक गीत- संवाद शैली से युक्त गायन पद्धति को परिसंवादात्मक गीतों की श्रेणी में रखा जाता है। इन गीतों में संवादों के माध्यम से विभिन्न पात्रों के कौशल को जाना जा सकता है। डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार- 'हरियाला का त्यौहार आने पर एक माँ अपनी बिटिया को मायके बुलाने का अनुरोध करती है- कन्या के पिता के जाते समय के अपशकुन माँ के हृदय को दुखित कर देते हैं। बेटी के ससुराल जाकर पिता को बताया जाता है कि 'रघी' घास लकड़ी लाने जंगल गई हुई है, पानी भरने गई हुई है आदि। रघी के पिता बेटी की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। उस रघी को, जो अब कभी नहीं लौटेगी, गीत के दूसरे भाग में वह दृश्य 'फ्लैश बैक' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें रघी की ननद अपनी माँ से अनुरोध करती है कि पोटली में रखे

च्यूले उसने खाए हैं। रघी ने नहीं, रघी को मत पीटो। ओ क्रूर माँ! तुमने रघी को मारकर उसका शव तक गोठ में छिपा दिया।

खाजा कुटुरी मैले लुकैछ ईजू पापिणी बोजि नै मार,
पाना मारीछ गोठ लुकैछ, ईजू पापिणी बोजि नै मार।
साग काटछ राम करेली, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

इन गीतों में लोक जीवन की मर्मान्तक पीड़ा का भाव देखा जा सकता हैं। हमें पता चलता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के तौर तरीकों में कितनी असभ्यता थी। कुछ ऐतिहासिक लोक कथाओं के आख्यान भी हम इन संवाद प्रधान गीतों के माध्यम से जान सकेंगे।

बाल गीत - व्यक्ति के जीवन की शुरूआत बचपन से होती है। बालपन में शिशु का मन निश्छल होता है। वह खेलना पंसद करता है। जीवन के गंभीर उतार चढ़ावों से अनभिज्ञ शिशु अपनी किलकारियों में ही खेल का अनुभव करता हैं। बच्चों द्वारा आपस में खेले जाने वाले खेलों में ही गीत विकसित होते हैं। इन गीतों का निर्माण स्वत: स्फूर्त माना जाता है। यथा -

डक्की डक्की मुक्का पड़ौ
ओ पाने ज्यू भ्यो पड़ो
सात समुन्दर गोपी चन्दर
बोल मेरी मछली कितना पानी
(दूसरी कहती है) इतना पानी

बच्चे गीतों के साथ साथ अपने भावों को हाथ हिलाकर भी प्रकट करते हैं। कहना उचित होगा कि बालगीत बच्चों के सुकोमल मनोविज्ञान की स्वच्छंद सरल अभिव्यक्ति है। जिनमें किसी गंभीर विषय बोध की सदा अनुपस्थिति रहती है।

बोध प्रश्न

क - सही विकल्प को चुनिए -

1. 'फूल देई छम्मा देई' लोकगीत की किस कोटि में आता है?
   V. बालगीत
   VI. नृत्यगीत
   VII. पर्व संबंधी गीत
   VIII. भगनौल
2. 'गौरी गुटका' नामक रचना है -
   V. गुमानी पंत
   VI. रामदत्त पंत
   VII. गौरीदत्त पाण्डे
   VIII. शेरसिहं विष्ट
3. ऋतुओं का वर्णन किस गीत में मिलता है ?
   V. संस्कार गीत

VI. ऋतु गीत
VII. कृषि संबंधी गीत
VIII. पर्व उत्सव संबंधी गीत

ख - 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के लोकगीतों का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

ग - लोकगीत क्या हैं ? विषयगत आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण कीजिए।

घ - 'झोड़ा' और 'भगनौल' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

9.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

हम सब जानते हैं कि लोकगीत लोकमानस की वह तंरगायित अभिव्यक्ति है, जो नियति और मानवीय सत्ता के विविध रूपों को समाहित किए रहती है। मानव ने भौतिक विकास के सापेक्ष मानसिक विकास के द्वारा समाज में अपने अस्तित्व को मुखर किया हैं। लोकगीत लोकमानस के संवेदना के मौलिक तत्व हैं। अनुभूति तथा ज्ञान की लयबद्ध अभिव्यक्ति प्रायः लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

भावपक्ष की दृष्टि से हम देखते हैं कि गीतों का निर्माण ही भाव भूमि पर हुआ है। ये वही भाव हैं, जो प्रकृति के नाना रूपों में, व्यथा, वेदना, हर्ष ,विषाद आदि के रूपों में शब्दों में स्वत: उतर आते हैं। इनकी यही लयात्मक प्रवृत्ति इनकों रोचक बनाए हुए है। लोकगीतों में व्यष्टि और समष्टि का अपूर्व मिश्रण होता है, जो समाज के चेतनामूलक फलक को प्रभावित कर उसे सरस बना देता है। अत: हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की सुख दुखात्मक स्थितियों में अन्तर्मन से जो वाणी फूट पड़ती है तथा लोक के लिए एक रूचिकर शैली बन जाती है, वही लोकगीत कहलाता है।

9.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ

कुमाउनी लोकगीत कुमाऊँ के जनमानस की व्यापक संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं। वाचिक तौर पर वर्षों से जीवित इन गीतों में अपनी माटी की सुगंध निहित हैं। ये गीत मानव को मानव से जोड़ने में यकीन रखते हैं। कहीं कहीं आप पाएँगे कि इन गीतों में पौराणिक चरित्रों का चित्रण भी हुआ है। वैदिक कालीन समाज व्यवस्था तथा प्रमुख पात्र एवं घटनाओं से संबंधित आख्यान इन लोकगीतों के आधार बनें हैं। सत्य की अनुभूति लोकगीतों के माध्यम से स्पष्ट झलकती है।

इन गीतों में पहाड़ के पशुपक्षियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन देखने को मिलता है। 'न्योली' नामक लोकगीत एक विरही पक्षी पर आधारित है। न्योली एक पहाड़ी प्रजाति की कोयल को कहा जाता है। इसे विरह का प्रतीक माना जाता है। ऐसी धारणा है कि न्यौली अपने पति के वियोग में दिन रात मर्मान्तक स्वरों से जंगल को गुंजायमान बनाती फिरती है। लोकमानस ने उस पक्षी को अपने संवेदना के धरातल पर उकेरा है।सामान्य अर्थों में न्यौली का अर्थ 'नवेली' 'नई' से लिया जाता है।

कुमाउनी लोकगीत विभिन्न धार्मिक संस्कारों के संवाहक हैं। गर्भाधान,नामकरण,अन्नप्राशन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों में गाए जाने वाले लोकगीत युगों

से चली आ रही वाचिक परंपरा के सत्यानुभूत कथन हैं। लोकगीतों की विशेष ता उनके लयात्मक गायन शैली में निहित है। प्रेम, करूणा विरह आदि की अवस्थाओं पर कई लोकगीत समाज में प्रचलित हैं।

डॉ. त्रिलाचन पाण्डे ने कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ता को बताते हुए कहा है - 'कुमाऊँ में जमीदार प्रथा तो नहीं है, फिर भी कुछ लोगों के पास बहुत जमीन हो गई है। दूसरे लोग बटाई पर काम करते हैं। जमीन भी 'तलाऊँ ', मलाऊँ, आबाद,बंजर कई प्रकार की है। नदियों की घाटियों वाली भूमि अधिक उत्पादक होती है, जिसे 'स्यारा' कहते हैं। दलदली भूमि 'सिमार' कहलाती है। इसकी उत्पादक क्षमता को ध्यान में रखकर जो लगान वर्षों पूर्व अंग्रेजों द्वारा निर्धारित किया गया या उसमें समय पर परिवर्तन होते गए। अब कुछ वर्ष पूर्व भूमि नाप संबंधी नई योजना प्रारंभ हुई तो कुछ लोग अपनी जमीन बढ़ा चढ़ाकर लिखाने लगे। कुछ पीछे रह गए। गीतकारों ने इस स्थिति की सटीक व्याख्या की है।'

इस प्रकार आप देखेंगे कि कुमाउनी लोक गीत स्वंय में अनेक विशेष ताओं को समेटे हैं। लौकिक ज्ञान की धरातल से जुड़ी प्रस्तुतियाँ इन गीतों के माध्यम से होती है। इन गीतों में कल्पना भी चरम सीमा पर होती है। इन गीतों में अपने समय की सजीवता है। मानव व्यवहार के तौर तरीकों तथा समाज मनोविज्ञान के कई तथ्य इन गीतों द्वारा अभिव्यक्त होते आए हैं। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन इन गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। लोक सत्य के उद्घाटन में ये गीत अग्रणी हैं। प्राचीन काल की रोचक एवं ज्ञानवर्धक ज्ञान की समाविष्टि इन गीतों का स्वभाव है।

अत: कहा जा सकता है कि कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ता यहाँ के जनमानस की सांगीतिक प्रस्तुति है। ये विषय वैविध्य का लक्षण प्रदर्शित करते हैं। वर्गीकरण के आधार पर अलग अलग विषयों के लोकगीतों में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ हैं, जिनके द्वारा समाज को मानसिक जगत में बहुत लाभ प्राप्त हुआ है।

9.4.2 कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व

कुमाउनी लोकगीतों द्वारा मनुष्य के भावों को प्रकट करने की तरल क्षमता प्रकट होती है । ये लोकगीत समाज का उचित मनोरंजन करते हैं। साथ ही इनमें अपने समय को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता होती है। प्रोफेसर देवसिहं पोखरिया ने 'कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम' पुस्तक में संतराम अनिल के विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है – 'लोकगीत साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक एक रेखा , सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक विजय पराजय , प्रकृति की गति, विधि, वृक्ष ,पशु, पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध बलि,पूजा, टोने टुटके , आशा,निराशा,मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है।'

लोकगीतों के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

(1) लोकगीतों में युगीन परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।

(2) ये गीत मानवी संवेदना के हर्ष - विषाद, सुख दुःख तथा काल्पनिकता को अभिवृद्ध करते हैं।

(3) लोकगीतों में सामाजिक परिवेश को सरस बनाने की कला होती है।

(4) लोकगीतों में गीति तत्व तथा लय होने से ये वाचिक परंपरा के मनोहारी आख्यान कहै जाते हैं।

(5) लोकगीत मानव समाज को आदिम परंपरा से सभ्य समाज की तरफ अग्रसर करते हैं।

(6) लोकगीतों में मौलिकता होती है, जो व्यक्ति के जीवन के यथार्थ स्वरूप को सामने लाती है।

(7) कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों में प्रत्येक युगानुसार उनकी विकासवादी धारणा को समझा जा सकता है।

(8) ये कार्य संपादन के तरीकों में प्रयुक्त होकर कार्य का निष्पादन त्वरित गति से करते हैं।

स्पष्टत: लोकगीतों में समाज के विभिन्न जातियों , धर्मों,अनुष्ठानों तथा उनके तौर तरीकों पर प्रकाश पड़ता है। हम लोकगीतों के माध्यम से समाज की तत्कालीन स्थिति को सरलता से जान सकते हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क - नीचे दिए गए प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. लोकगीत की वह पद्धति जिसमें स्त्री पुरूश एक दूसरे के कंधे में हाथ डालकर गोलाकार भाग में कदम मिलाकर चलते है कहलाती है -

V. बैर
VI. जागर
VII. झोड़ा
VIII. जोड़

2 संवादक मूलक लोकगीत है -

V. झोड़ा
VI. छपेली
VII. चाँचरी
VIII. बैर

3. संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत हैं -

V. छपेली
VI. भगनौल
VII. फाग
VIII. होली के गीत

(4) लोकगीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए

(5) कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण का सबसे सरल और व्यावहारिक आधार कौन सा है ? लोकगीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

9.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

कुमाउनी लोकगीत प्राचीन काल से वर्तमान काल तक लोकजीवन में निर्बाध रूप से प्रचलित रहै हैं।आरंभिक काल से चली आ रही लोकगीतों की परंपरा में यहाँ कें जनमानस की प्रकृतिपरक , मानवीय संवेदना, विरह एवं मनोरंजन का पुट स्पष्ट झलकता है। पर्वतीय जीवन शैली को आप इन सुरधाराओं में आसानी से पा सकते हैं। पशु पक्षियों का आलंबन लेकर उसे मानवीय सत्ता से जोड़कर लोकगीतों को मर्मस्पर्शी बनाया गया है। कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में समय के साथ आए बदलाव को भी परखा जा सकता है। लोकवाणी की तर्ज पर जिन प्राचीन गीतों में प्रकृति सम्मत आख्यान मिलते हैं, वहीं आधुनिक लोकगीतों में नए जमाने की वस्तुओं ,फैशन का उल्लेख मिलता है। नए लोकगीत व्यावसायिक दृष्टिकोण से बनाए तथा गाए जाते हैं। इन गीतों का ध्वनिमुद्रण उच्च इलेक्ट्रॉनिक तकनीक पर आधारित होता है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि कुमाऊँवासी पहाड़ को छोड़कर मैदानी इलाकों को पलायन कर रहै हैं। मैदानी शहरी जिन्दगी में उन्हें ये लोकगीत पहाड़ी भाषा की मनोरंजक स्मृति मात्र का सुख देते हैं। फिर भी कुछ लोग मौलिक प्राचीन वाचिक परंपरा को अपनाने में ही विश्वास रखते हैं।कुमाउनी लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ. देवसिहं पोखरिया तथा डॉ. डी. डी. तिवारी ने अपनी संपादित पुस्तक 'कुमाउनी लोकसाहित्य' में न्योली ,जोड़, चाँचरी, झोड़ा, छपेली, बैर तथा फाग का विशद वर्णन किया है। यहाँ हम इन लोकगीतों को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

न्यौली - न्यौली एक कोयल प्रजाति की मादा पक्षी है । ऐसा माना जाता है कि यह न्यौली अपने पति के विरह में निविड़ जंगल में भटकती रहती है। शाब्दिक अर्थ के रूप में न्यौली का अर्थ नवेली या नये से लगाया जाता है। कुमाऊँ में नई बहू को नवेली कहा जाता है। सुदूर घने बांज, बुरांश के जंगलो में न्यौली की सुरलहरी को सहृदयों ने मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर उतारने का प्रयास गीतों के माध्यम से किया है।न्यौली की गायनपद्धति में प्रकृति, ऋतुएँ, नायिका के नख शिख भेद निहित हैं। छंदशास्त्र के दृष्टिकोण से न्यौली को चौदह वर्णों का मुक्तक छंद रचना माना जाता है।

न्यौली का उदाहरण -

चमचम चमक छी त्यार नाकै की फूली
धार में धेकालि भै छै, जनि दिशा खुली

(तेरे नाक की फूली चमचम चमकती है, तुम शिखर पर प्रकट क्या हुई ऐसा लगा कि जैसे दिशाएँ खुल गई हों)

जोड़ - जोड़ का अर्थ जोड़ने से है । गणित में दो और दो चार होता है। कुमाउनी लोकसाहित्य में जोड़ का अर्थ पदों को लयात्मक ढ़ग से व्यवस्थित करना है। संगीत या गायन शैली को देखते हुए उसे अर्थलय में ढाला जाता है। जोड़ और न्यौली लगभग एक जैसी विशेष ता को प्रकट

करते हैं। द्रुत गति से गाए जाने वाले गीतों में हल्का विराम लेकर ' जोड़' गाया जाता हैं। जोड़ को लोकगायन की अनूठी विधा कहा जाता है।

उदाहरण -

दातुलै कि धार दातुलै की धार
बीच गंगा छोड़ि ग्यैयै नै वार नै पार

(अर्थात दराती की धार की तरह बीच गंगा में छोड़ गया, जहाँ न आर है न पार)

चाँचरी - चाँचरी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर्चरी' से मानी गई है। इसे नृत्य और ताल के संयोग से निर्मित गीत कहा जाता है। कुमाऊँ के कुछ भागों में इसे झोड़ा नाम से भी जाना जाता है। 'चाँचरी' प्रायः पर्व,उत्सवों और स्थानीय मेलों के अवसर पर गाई जाती है। यह लोकगीत गोल घेरा बनाकर गाया जाता है, जिसमें स्त्री पुरूश पैरों एवं संपूर्ण शरीर को एक विशेष लय क्रमानुसार हिलाते डुलाते नृत्य करते हैं। चाँचरी प्राचीन लोकविधा है। मौखिक परंपरा से समृद्ध हुई इस शैली को वर्तमान में भी उसी रूप में गाया जाता है। चाँचरी में विषय की गहनता का बोध न होकर स्वस्थ मनोरंजन का भाव होता है, जो लोगों को शा ीरिरक और मानसिक रूप से लाभ पहुँचाता है।

उदाहरण - काठ को कलिजों तेरो छम

(वाह! का कलेजा तेरा क्या कहने)

चाँचरी में अतं और आदि में 'छम' का अर्थ बलपूर्वक कहने की परंपरा है। छम का अर्थ घुघरूँ के बजने की आवाज को कहा जाता है। छम' कहने के साथ ही चाँचरी गायक पैर व कमर को झुकाकर एक हल्का बलपूर्वक विराम लेता है।

झोड़ा - जोड़ अर्थात जोड़ा का ही दूसरा व्यवहृत रूप है झोड़ा। कुमाउनी में 'झ' वर्ण की सरलता के कारण 'ज' वर्ण को 'झ' में उच्चरित करने की परंपरा है। झोड़ा या जोड़ गायक दलों द्वारा गाया जाता है। एक दूसरे का हाथ पकड़कर झूमते हुए यह गीत गाया जाता है। इसे सामूहिक नृत्य की संज्ञा दी गई है। किसी गाथा में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति या किसी गाथा में निहित पराक्रमी चरित्रों के चित्रण की वृत्ति निहित होती है।

उदाहरण -

ओ घटै बुजी बाना घटै बुजी बाना
पटि में पटवारि हुँछौ गौं में पधाना
आब जै के हुँ छै खणयूंणी बुड़ियै की ज्वाना

(नहर बांध कर घराट (पनचक्की) चलाई गई पट्टी में पटवारी होता है गांव में होता है प्रधान अब तू बूढ़ी हो गई है कैसे होगी जवान)

छपेली - छपेली का अर्थ होता है क्षिप्र गति या त्वरित अथवा द्रुत वाकशैली से उद्भूत गीत । यह एक नृत्य गीत के रूप में प्रचलित है। लोक के तर्कपूर्ण मनोविज्ञान की झलक इन गीतों में आप आसानी से पा सकते हैं। लोकोत्सवों, विवाह या अन्य मेलो आदि के अवसर पर लोक सांस्कृतिक प्रस्तुति के रूप में इन नृत्य गीतों को देखा जा सकता है। छपेली में एक मूल गायक

होता है। शेश समूह के लोग उस गायक के गायन का अनुकरण करते है। स्त्री पुरूश दोनों मिलकर छपेली गाते हैं। मूल गायक प्रायः पुरूश होता है, जो हुड़का नामक लोकवाद्य के माध्यम से अभिनय करता हुआ गीत प्रस्तुत करता है।

छपेली में संयोग विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता होती है। प्रेम की सच्ची भावना को सुमधुर ढ़ग से गायकी में अभिव्यक्त किया जाता है।

उदाहरण - भाबरै कि लाई
भाबरै की लाई
कैले मेरि साई देखि
लाल साड़ि वाई

(भाबर की लाही भाबर की लाही किसी ने मेरी लाल साड़ी वाली साली देखी)

बैर - बैर शब्द का प्रयोग प्रायः दुश्मनी से लिया जाता है। लोकगायन की परंपरा में बैर का अर्थ 'द्वन्द्व' या 'संघर्ष' माना गया है। बैर तार्किक प्रश्नोत्तरों वाली वाक् युद्ध पूर्ण शैली है। इसमें अलग अलग पक्षों के बैर गायक गूढ़ रहस्यवादी प्रश्नों को दूसरे पक्ष से गीतों के माध्यम से पूछते हैं। दूसरा पक्ष भी अपने संचित ज्ञान का समुद्घाटन उत्तर के रूप में रखता है। बैर गायक किसी भी घटना , वस्तुस्थिति अथवा चरित्र पर आधारित सवालों को दूसरे बैरियों के समक्ष रखता है। अन्य बैर गायक अपनी त्वरित बुद्धि क्षमता से इन प्रश्नों का ताबड़तोड़ उत्तर देकर उसे निरूत्तर करने का प्रयास करते है। कभी कभार इन बैरियों में जबरदस्त की भिड़न्त देखने को मिलती है। हार जीत के लक्ष्य पर आधरित इस गीत का परस्पर संवादी क्रम बड़ा ही रोचक होता है। इनके प्रश्नों में ऐतिहासिक चरित्र एवं घटना तथा मानवीय प्रकृति के विविध रूप समाविष्ट रहते हैं।

फाग - कुमाउनी संस्कृति में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले मांगलिक गीतों को 'फाग' कहा जाता है। कही कही होली के मंगलाचरण तथा धूनी के आशीर्वाद लेते समय भी फाग गाने की परंपरा विद्यमान है। शुभ मंगल कार्यों यथा जन्म एवं विवाह के अवसर पर 'शकुनाखर ' और फाग गाने की अप्रतिम परंपरा है। 'फाग' गायन केवल स्त्रियों द्वारा ही होता है। होली के अवसर पर देवालयों में 'फाग' पुरूश गाते हैं। कुमाऊँ में संस्कार गीतों की दीर्घकालीन परंपरा को हम 'फाग' के रूप में समझते हैं। फाल्गुन मास के आधार पर ही 'फाग' का प्रादुर्भाव माना जाता है। मनुष्य के गर्भाधान,जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, चूड़ाकर्म

विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर यज्ञ अनुष्ठान के साथ इन गीतों का वाचन किया जाता है। गीत गाने वाली बुजुर्ग महिलाओं को 'गीदार' कहा जाता है।

उदाहरण - शकूना दे, शकूना दे सब सिद्धि
काज ए अति नीको शकूना बोल दईणा

(शकुन दो भगवान शकुन दो सब कार्य सिद्ध हो जाएँ सगुन आखर से सारे काज सुन्दर ढ़ग से सम्पन्न हो जाएँ)

बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1- 'न्यौली' का एक उदाहरण दीजिए।

2- फाग किस रूप में गाए जाते हैं ?

3- झोड़ा किस प्रकार गाया जाता है ?

4- चाँचरी से क्या तात्पर्य है ?

9.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का अर्थ स्वरूप तथा इतिहास समझ गए होंगे।
- आपने समझ लिया होगा कि विषयवस्तुगत आधार पर वर्गीकरण करने से आपके अध्ययन की रूपरेखा सरल और स्पष्ट हो गई है।
- कुमाउनी भाषा और बोलियों के लयात्मक स्वरूप को जान गए होंगे।
- कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों की विशेष ताएँ और महत्त्व को समझ चुके होंगे।
- प्रमुख कुमाउनी लोकगीतों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

9.7 शब्दावली

आशु	-	मौखिक
उद्गार	-	प्रकट होने वाले भाव
निश्छल	-	छल रहित
उपोदय	-	उपयोगी
स्फुट	-	अन्य, प्रकीर्ण
सन्निहित	-	समाया हुआ
गीदार	-	गीतकार
शकुनाखर	-	सगुन के आखर
न्यौली	-	नवेली, नई
अप्रतिम	-	अनूठी, अनोखी
फाग	-	संस्कार गीत
बैर	-	संघर्ष
छपेली	-	क्षिप्रगति वाली

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.3 के उत्तर

1- पर्व संबंधी गीत

2- गौरीदत्त पाण्डे

3 - ऋतु गीत

9.4 के उत्तर

क (1) झोड़ा

(2) बैर

(3) फाग

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, कृष्णानंद , कुमाउनी लोकसाहित्य , धार्मिक गीत ,112
2. पूर्वोक्त , संस्कार गीत (1)
3. पाण्डे त्रिलोचन ,कुमाऊँ का लोकसाहित्य , पृ -124,
4. पूर्वोक्त , पृ - 126
5. अचल, जुलाई 1938, श्रेणी - 1, श्रृंग - 6,
6. इंडियन एंटीक्वेरी ,जिल्द 14 (1885)
7. धर्मयुग , अक्टूबर 31, 1954 ,
8. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, खंड 9, भाग 4 ,पृ -167.
9. कुमाउनी लोकसाहित्य , देवसिहं पोखरिया , डी.डी. तिवारी , पृ 2- 12
10. पाण्डे, त्रिलोचन ,कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, उत्तर प्रदेश ,हिन्दी संस्थान, पृ - 190- 211
11. बटरोही , कुमाउनी संस्कृति, पृ - 13-25
12. पोखरिया, देवसिंह , कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम, पृ- 13- 15

9.10 उपयोगी / सहायक ग्रंथ सूची

1- न्यौली सतसई , डॉ.देवसिहं पोखरिया, अल्मोड़ा बुक डिपो

2- कुमाउनी कवि गौर्दा का काव्य दर्शन, सं. चारूचन्द्र पाण्डे

3- कुमाउनी भाषा , डॉ. केशव दत्त रूवाली

4- कुमाउनी हिन्दी शब्द कोश, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल

5- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे

6- कुमाउनी भाषा का अध्ययन, डॉ. भवानी दत्त उप्रेती

9.11निबंधात्मक प्रश्न

1-कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ बताते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

2-कुमाउनी लोकगीतों के विषयगत आधार पर विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

3-लोकगीत क्या हैं ? कुमाउनी लोकगीतों की विविध विधाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई - 10 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप
10.3.1 गढ़वाली और गढ़वाली लोक मानस
10.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक
10.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास
10.3.4 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्गीकरण
10.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा
10.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य
10.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य
10.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य
10.5 सारांश
10.6 अभ्यास प्रश्न
10.7 पारिभाषिक शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

लोक का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है उसके प्रभामंडल की परिसीमा में उसकी संस्कृति, कलाएं , विश्वास, भाषा और इतिहास-धर्म सब कुछ आ जाता है। इन्हें लोक से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। डॉ. गोविन्द चातक के अनुसार, 'लोक मानस की उद्भावना में इसके साथ ही सामूहिक जीवन-पद्धति का बड़ा हाथ होता है।' उसमें यथार्थ और कल्पना में भेद करने की प्रवृत्ति पर बल नहीं होता, इसलिए जड़-चेतन की समान अवधारणा पर उसका विश्वास बना रहता है। लोक साहित्य में यही लोक मानस बोलता है। मोहनलाल बाबुलकर 'गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना' पुस्तक की भूमिका में इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, "साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हॅसती है और खेलती है। इन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वे लोक साहित्य की प्राचीनता के विषय में उल्लेख करते हैं कि, 'ऋग्वेद में अनेक लोक कथाएं उपलब्ध हैं। शतपथ ब्राहमण और एतरेय ब्राहमण में ऐसी ही गाथांएं प्राप्त होती हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र ने भी लोक प्रचलित नाटकों को अपना विवेच्य विषय बनाया है। गुणाढ्य की वृहत्कथा , सोम देव के 'कथा सरित सागर' में लोक मानस ही वर्णित है। मध्य युगीन निजंधरी कथाओं में भी मूलरूप से लोक कथाएं ही हैं'। लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोककथाओं,लोक गाथाओं यहाँ तक कि लोक भाषाओं में भी लोक,रसा-बसा रहता है। लोक का प्रदेय ही लोक साहित्य है। यही करण है कि लोक को और उसके साहित्य को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। निष्कर्षतः लोक का साहित्य ही लोक साहित्य है।

लोक को जानने - पहचानने के लिए साहित्य के इतिहास को जानना भी जरूरी है! क्योंकि लोक जैसे -जैसे आगे बढ़ता है, उसकी संस्कृति विकसित होती चली जाती है और उसका इतिहास भी संस्कृति का अनुगमन करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। इस तरह से भाषा का संस्कृति का और लोक व्यवहार का रूप सदैव बदलता रहता है वे निरंतर परिष्कार पाते रहते हैं ।लोक के इन घटकों के साथ-साथ लोक साहित्य भी अनुपद चलता रहता है। और उसके साथ-साथ साहित्य का इतिहास भी सृजित होता रहता है। अतएव 'लोक' को जानने के लिए उसकी परंपराएं, रीतिरिवाज, जातीय विश्वास मिथक, आदि को जानना जरूरी होता है। बिना इन्हें जानें आप लोक को नहीं समझ पाएंगें। लोक को समझनें में लोक साहित्य पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। अतः लोक साहित्य के स्वरूप को जानना भी हमारे लिए परम आवश्यक हो जाता है। लोक साहित्य के स्वरूप के अन्तर्गत, लोक साहित्य की भाषा, उसकी प्रकृति, सभी गद्य-पद्य नाटक आदि विधाएं ,उसकी सृजन प्रक्रिया भेद-उपभेद, और सौंन्दर्य तत्वों का गम्भीर अध्ययन आवश्यक होता है। अतएव लोक साहित्य के स्वरूप के साथ-साथ उसके क्रमिक वृद्धिंगत इतिहास पर भी आपकी दृष्टि रहनी चाहिए।

10.2 उद्देश्य

'गढ़वाली लोक साहित्य' अन्य भारतीय प्रदेशों के लोक साहित्य की तरह रोचक और लोक मानस का प्रतिनिधित्व करता है। अतएवं 'गढ़वाली लोक मानस' के लोक साहित्य के क्रमिक इतिहास को समझना ही इस इकाई लेखन का मुख्य उद्देश्य है। इस का अध्ययन करने से आप गढ़वाली लोक मानस के स्वभाव उनकी प्रवृत्तियों, उनके लोक साहित्य में लोक विश्वासों, मिथकों तथा उनके लोक साहित्य की बनावट व बुनावट के बारे में जान सकेंगें तथा साथ ही आप गढ़वाली लोक साहित्य के उद्भव एवं विकास के क्रमबद्ध इतिहास को भी जान सकेंगे.

10.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

10.3.1 गढ़वाल और गढ़वाली लोक मानस

हरिकृष्ण रतूड़ी के अनुसार, "बावन गढ़ों के कारण इस प्रदेश का नाम गढ़वाल पड़ा है। लगभग 1500 ई. में राजा अजयपाल ने इन बावन गढ़ों को जीतकर सबकों अपने राज्य में मिला दिया। तब से इस पूरे पर्वतीय प्रदेश को जिसमें वे बावनगढ़ थे गढ़वाल कहा जाने लगा।, एच0जी बाल्टन ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटिस गढ़वाल गजेटियर' में बहुत सारे गढ़ों वाला अंचल (गढ़वाल) प्रकारान्तर से कहा है। पातीराम ने अपनी किताब 'गढ़वाल एन्सेन्ट एंड मार्डन' में 'गढ़पाल से गढ़वाल' नाम पड़ा स्वीकार किया है। डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश' ने अपनी पुस्तक गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य में लिखा है, 'मेरी मान्यता है कि गढ़वाल शब्द गडवाल से निकला है। 'गड् और वाड' ये दोनों शब्द वैदिक संस्कृत के हैं। और इनका गढ़वाली भाषा में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है'।

'गाड़' बड़ी नदी और 'गड़' छोटी नदियों जैसे -दुग्गड, लोधगड आदि। यहाँ अनेक गड़ छोटी नदियाँ हैं। इसलिए गड़वाल छोटी-छोटी असंख्य नदियों का प्रदेश गढ़वाल हुआ। वाल-वाला। वाल शब्द गढ़वाली में बहुत प्रयुक्त होता है। जैसे -सेमवाल, डंगवाल आदि।

कविवर भूश ण ने भी अपनी एक कविता में इस भूभाग के लिए 'गडवाल' शब्द का प्रयोग निम्न पद्य में किया है-

"सुयस ते भलो मुख भूश ण भनैगी वाटि
गडवाल राज्य पर राज जो बखानगो।''

यहां के मूल निवासी कौन थे, यह कहना कठिन है। प्रागैतिहासिक काल में यहां कक्ष-किन्नर, गन्धर्व, नाग, किरात, कोल, तंगण,कुलिन्द, खस आदि जातियॉ निवास करती थी। इस के मध्य भाग में कोल, भील और राजस्थान, गुजरात,महाराष्ट्र और बंगाल से यहां बसी हुई जातियॉ निवास करती है। जिन्हें अब गढ़वाली कहते हैं। वर्तमान में उत्तर भारत के अनेक नगरों में रहने वाले लोग यहाँ बसने के लिए ललायित रहने लगे हैं। यह यहाँ की संस्कृति ,प्राकृतिक छटा और शान्त वातावरण का प्रभाव माना जा सकता है । गढ़वाली लोक मानस, भोला-भाला, आस्तिक,प्रकृति प्रेमी, शान्त और परम्परावादी है। वह लोक अनुश्रुतियों, रूढ़ियों,देवीदेवताओं की पूजन की विविध परम्पराओं और वीर योद्धाओं, प्रेमियों, धार्मिकों के चरित्र से प्रभावित

रहता है। अनेक वाह्य समागतों के गढ़वाल में बस जाने पर अब गढ़वाली जनमानस उनकी संस्कृति को भी अपनाने लग गया है। विवाह के अवसरों पर 'पंजाबी भाँगडा' गुजराती 'गरबा' राजस्थानी नृत्यगान भी लाकप्रिय हाते जा रहै हैं। बाहर से आए वाद्य वादक, बैंड की धुन में गढ़वाली गीतों को ऐसे गाते और बजाते हैं जैसे वे वर्षो से यहीं बसे हों। गढ़वाली जनमानस ने अपनी परम्पराओं के साथ, देव पूजन आदि में और त्योहारों की रीति नीतियों में भी भारी परिवर्तन करके अपने मिलनशील स्वभाव और घुलनशील संस्कृति का परिचय दे दिया है। गढ़वाली लोक मानस की भाषा का नाम भी इस प्रदेश के नाम के अनुसार 'गढ़वाली' ही है। गढ़वाल की भाषा गढ़वाली। गढ़वाली में वैदिक संस्कृत, और शौरसेनी प्राकृत के शब्द अधिक संख्या में मिलते हैं। द्रविड़ भाषा के शब्द और उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी तथा राजस्थानी, गुजराती,महाराष्ट्री भाषाओं के अनेक शब्दों को गढ़वाली जनमानस ने अपनी भाषा में स्थान दिया है। अब वे इस भाषा में ऐसे घुल-मिल गए हैं कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व सरलता से पता नहीं लगता है। भाषा के साथ यहॉ का साहित्य भी बंगाली, राजस्थानी,और गुजराती साहित्य से आंशिक प्रभावित जान पड़ता है।

यहाँ की वीरगाथाएं, लोककथांएं और पवाड़ों का स्वर सरगम बहुत कुछ राजस्थानी से प्रभावित लगता है। वीरता, प्रेम, प्रतिज्ञा पालन, धर्म रक्षा, दैवीशक्तियों पर विश्वास, जादू-टोना, नृत्यगान में अभिरूचि आदि इसके प्रमाण हैं। प्रकृतिप्रेमी गढ़वाली लोक मानस की गंगा जी और चारोंधामों (बद्रीनाथ, केदार नाथ, गंगोत्री और यमनोत्री) में अगाध श्रद्धा है। देश की सीमा पर आज भी यहाँ के वीर सैनिक तैनात हैं जो कि देशभक्ति, और कर्तव्यपरायणता के प्रतीक बनकर गढ़वाली लोक मानस की एक दिव्य छवि, देश और विश्व के आगे रखते हैं। तथापि शराबखोरी,अकर्मण्यता आदि दुर्गुणों से भी यहां का लोकमानस मुक्त नहीं माना जा सकता है.

10.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक

गढ़वाली का लोक साहित्य गद्यात्मक और पद्यात्मक दो रूपों में प्राप्त होता है। बहुत-सा अलिखित साहित्य श्रुति परम्परा से बाजगियों, व पंडिंतों द्वारा रटा-रटाया होने से सुरक्षित है। यहाँ के लोक ने वीरों की गाथाओं को परम्परा से गा-गाकर सुरक्षित रखा, नानी ओर दादियों ने लोक कथओं,बालगीतों (लोरियों) और ऐणा-मेणा (पहैली और लोकोक्तियों) को बच्चों को सुना-सुनाकर जीवित रखा है। साथ ही जागरियों, और पवाडा गायकों ने देव गाथाओं तथा श्रंगार वीरता से भरे, गीतों तथा वार्ताओं व कथासूत्रों को सुरक्षित रखकर अपने कर्तव्य का पालन किया है। गढ़वाली के लिखित साहित्य को खोजने का काम अंग्रेज विद्वानों तथा अधिकारियों ने सर्व प्रथम किया।, मध्य पहाड़ी और गढ़वाली बोली लोक साहित्य के संकलन में एटकिन्सन के साथ उनके गढ़वाली विद्वानों का अवदान सराहनीय रहा है। जिनमें स्व0 तारादत्त गैरोला' पादरी मिस्टर ओकले, भजन सिंह, सिंह, डॉ. गोविन्द चातक आदि का नाम अग्रगण्य कहा जा सकता है। डा0 गोविन्द चातक ने जहॉ लोक गीत- और लोक कथाओं तथा लोक गाथाओं का संकलन किया, वहीं मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचन करके उसके स्वरूप तथा विकास को दर्शाया है। इन्होंने ही पहली बार लोक साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन

प्रस्तुत किया । चातक जी ने गढ़वाली लोक साहित्य को एक साथ अनेक पुस्तकों में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया है । डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने गढ़वाली के भाषा तत्व पर अनुसंधानपरक ग्रंथ लिखे (गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य) उनकी उल्लेखनीय पुस्तक है । सुप्रसिद्ध लेखक भजन सिंह,सिंह, जनार्दन काला, अबोध बंधु। बहुगुणा, डॉ. महावीर प्रसार लखेड़ा, कन्हैयालाल डंडरियाल,डॉ. प्रयाग दत्त जोशी,डॉ. जगदम्बाप्रसाद कोटनाला और डॉ.नन्दकिशोर ढौंडियाल ने गढ़वाली लोक साहित्य के लेखन एवं संवर्धन में उल्लेखनीय कार्य किया है।

10.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास

मोहनलाल बाबुलकर ने अपनी पुस्तक गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना में गढ़वाली लोक भाषा के लिखित विकास के पाँच चरण माने हैं ।(1) आरम्भिक युग (2) गढ़वाली युग (3) सिंह युग (4)पॉधरी युग (5)आधुनिक युग। वे लिखते हैं, कि गढवाली भाषा में लिखित परंपरा सन् 1800 से प्रारम्भ हुई प्रतीत होती है । इस संदर्भ में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। कई विद्वान गढवाली भाषा की लिखित परम्परा सन् 1850, तो कोई 1852, तथा कोई 1900 ई. को आधुनिक युग,अथवा आरम्भिक युग मानते हैं । प्रारम्भ की रचनाएं हरिकृष्ण दौर्गादत्ति, हर्षपुरी लीलानन्द कोटनाला की हैं । सन् 1892 में गढवाली भाषा में मिशिनरियों ने बाईबिल प्रकाशित की, और गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल की गढ़वाली हितोपदेश छापी । प्रारम्भिक युग की दो कवितायें , चेतावनी,और 'बुरो संग'(हर्षपुरी) जी की है । गढवाली युग गढवाली पत्र के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है । 1905 में गढवाली के अंक में प्रकाशित 'उठा गढ़वालियों' सत्यशरण रतूड़ी की रचना थी, जिसने गढवाली मानस को झकझोर दिया था । चन्द्रमोहन रतूड़ी, आत्माराम गैरोला, तारादत्त गैरौला, गिरिजादत्त नैथानी, विश्वम्भर दत्त चन्दोला बल्देव प्रसाद शर्मा 'दीन' की रामी तारादत्त गैरोला की सदेई और योगेन्द्र पुरी की फुलकंडी, चक्रधर बहुगुणा की रचना मोछंग तोताकृत गैरोला का प्रेमीपथिक भवानीदत्त थपिलियाल के, जयविजय और प्रहलाद नाटक ने गढ़वाली के पद्य और नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि की । गढवाली छन्दमाला (लीलानन्द कोटनाला) तथा गढ़वाली पखाणा(शालीग्राम वैष्णव) की कालजयी कृतियाँ हैं । भजन सिंह 'सिंह' अपने कृतित्व से एक युग प्रवर्तक कवि और लेखक के रूप में गढवाली लोक साहित्य में अवतरित हुए । उनका युग उनके नाम से ही ('सिंह युग') कहलाने लगा. इस कालखंड के लोक साहित्यकारों में भजनसिंह,सिंह के अतिरिक्त कमल साहित्यलंकार , विशालमणि शर्मा, ललिताप्रसाद 'ललाम' सत्यशरण रतूड़ी उल्लेखनीय हैं । पांथरी युग के कर्णधार भगवती प्रसाद पांथरी थे । उनकी रचना बजवासुरी के बाद भगवतीचरण 'निर्मोही' की हिलांश पुरूषोत्तम डोभाल की वासन्ती तथा भगवतीप्रसाद पांथरी लिखित नाटक भूतों की खोह, पाँचफूल उल्लेखनीय कृतियाँ हैं । इस युग के स्वनाम धन्य कवियों में अबोधबन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद कंकाल सुदामाप्रसाद प्रेमी, सच्चिदानन्द कांडपाल, उमाशंकर 'सतीश' डॉ. पुरूषोत्तम डोभाल , आदित्य राम दुदपुड़ी, महावीर प्रसाद गैरोला, जीतसिंह नेगी और डॉ. गोविन्द चातक उल्लेखनीय हैं । आधुनिक युग के गढवाली

लोक साहित्यकारों में नरेन्द्र सिंह नेगी, मधुसूदन थपलियाल,कुटुज भारती, निरंजन सुयाल,लोकेश नवानी, रघुवीर सिंह रावत 'अयाल' , महैन्द्र ध्यानी और चन्द्र सिंह राही प्रमुख हैं

10.3.4 'गढ़वाली लोक' साहित्य का वर्गीकरण

(क) लोक गाथा - गढवाली लोक साहित्य को विशेष कर लोक गाथाओं को डॉ. गोविन्द चातक ने चार भागों में बाँटा है-

(1) धार्मिक गाथाएं (2) वीरगाथाएं (3) प्रणय गाथाएं (4) चैती गाथाएं। इनमें अधिकांश धार्मिक गाथाओं का आधर पौराणिक है। वीरगाथाओं में तीलूरौतेली, लोदी रिखोला, कालू भंडारी,रणूरौत, माधोसिंह भण्डारी की प्रमुख गाथाएं हैं। प्रणय गाथाओं में, तिल्लोगा (अमरदेव सजवाण) राजुला मालूशाही तथा धार्मिक गाथाओं में पाण्डव गाथा, कृष्ण गाथा,कुद्रू-विनता, और सृष्टिउत्पत्ति गाथा मुख्य है।

(ख) लोक कथा - कथा शब्द संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है 'कहना'। कहना से ही कहानी बनी है। कथसे 'कथा'शब्द निष्पन्न हुआ है। लोक अपनी बात को अपने कथन को जिस विधि से कहता है वही लोककथा है। लोक कथा में लोक मानस की अपनी व्यथा-कथा और कल्पना, तथा रहस्य-रोमांच, विश्वास,रीति- रिवाज व्यवस्था, रूढ़ि और मिथक (लोक विश्वास) कार्य करते हैं। इन्हीं से लोक का हृदय कथा बुनता है। उसमें प्राण डालता है और लोक ही उसे मान्यता भी देता है। लोक कथाएं लोक का प्रतिनिधित्व करती हैं। गढवाली में कथा-कानी, बारता तीनों शब्दों का व्यवहार होता है। गढ़वाली की लोक कथाएं अपने वर्ण्य विषय के कारण निम्नवत् वर्गीकृत हैं -1 'देवी-देवताओं की कथाएं , 2 परियों, भूतों,प्रेतों की कथाएं 3 आँछरियों की कथाएं 4 वीरगाथाएं 5 पशु पक्षियों की कथाएं 6 जन्मान्तर-पुनर्जन्म की कथाएं 7 रूपक और प्रतीक कथाएं 8 लोकोक्ति अप्सराओं की कथाएं। पक्षियों की गढ़वाली कथाएं निम्न रूपों में वर्गीकृत की गई हैं -

पक्षीकथाएं - चोली, घिडूडी,घुमती, कौआ, पता पुरकनी, जिस्ता, हाथी-टिटों, समुद्रभट्कुटरू, करैं, कठफोड़वा, सतरपथा-पुरै-पुरै, सौत्यापूत पुरफुरै, तिलरू, स्याल।

पशुकथाएं - स्याल हाथी की कथा /स्याल बाघ की कथा/स्याल भगवान की कथा/ ऊँट हाथी की कथा , बाघ और बटोही की कथा/हिरण स्याल और कौआ/ स्याल और तीतर।

ज्ञान नीति की कथाएं -अच्छी सलाह / दुखः में चितैकी, वफादार कुत्ता,महत्त्वाकांक्षा आदि इस प्रकार लोक कथा के अन्तर्गत कतिपय लोक कथाएं (देव विषयक) भी गिनी जा सकती हैं ।

व्रत कथाएं - पूर्णमासी,बैकुठं चतुर्दशी, शिवरात्री, संकटचौथ आदि की कथा भी गढ़वाली लोक साहित्य में प्रकारान्तर से प्राप्त होती है।

व्यंग्य कथाए - कन्हैयालाल डंडरियाल की हास्य व्यंग्य कथा के अन्तर्गत 'सत्यनारायण की कथा' इसका उदाहरण है। वर्तमान समय में श्री नरेन्द्र कठैत की व्यंगात्मक कथाएं /कहानियाँ बहुचर्चित हो रही हैं जिसमें उनकी 'धनसिंगै बागी फस्ट' कुल्ला-पिचकरी,कृतियाँ उल्लेख्य हैं।

10.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा

गढ़वाली के लोक साहित्य से पहले हम आपको गढ़वाली भाषा के लिखित रूप से परिचित कराएंगें। गढ़वाली भाषा की पहली विशेष ता यह है कि गढ़वाली उकार बहुला भाषा है और इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। गढ़वाली भाषा के आरम्भिक लिखित रूप का पता देवप्रयाग मंदिर के सन् 1335 के महाराजा जगतपाल के दान पात्र से चलता है यह विवरण गढ़वाली भाषा में निम्नवत् है -

"श्री संवत्1412 शाके 1377 चैत्रमासे शुक्ल पक्षे चतुर्थी तिथौ रविवासरे जगतीपाल रजवार ले0 शंकर भारती कृष्ण भट्ट कौं रामचन्द्र का भट्ट सर्वभूमि जाषिनी कीती जी यांटो मट सिलापट"।

अब देवलगढ़ में महाराज अजयपाल (1460-1519) का लेख देखिए

'अजैपाल को धरम पाथो भंडारी करौं उक'।

अब महाराजा पृथ्वीशाह (1664) का गढ़वाली में लिखा लेखांश प्रस्तुत है "श्री महाराजा पृथ्वीपति ज्यू का राज्य समये श्री माधोसिंह भंडारी सुत श्री गजेसिंह ज्यू की पलि परम् विचित्र श्री मथुरा वौराणी ज्यूल तथा तत्पुत्र अमरसिंह भंडारी ज्यूल पाट चढ़ाया प्रतिष्ठा कराई....." इन लेखों में दी गई गढ़वाली भाषा को पढ़कर अब आप जान गए होंगे कि इसमें गढ़वाली के साथ संस्कृत शब्दों की भरमार है

'ग्रियर्सन' ने गढ़वाली के विषय में लिखा है कि "यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहाँतक की परगनै की बोली का भी अपना भिन्न रूप है, प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है फिर भी गढ़वाली का अपना एक आदर्शरूप (स्टैण्डर्ड) है'।'' ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- श्रीनगरी 2- नागपुरिया 3-बधांणी, 4-दसौल्या 5-राठी 6- टिहरियाली 7- सलाणी 8-माझ-कुमैय्या।

"किसी आदमी के दो लड़के थे'' इस वाक्य में इन भाषाओं के रूप देखिये-

1- श्रीनगरी- कै आदमी का द्वी नोन्याल छया।

2- नागपुरिया- कै वैख का दुई लौंडा छया।

3- दसौल्या- कई आदमी का दुई लडीक छया।

4- बधाणी- कै आदमी का द्वि छिचौड़ी छिया।

5-राठी- कै मनख की द्वी लौड़ छाया।

6- टिहरियाली- एक झणा का द्वी नौन्याल थया।

7-सलाणी- कै झणा का दुई नौना छया।

इस उदाहरण से आप समझ गए होंगें कि गढ़वाली की क्रियाएं एवं वाक्य स्थान-स्थान व (प्रत्येक जिले) में भिन्न हैं। फिर भी वे अच्छी तरह समझ में आ जाती हैं। संस्कृत से बिगड़े हुए तद्भव और शौरसेनी प्राकृत से ये रूप प्रभवित प्रतीत होते हैं। अब हम आपको गढ़वाली के लिखित लोक साहित्य की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित जानकारी दे रहै हैं।

10.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य

हर्षपुरी जी जिनके विषय में आप पहले भी अध्ययन कर चुके हैं उनके द्वारा लिखित कविता 'बुरोसंग' गढ़वाली में लिखित पहली गेय कविता है। जिसकी बानगी (स्वरूप) इस प्रकार है-

" अकुलौ माँ मायाँ करी कैकी बी नी पार तरी।
बार विधा सिर थरी,वैकु वि कू रोयेंद" ॥

इन्हीं का एक विरह गीत देखिए -

"आयो चैतर मास सुणा दौं मेरी ले सास।
वण-वणूडे सबी मौलीं गैन चीटे मौलिगैंन घास ॥
स्वामी मेरो परदेश गै तो द्वी तीन होई गैन मास।
अज्यू तई सुणी नीमणी ज्यू को ह्वेगे उत्पास ॥
जौ का स्वामी धरू छन तौंको होयुं छ विलास।
रंग-बिरंगे चादरे-ओढ़ी अड़ोस-पड़ोस-सुहास" ॥

सन् 1905 में गढ़वाली पत्र के प्रकाशन के बाद का कालखंड "गढ़वाली युग" के नाम से जाना जाता है। गढ़वाली युग के कवि सत्यशरण रतूड़ी की कविता द्रष्टव्य है।

" उठा गढ़वालियों, अब त समय यो सेण को नीछ
तजा यही मोह-निद्रा कू अजौं तैं जो पड़ी हीं छ।
अलो! अपणा मुलक की यीं छुरावा दीर्घ निद्रा कु
सिरा का तुम् इनी गेहरी खड़ा या जींन गेर याल्ये
अहो ! तुम भरे त देखा कभी से लोक जग्यां छन
जरा सी ऑख त ख्वाला कनोअब घाम चमक्यूँछ"।

तोता कृष्ण गैरोला के प्रेमी पथिक में कल्पना और रसान्विति इतनी सुन्दर है कि कविता में प्रकृति का बिंब स्पष्ट दृष्टि गोचर होने लगता है मन्दाक्रान्ता छन्द नें उनकी कविताओं पर चार चाँद लगा दिए हैं -

चंदा आध सरद पर थै सर्कणी बादल्यूँमा
कॉसी की-सी थकुलि रड़नी खत्खली खूल्याँमा।
निन्योर ये निजन बण का नौवल्या गीत गाणी
शर्दे रातैं शरदि लगणी, शीतली पौन-पाणी ॥

अर्थात् आधा चन्द्रमा आसमान में बादलों के बीच में कॉसे की थाली के समान रगड़ खाते हुए चल रहा है। नीचे धरती में निम्यारे

झिल्लीयॉ निर्जन वन में (झन-झन करते हुए) नए नवेली के गीत गा रहै हैं। शरद की रातों में सर्दी बढ़ जाने से पानी और हवा भी ठंडी हो गई है।

सिंह युग अथवा समाज सुधार युग - इस युग के मूर्धन्य कवि भजन सिंह 'सिंह' थे। उनके नाम से गढ़वाली कविता साहित्य का यह युग सिंह युग कहलाया। इस युग की कविताएं छन्दबद्ध,

अलंकृत और समाज सुधार की भावना से ओत- प्रोत हैं । कविवर भजन सिंह 'सिंह' के सिंहनाद की कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

फ्रांस की भूमि जो खून से लाल छ
उख लिख्यूँ खून से नाम गढ़पाल छ
रैंदि चिन्ता बडौं तै बड़ा नाम की
काम की फिर्क रैंदी न ईनाम की
राठ मा गोठ मौं को अमर सिंह छयो
फ्रांस को लाम या भर्ति ह्वै की गयो।
ज्यौं करी धर मूं लाम पर दौड़िगे
फ्रांस मा, स्वामि का काम पर दौड़िगे।
नाम लेला सभी माइ का लाल को
जान देकी रखे नाम गढ़वाल को।

इस तरह सिंह युग की सभी कविताएं प्रायः देशभक्ति और बलिदान के साथ ही प्रकृति चित्रण तथा समाज सुधर-उद्यम, पुरूषार्थ आदि से ओत प्रोत हैं। आत्माराम गैरोला 'गढ़वाली युग' की एक श्रेष्ठ काव्य विभूति माने जाते हैं। उनकी कविता "पंछीपंचक" से उदाहरण प्रस्तुत है -

अरे जागा कागा कब बिटि च कागा उड़ि उड़ी
करी काका काका घर घर जागोणू तुम सणी।
उठी गैन पंछी करण लगि गैन जय-जय
उठा भायों जागा भजन बिच लागा प्रभुजि का।
घुमूती घूगूती घुगति घुगता की अति भली
भली मीठी बोली मधुर मदमाती मुदमयी।

ग्ढ़वाली में रचित यह कविता बहुत बड़ी है और शिखरणी छन्द में रची गई है । इसकी काव्यात्मक लय और शब्दावली संस्कृत के प्रभाव को लिए है।

बलदेव प्रसाद 'दीन' संवाद काव्य लिखने में अधिक सफल रहै हैं, उनकी लोक प्रिय रचना 'रामी' (बाटा गोडाई) और जसी आज भी गढ़वाली जनता के मुख से सुनी जा सकती है। रामी का संक्षिप्त काव्यरूप प्रस्तुत है -

बाटा गोडाई क्या तेरो नौं छे, बोल बौराणि कख तेरो गौं छ?
बटोही-जोगी ! न पूछ मैकू। केकु पुछदि, क्या चैंद त्वैकू ?
रौतु की बेटि छौं, रामी नौछ। सेठु की ब्वारी छौं,पालि गौंछ।।

विरह गीत लिखने में गढ़वाली कवि अधिक सफल हुए हैं क्योंकि पर्वतीय नारी की विवसता पति के परदेश जाने के कारण और बढ़ जाती है । गढ़वाल का प्राकृतिक सौदर्य, विरहणी नायिकाओं (नवविवाहिताओं) को अधिक सताता है। कवियों ने इन गढ़वाली बिरहिणियों के हृदय की चीत्कार और कर्मव्यथा को निस्सन्देह अपनी कविताओं और काव्य रूपों (खण्ड

काव्य) (गीति काव्य) या (गीतिनाट्य) में प्रखर स्वर दिया है। पुरूश की विरह दशा का वर्णन चक्रधर बहुगुणा ने अपने कविता संग्रह मोछंग की छैला कविता में इस प्रकार किया है -

जिकुड़ि धड़क धड़क कदी, अपणि नी छ वाणी।
छैला की याद करी उलरिगे परागी।
पखन जखन सरग गिडिके, स्यां स्यां के विजुलि सरके
ढॉडु पड़ं तड़-तड़ के,रूण झुण के पाणी
छैला की याद करी उलगिरे पराणी।।

पांथरी युग - भगवती प्रसाद पांथरी की कृति 'बजबांसुली' से यह युग शुरू होता है। इस परम्परा में 'भगवतीचरण' निर्मोही' की 'हिलांस' काव्यत्व की दृष्टि से उच्च कोटि की कृति मानी गई है। कहानी संग्रह भी इस युग में खूब निकले 'पाँच फूल' पांथरी जी का कहानी संग्रह है। भूतों की खोह, 'वासन्ती'आदि उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस युग के लेखकों में अबोधवन्धु बहुगुणा ने 'तिड़का,मण्डाण,घोल' अन्तिमगढ़ आदि प्रख्यात रचनाओं से अपनी विशेष पहचान बनाई थी। उन्होंने गढ़वाली का पहला महाकाव्य "भूम्याल" भी रचा। कन्हैयालाल डंडरियाल का महाकाव्य नागरजा' इसी युग का प्रदेय है। भले ही यह काव्य बहुत बाद में प्रकाशित हो पाया। कुएड़ी, अज्वाल,मंगतु उनकी श्रेष्ठ काव्य कृतियाँ हैं। उनके गढ़वाली नाटक जो अभी तक अप्रकाशित हैं दिल्ली और मुम्बई में मंचित किए गये। उनका व्यग्य 'बागी उप्पन की लड़ै' लोक प्रिय खण्ड काव्य है। उनका 'नागरजा' एक कालजयी गढ़ावाली महाकाव्य है। गिरधारी प्रसाद 'कंकाल', सच्चिदानन्द कांडपाल, डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' डॉ. गोविन्द 'चातक' डॉ.पुरूषोत्तम डोभाल, जीत सिंह नेगी आदि इस युग के श्रेष्ठ गढ़वाली साहित्यकार माने जाते हैं। इस काल खण्ड में मोहनलाल बाबुलकर एक समीक्षक के रूप मे उभरे हैं। इस युग में गढ़वाली साहित्य में शिल्प की दृष्टि और वर्ण्य विषयों की विविधता से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। गढ़वाली में लिखे नाटब्कों की संख्या के विषय में बाबुलकर जी का मत है कि "इनकी संख्या लगभग 67 है। नाटक लेखकों में ललित मोहन थपल्याल, स्वरूप ढौडियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, महावीर प्रसाद गैरोला, उमाशंकर सतीश और नित्यानन्द मैठानी प्रमुख हैं।

आधुनिक युग:- डॉ. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला इसे चतुर्थ चरण कहते हैं। इस कालखंड में चन्द्रसिंह राही का 'रमछोल' 2382 प्रकाश में आया। आत्माराम फोन्दानी का गीत संग्रह 'रैमोडी' के गीतों ने लोकरंजन किया उसके बाद 'चिन्मय सायर' मधुसूदन प्रसाद थपलियाल, निरंजन सुयाल, कुटजभारती के काव्य प्रकाश में आए। मधुसूदन प्रसाद थपलियाल ने गढ़वाली में गजल विधा को आरम्भ किया। उनकी काव्य पुस्तकें 'कस-कमर' और 'हर्षि-हर्वि' लोक प्रिय रही हैं। हास्य व्यंग्य विधा में कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा बनाए काव्य मार्ग पर सर्व प्रथम (रघुवीर सिंह 'अयाल') चले। अयाल जी के दो काव्य गुढयार (1988) पूर्णतः हास्य -व्यंग्य के छलकते रस कलश हैं। हास्य व्यंग्य विधा को ललित केशवान ने 'दिख्यांदिन तप्यांघाम' (1994) रचकर चरम शिखर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। लोकेश नवानी की 'कभी दिल्ली

निजौं' सुप्रसिद्ध लोक प्रिय रचना स्वीकारी गई। कतिपय नए रचनाकार भी लगातार वर्तमान काल की समस्याओं को अपनी हास्य-व्यंग्यमय कविताओं को व्यंजना और वक्रोक्ति द्वारा अभिव्यक्त करने में सफल हो रहै हैं। नरेन्द्र कठैत का साहित्य इसका प्रमाण है। बाल साहित्य की कमी गढ़वाली में पहले से ही बनी रही है। अबोध बन्धु के 'अंख-पंख' के बाद कोई उत्कृष्ट बाल रचनाएं प्राप्त नहीं हुई है। नए लेखक भी इसकी उपेक्षा कर रहै हैं

इस कालखण्ड के साहित्य की सूची आपके सरल अध्ययन हेतु प्रस्तुत की जा रही है।

	कृति का नाम	कवि/लेखक	प्रकाशन वर्ष
1-	द्वी ऑसू	सुदामा प्रसाद प्रेमी	सन् 1962
2-	गढ शतक	गोविन्द राम शास्त्री	'' 1963
3-	उज्याली	शिवानन्द पाण्डे	'' 1963
4-	रंत रैवार	गोविन्द चातक	'' 1963
5-	विरहिणी शैलबाला	पानदेव भारद्वाज	'' 1964
6-	वट्वे	सुदामाप्रसाद प्रेमी	'' 1971
7-	अग्याल	सुदामापसाद प्रेमी	'' 1971
8-	माया मेल्वड़ी	भगवान सिंह रावत	'' 1977
9-	पितरूकू रैवार	गोकुलानन्द किमोठी	'' 1979
10-	गढ़गीतिका	बलवन्त सिंह रावत	'' 1980
11-	समलौण	जग्गू नौटियाल	'' 1980
12-	कुयेड़ी	कन्हैयालाल डंडरियाल	'' 1990
13-	सिंह सतसई	भजन सिंह 'सिंह'	'' 1985
14-	गंगू रमोला	बृजमोहन कवटियाल	'' 1997
15-	पार्वती	अबोधबन्धु बहुगुणा	'' 1994

10.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य

उत्सव प्रिय गढ़वाली जन-मानस का चित्त जहां रमणीय अर्थवाली गीतिकाओं से आनन्दित होता रहा है, वहीं नाटकों में जो दृश्यऔर श्रव्य दोनों होते हैं से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। नाटक देखने के लिए जितनी भीड़ जुटती है उतनी कविता सुनने के लिए नहीं। महाकवि कालिदास ने इसी लिए नाटक को महत्त्व प्रदान करते हुए लिखा है, 'काव्येषु नाटकं रम्यं' अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय है। महर्षि भरत ने, 'लोकःविश्रान्ति जनन नाट्यं- लोक की थकान मिटाने वाला,आनन्द प्रदान करने वाला, व्यवहारिक ज्ञान देने वाला, तत्व नाटक को माना है। गढ़वाली का नाट्य लेखन भवानी दत्त थपल्याल के 'जय विजय' और प्रह्लाद नाटक से शुरू माना जाता है। विश्म्भर दत्त उनियाल का 'बसन्ती', ईश्वरीदत्त जुयाल का परिवर्तन भगवती प्रसाद पांथरी के दो नाटक (क) भूतो की खोह (ख) अधः पतन, तथा गोविन्द चातक का 'जंगली फूल' अबोध बन्धु के नाटक- 'कचविडाल' 'अन्तिमगढ़' माई को लाल नित्यानन्द

मैठानी की 'चौडण्डी' प्रेम लाल भट्ट का 'बॅट्वरू' कन्हैयालाल डंडरियाल के नाटक-कन्सानुक्रम, राजेन्द्र धस्माना का 'अर्धग्रामेश्वर' विश्वमोहन बडोला का 'चैतकी एक रात' ललितमोहन थपलियाल का नाटक 'एकीकरण' तथा उर्मिल थपलियाल का 'खाडू लापता' आदि सुप्रसिद्ध गढ़वाली नाटक हैं। इनके अतिरिक्त जीत सिंह नेगी का नाटक 'डॉडा की अएड' गोविन्द राम पोखिरियाल 'मलेथा की कूल' आदि उल्लेख्य हैं।

10.3.8 कहानी एवं उपन्यास

गढ़वाली में सर्वाधिक संख्या में कहानी लिखी गई हैं। कहानीकारों में रमाप्रसाद पहाड़ी, भगवती प्रसाद जोशी 'हिमवंतवासी' डॉ. उमेश चमोला, हर्ष पर्वतीय आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ. गोविन्द चातक ने सर्वाधिक कार्य नाटकों पर किया है। अब हम आपके अध्यनार्थ गढ़वाली नाटकों की भाषा के कुछ अंश संक्षेप में प्रस्तुत कर रहै हैं -

प्रहलाद नाटक की भाषा:-

'कालजुगी,माराज मी पर गुस्सा न होवन। सरकार, मैंत सब ताड़नाकर चुक्यूॅ। ये पर बार-बार अर गुरू जी न भि ये तैं दिखाये खूब धुधकार-फुटकार,। परन्तु ये न जरा भर भिन छोडि बोलणा, नारेण-हरिकर्तार! यां ते महाप्रभु! कुछ आपही कराये को बिचार हमते होई गयां ये ते बिलकुल लाचार।'' -

अब विश्म्भर उनियाल के वसन्ती नाटक की काव्यभाषा प्रस्तुत है -

"दिदि, देख दौं हम लोंगू या कतना बुरो रिवाज छ कि नौन्यूं को ब्यौ बुडयो से कर देंदन। भई इना करण से त जैं दिन नोंनि निजै वे दिन हि दतेरे द्योन त अच्छो हो। जिंदगीभर का रोण-धोण से नि होण हि भलो''।

अब भगवतीप्रसाद पांथरी के नाटक 'अधःपतन' के संवाद देखिए -

"नैनुक्य सोनाकि कुंजी हि प्यार को दरवाजू खोल सकदी? पर क्य कंगाल कि हृदय कि अभिलाषा धूल मा हि लिपटण का होन्दी? वे का प्यारकी कुलाई कि डालि क्या दुसरूं का सुख की होलि। जव्नौण का हि लपकदि?''

राजेन्द्र धस्माना के 'अर्धग्रामेश्वर' की भाषा देखिए -

सूत्रधार- "अब ब्वनु क्या च माराज सुन्दरता मा यूड़ा दि छन हमरि ब्वनाच अब खुणैं भग्यान वक्नन्दा तै भग्यान भि छिन,अर गरीब ब्वलन्दा ते गरीब हुई अर एक चित दिखे जा।

इस प्रकार गढ़वाली नाटकों की भाषा सशक्त और अपनी मांटी की सौंधी गंध लिए हुए है।

10.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य

लोकवार्ताएं केवल देवी-देवताओं के जागर में नृत्यमयी उपासना के बीच सुनाई जाती है। प्रायःरात ही उसके लिए उपयुक्त होती हैं रात में देवता का नृत्य देखने के लिए एकत्र हुए लोगों के मनोरंजन के लिए कभी वार्ताएं आवश्यक समझी जाती थीं। आज भी लोकवार्ता का महत्त्व वैसे ही बना हुआ है जैसे पहले था। लोकवार्ता का काई भी ज्ञाता व्यक्ति मंडाण अर्थात् देववार्ता

सुनने और देवता का नृत्य देखने के लिए एक समूह के बीच में बैठते हैं और अवसर पाते ही समूह के बीच से उठकर दोनों हाथों से अपने कानों को दबाकर या उनके छिद्रों में उंगली डालकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ता है वह वार्ता के आमुख के रूप में ढ़ोल या डमरू(डौंर) बजाने वाले औजी (वादक) को संबोधित करता है।

देवी देवताओं की वार्ता के समय सभी श्रोता एवं दर्शक भक्तिभाव से बैठे रहते हैं। देवी-देवताओं के समान ही अनिष्ट कारिणी शक्तियों जैसे (भूत,आँछरी) आदि की मनौती के लिए भी उन्हें नचाने खेलवाने के लिए नृत्य के साथ गीत गाए जाते हैं। उन वार्ताओं में कथा का अंश बहुत होता है और उसको रांसो कहा जाता है। डॉ. गाविन्द चातक इसे 'रासो' से उत्पन्न मानते हैं उनका मानना है कि बोल-चाल में रासो का अर्थ धर्म कथा होता है। कहानी का ध्येय मूलतः मनारंजन होता है लेकिन रासो मनुष्यों को देवताओं और आँछरी,आदि के भय से निर्मुक्त करने की नृत्यमयी उपासना है। लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य के अन्तर्गत -गढ़वाली का वृहत अलिखित साहित्य लोकवार्ता के रूप में आज भी मौजूद है। एटकिन्सन ने भी गढ़वाल के इतिवृत्त लेखन में लाकवार्ता साहित्य की मदद ली। उसने यहां की धार्मिक गाथाओं, तथा यहाँ के ऐतिहासिक अनैतिहासिक वीरों, राजाओं, महाराजाओं, वीरांगनाओं के गीतों को लोगों के मुख से सुना और उनसे यहां की सभ्यता-संस्कृति व भाषा का विश्लेषण किया। गढ़वाली लोकवार्ताएं राजस्थान,गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल के लोकवार्ता साहित्य के समकक्ष है। गढ़वाल की देव गाथाओं में भूगोल के साथ-साथ इतिहास की जानकारी भी मिलती है। विशेष कर तंत्र मंत्र और देव गाथाओं में पौराणिक भूगोल का वर्णन मिलता है जैसे - देवलोक जाग नागलोक जाग ! खारा समुद्र जाग, अन्तरिक्ष लोक जाग। इनके साथ ही गढ़वाल के प्रमुख पर्वत,नदी,घाटी, गुफाएं वन आदि का वृतान्त मिलता है। यहां के भड़ों और राजाओं की विरूदावली व वंशानुचरित भी गढ़वाली लोकवार्ता के अन्दर मिल जाते हैं।

10.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- गढ़वाली लोक साहित्य से परिचित हो गए होंगे.
- गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास से भी परिचित हो गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास प्राप्त कर चुके होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं को जान गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य के विभिन्न युगों(काल-खंडों) को जान गए होंगे

10.6 शब्दावली

1. सृजित - बनना , निर्मित होना
2. आस्तिक - ईश्वर पर आस्था रखने वाला
3. मानस - मन, हृदय

4. मूर्धन्य - बड़ा, विशेष
5. चीत्कार - चीखना, चिल्लाना
6. उत्कृष्ट - अच्छा, सर्वश्रेष्ठ

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्र0उ0 1 (क) सोमदेव (ख) गुणाड्य (ग) पातीराम (घ) योगेन्द्र पुरी

प्र0उ0 2 (क) मिथक -पुराने लोक विश्वासों,पौराणिक कथा एवं गाथाओं को 'मिथक' साहित्य कहा जाता है। मिथक में सत्य का विस्थापन होता है। जैसे हम कहें उषा के बाद सुर्योदय होता है तो मिथक कार उसे कहता है -सूर्य उषा का पीछा करता है।

प्र0उ0 3 तीन प्रमुख पक्षी कथाएँ निम्नलिखित हैं:-

(1)भटकुटुरू (2) चोली (3)सतर पथा-पुरै-पुरै (4) पता-पुरकनी।

प्र0उ0 4 - अजयपाल का धर्मपाथो (अनाज मापने का बर्तन) भंडारियों के यहॉ है।'

प्र0उ0 5 - ग्रियर्सन ने गढ़वाली भाषा के विषय में कहा है कि 'यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहां तक कि परगने की बोली का भी अपना भिन्न रूप है। प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है । और गढ़वाली का अपना एक आदर्श (स्टैण्डर्ड) रूप है। ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं।

प्र0उ0 6 – "किसी आदमी के दो लड़के थे''। इसका रूप नागपुरी और बधाणी में निम्नवत् होगा -

(क) नागपुरिया बोली में - कै बैख का दुई लौंडा छया।

(ख) बधाणी बोली में -कै आदमी का दिव् छिचौड़ी छिया।

प्र0उ0 7 'सिंह युग' की गढ़वाली कविताओं की 4 विशेष ताएं निम्नलिखित हैं -

(1) सुधारवादी दृष्टिकोण (2)छन्दबद्ध कविताएं व गीत (3) लोक से जुड़ी गढ़वाली भाषा का काव्यात्मक प्रयोग (4) संवाद परकता।

प्रश्नोत्तर 8- बाटागोडाई (रामी) लोक गीत - लोक काव्य के स्वचिता का नाम है -बल्देव शर्मा 'दीन'।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2396, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डॉ. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास को विस्तारपूर्वक समझाइए .
2. गढ़वाली लोकसाहित्य के क्रमिक विकास की विवेचना कीजिए .

इकाई 11 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप
  11.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्त्व और सौन्दर्यानुभूति
  11.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं
  11.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य की विधाएं
11.4 सारांश
11.5 अभ्यास प्रश्न
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

गढ़वाली लोक साहित्य भारत के अन्य प्रादेशिक/आंचलिक लोक साहित्यों की अपेक्षा समृद्ध और विकासशील स्वभाव वाला साहित्य है। इसका कारण इसकी प्राचीन (पौराणिक विरासत) और हिमालयी वातावरण में समस्त भारत के लोगों की युग-युग से आस्था तथा यहां बसने की आत्मीय (अभिलाषा) भी प्रमुख है। यही कारण है यहां के लोक साहित्य में धर्म सहिष्णुता, सामाजिक सद्भाव और करुणा तथा मैत्री के साथ, प्रेम और युद्धवीरता तथा त्याग के अनेक उदहारण मिलते है। यहां के लोक साहित्य में सभी धर्मो के पति प्रेम और सद्भाव के कारण, उसके अन्दर कबीर, दादू, नानक, मोहम्मद, गोरखनाथ, राम-कृष्ण, मीरा और रैदास को समान भाव से साहित्य में स्थान मिला है। प्राचीन लोक साहित्य में 'कृष्ण' और पाण्डव प्रभूत मात्रा में वर्णित है। मन्दा भगवती, राजराजेश्वरी होने के कारण यहां के लोक साहित्य की आधेय और आधार है, वह देवी के रुप में लोक साहित्य की प्रत्येक विधा में स्थान पाए है।

काव्य, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य और लोकगीतों में हिमालयी प्रकृति, देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व़, किन्नर, नाग और नर तथा राक्षस भी आदर के साथ साहित्य में स्थान पाए दिखते है। यहां के पशु-पक्षी और वृक्ष लताएं भी मानव के सहचर है। वे यहां के लोक के अविच्छित अंग है। उन्हें यहां के लोकमानस से अलग हटाकर नहीं देखा जा सकता है।

इसके मौखिक साहित्य में ढोल सागर अनेक अश्रुत जागर गाथाएं, पवाड़े, विरुद आज भी अपने संग्रहकर्ताओं की बाट जोह रहै हैं। इन कलाओं को बहुत कुछ मात्रा में कुछ पुरखों ने अपनी पोथियों में लिखकर सुरक्षित किया तो कुछ को परम्परा से आवजी और पुरोहितों ने अपनी वाणी से रटकर सुरक्षित कर रखा है।

11.2 उद्देश्य

'गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरुप एवं समस्याएं', नामक इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप गढ़वाली लोक साहित्य से सम्बन्धित निम्नलिखित बातों को जान सकेंगे-

1. गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप कौन सा है ?
2. इसके अन्दर लोक साहित्य की किन-किन विधाओं में कार्य हो रहा है ?
3. परम्परागत लेखन और वर्तमानकालीन नए लेखन में किन-किन बातों में मूलभूत अन्तर आ रहा है ?
4. गढ़वाली लोक साहित्य के आगे वर्तमान में क्या-क्या चुनौतियां आड़े आ रही है ?
5. गढ़वाली में रचित प्रमुख महाकाव्य-खण्डकाव्य, गीति और मुक्तक काव्य कौन-कौन से है ?

11.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप

गढ़वाली लोक साहित्य की खोज के लिए अंग्रेज सर्वेक्षकों विलयम कुक व गिर्यसन आदि के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। मध्य पहाड़ी बागली पर एटकिन्सन के द्वारा किए गए कार्य को महत्त्वपूर्ण माना गया है। यहां के साहित्य को लिपिबद्ध करने और उसकी समग्र जानकारी एकत्र करके पुनः उसकी समीक्षा टीका करके फिर शोधपूर्ण विवेचना के साथ प्रकाशित करने वाले विद्वानों के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। इन विद्वानों में तारादत्त गैरोला, पादरी मिस्टर ओकले, आत्माराम गैरोला, यमुनादत्त वैष्णव, गोविन्द प्रसाद घिल्ड़ियाल, शिवनारायण बिष्ट, भजन सिंह 'सिंह', डॉ. गोविन्द चातक, डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' मोहनलाल बाबुलकर, शिवानन्द नौटियाल और महावीर प्रसाद लखेड़ा अग्रगण्य है। इन विद्वानों के प्रयास से इनकी पुस्तकों से गढ़वाली लोक साहित्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य की जानकारी मिलती है।

गढ़वाली लोक साहित्य पर अनेक शोध प्रबन्ध भी लिखे गये है। सर्वप्रथम डॉ. नन्द किशोर ढौडियाल ने जागर गीतों पर शोध प्रस्तुत किए तदनन्तर डॉ. प्रयाग जोशी ने पहली बार कुमाऊं और गढ़वाल की लोक गाथाएं संशिल्ष्ट विवेचन प्रस्तुतत किया। उन्होंने लोक गाथाओं में बहुत कुछ नया जोड़ा है। डॉ. उमाशंकर 'सतीश' ने जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुतत किया, मोहनलाल बाबुलकर ने पश्चिमी पहाड़ी की उप बोली जौनपुरी (जौनसारी) के लोक साहित्य एवं कला पर पहली विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया, विष्णुदत्त कुकरेती ने नाथ पंथ और गढ़वाल तथा बुद्धिराम बडोनी ने गढ़वाल के लोक काव्य पर प्रशंसनीय कार्य किया है। इसी श्रृंखला में 'गढ़वाली के सांस्कृतिक और सौन्दर्य शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य' विषय पर श्रीमती आनन्दी जोशी ने तथा गढ़वाल के साहित्य-संस्कृति पर स्कन्दपुराण का प्रभाव तथा चन्द्रशेखर बडोला ने गढ़वाली कहावतों का साहित्यिक, सांस्कृतिक अध्ययन उल्लेखनीय कार्य करके गढ़वाली लोक काव्य साहित्य को जीवन्तता प्रदान की है।

गढ़वाली लोकभाषा में आज विविध विद्याओं में साहित्य उपलब्ध है। गढ़वाल पद्य में गीत संग्रह, काव्य और निबन्ध प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। इनका पुराना साहित्य भी प्रचुरता से उपलब्ध है। पद्य विद्या में 1822 से 1900 तक संस्कृत का प्रभाव लक्षित होता है। गीत और कविता के पुराने लेखकों में तोताकृष्ण गैरोला, आत्माराम गैरोला, चक्रधर बहुगुणा, भगवती प्रसाद निर्मोही, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, मनोहर उनियाल 'श्रीमन', सदानन्द जखमोला 'सन्तत', विशालमणि शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। कहानी और निबन्ध लेखकों में डॉ. गोविन्द चातक, डॉ. महावीर प्रसाद गैरोला, मोहनलाल नेगी, प्रेमलाल भट्ट, दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल प्रसिद्ध है। नाटक विद्या के क्षेत्र में पुरुषोत्तम डोभाल, सुदामा प्रसाद 'प्रेमी' ललितमोहन थपल्याल, स्वरुप ढौड़ियाल, कन्हैयालाल डंडरियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, नित्यानन्द मैठानी और गोविन्द चातक उल्लेखनीय है। गढ़वाली लोक साहित्य के अन्य हस्ताक्षरों में जीत सिंह नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, गिरिधारी प्रसाद 'कंकाल', ललित केशव,

उमाशंकर 'सतीश', शेर सिंह 'गढ़देशी' और जीवानन्द श्रीपाल का नाम आदर के साथ लिया जाता है। गढ़वाली गद्य साहित्य में व्यंग्य लेखन के अप्रतिम हस्ताक्षर नरेन्द्र कठैत साहित्य पथ पर एक मील के पत्थर सिद्ध हो रहै है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक परिदृश्य बदला, आधी सदी से भी अधिक के इस समयान्तराल में गढ़वाली काव्य ने बहुआयामी विस्तार पाया और गढ़वाली साहित्य लेखन में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस काल खण्ड में सैकड़ों काव्य कृतियां प्रकाश में आई, कला की दृष्टि से नौबत 1953 चक्रधर बहुगुणाः तिड़का (1956), रणभंजण (1963), पार्वती (1966), धोल (1977), भूम्याल (1977), एवं दैसत (1996) सभी अबोध बन्धु बहुगुणा चित्र काव्य एवं रोन्देडु (1995), अश्रुमाला (1958) एवं दुदुभिः डिमडिम (1965) श्रीधर जमलोकी नवांण (1956) एवं फुर घिडुडी (1957) गिरधारी प्रसाद 'कंकाल'। ढांगा से साक्षात्कार (1988), नेत्र सिंह असवाल, पसीन की खुशबू (1989) एवं तिमला फूल (1977) चिन्मय सायर। कॉढ्यो मा औण से पैलि (1994), देवेन्द्र प्रसाद जोशीः खुचकण्डी (1991) एवं 'गाष्यूं की गंगा स्याण्यू का समोदर' (1999) नरेन्द्र सिंह नेगी। कमेड़ा आखर (1996) वीना बेंजवाल गढ़वाली काव्य की स्वातन्त्रयोत्तर उल्लेखनीय काव्य कृतियां है। इस काल खण्ड में विभिन्न कवियों के संयुक्त कविता संकलन भी खूब छपे है जिनमें 'फ्यूंली' (1953), मौल्यार (1963), छम घंुघरु बाजला (1964), खुंदेड़ गीत सागर (1964) रॅत रैबार (1963), बुरांस (1965) 'छैं' (1980) और गंगा जमुना का मैत बटि (1978) प्रमुख है। इनके अतिरिक्त 'बाहुली', हिडबांस, मैती, बुग्याल, बुरांस, चिट्ठी पत्री और धादा (1978) प्रमुख गढ़वाली पत्र-पत्रिकाएं है। जिन्होंने गढ़वाली काव्य साहित्य को दिशा प्रदान करने में बहुमूल्य योगदान दिया है।

स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक परिदृश्य बदल जाने पर कविता की भाव-भूमि भी बदल गई, तिड़का, फ्यूंली की तथा रौन्देडु सामाजिक बदलाव के काव्य है। डॉ. कोटनाला का मत है कि इसके आगे अधिक गहरी पैठ बनाकर समाजवाद काव्य चेतना के जन पक्षीय संघर्ष को कविता में परिणत करने का प्रयास किया गया। भूम्याल लोकतान्त्रिक, सामाजिक मूल्यों का काव्य है। इसी समाजवादी दृष्टिकोण से रचित, अज्वाल, धैं, एक ढांगा की आत्मकथा, ढांगा से साक्षात्कार, कमेडा आखर, कॉठ्यो मा ओण से पौलि, तिमला फूल आदि जनसंघर्षी रचनाएं हैं। पर्यावरणीय चिन्ताओं ने कवियों को सदैव उद्वेलित किया है। प्रकृति के साक्षात्कार से युक्त स्वतन्त्रयोत्तर रचनाओं में सदानन्द जखमोला का रैबार, गढ़गुणत्याली उल्लेखनीय है। पहली पीढ़ी के कवियों के सभी गढ़वाली काव्य रसानुभूति के काव्य है। इसमें श्रृंगार की कोमल भावनाएं और गढ़वाली भाषा का सौष्ठव चरम पर पहुंचा है। दूसरी पीढ़ी के कवियों में गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' तथा जीत सिंह नेगी प्रेम के कवि रहै है। जब नरेन्द्र सिंह नेगी को प्रेम गीतों के अतिरिक्त प्रकृति और आन्दोलन के गीत लिखने में अधिक सफलता मिली है। उनके काव्यों में साहित्यिक का पुट भी देखने में आता है। उनकी कृति 'खुचकण्डी' इस दृष्टि से पढ़नीय है। नरेन्द्र सिंह नेगी के साथ ही छन्द विधान को दुरुस्त करने में चक्रधर बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन्होंने नए छन्दों का भी सृजन

किया है। शिल्प की दृष्टि से भी नए-नए प्रयोग कन्हैयालाल डंडरियाल की अॅजवाल और अबोध बन्धु बहुगुणा के काव्यों में सर्वत्र दिखते है। अॅजवाल ने तो इतना नवीन शिल्प अपनाया कि वह वर्तमान के कई कवियों का वर्ण्य और अभिव्यक्ति की शैली ही बन बैठा है। डॉ जगदम्बा प्रसाद कोटनाला ने दो टूक शब्दों में हिन्दी काव्य शिल्प के प्रधान को निम्नवत् अभिव्यक्त किया है-

'लोकधर्मी काव्य कला को छोड़कर हिन्दी काव्य शिल्प ने गढ़वाली काव्य शिल्प को अत्यधिक प्रभावित किया है'। गढ़वाली छन्द मुक्त काव्य शिल्प ने जैसे हिन्दी की नई कविता के शिल्प को अपना लिया है।

निष्कर्षतः स्वातन्त्र्योत्तर काव्य साहित्य समाजवादी विचार धारा और प्रयोगधर्मी काव्य कला से अनुप्राणित हुआ है।

महाकाव्य - अब तक गढ़वाली में दो ही महाकाव्य प्रकाश में आ सके हैं। अबोध बन्धु बहुगुणा द्वारा रचित 'भूम्याल' जिसे 'हिमालय कला संगम' ने सन् 1977 में प्रकाशित किया तथा दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा रचित 'नागरजा' चार भागों में प्रकाशित हैं। नागरजा भाग 1 व 2 को गढ़वाली साहित्य परिश द्-कानपुर ने सन् 1993 ई. में तथा 2000 ई. में दूसरा संस्करण प्रकाशित किया तथा भाग 3 व 4 को कवि के पुत्र हरिकृष्ण डंडरियाल ने ब्रज मोहन सिंह राणा के सहयोग से सन् 2009 में प्रकाशित कराया। इन दो महाकाव्यों के अतिरिक्त तीसरा महाकाव्य अभी देखने में नहीं आया है। गढ़वाल में विष्णु को नागरजा तथा नरसिंह दोनों रूपों में सर्वत्र पूजा जाता है। जबकि शिव को निरंकार के रुप में पूजते है। गढ़वाल की टिहरी जनपद के सेम-मुखेम में नागरजा का मन्दिर है तथा सभी गढ़वाली उसकी तीर्थ यात्रा करते है। किंवदन्ती है कि सेम-मुखेम का नागरजा का मन्दिर गंगू रमोला ने बनवाया था। नागरजा प्रबन्धकाव्य गणेश् और ब्रह्मा की वन्दना से आरम्भ होता है। ब्रह्माण्ड, रज, पुरुश , काल, महत्त्व, अहंकार, आकाश, शब्द, वायु, तेज, प्रकाश, गन्ध, भूमण्डल, पंचभूत देवता, ब्रह्मा-विष्णु, आदि के वर्णन के साथ प्रथम उपखण्ड समाप्त होता है। उपखण्ड दो तथा तीन में शिव-सती तथा शिव-पार्वती प्रसंगों में ही कवि का वास्तविक कवित्व मुखर हुआ है। कविवर डंडरियाल ने शिव और सती के कथानक को गढ़वाली लोक जीवन के अनुरुप वर्णित किया है। इस काव्य में शिव नन्दी बैल को चुगाते है तो सती गाय के लिए घास लाती है। यक्ष, किन्नर और गुहय्क गढ़वाली परिधान पहनकर दक्ष यज्ञ में जाते है। सती के दक्ष यज्ञ में भस्म होने पर दक्ष को शिवद्रोह और अहंकार का निर्मम फल मिलता है। उनके क्रोध को देखकर सब रुद्र की वन्दना करते है कि-

है दयामय दीनबन्धु, पाप का भांडा छवां।
जीव हम बन्धन मंगा, प्रभु कर्म का खांडम छवां।।
संसार थैं सन्मार्ग दीणौ तुम ये लीला करदवा।
निर्विकारी शंभु तुम संताप जगती हरदवा।।
दैणो ह्वेजा ईश्वर, है भूमि भूम्याल
गौबन्द मुख मा तृण ल्हे, भेंट धरी अग्याल।।

अर्थात- है दयामय दीनबन्धु ईश्वर! हम पाप के भांडे है। हम जीव कर्म के बन्धनों में फंसे है। संसार को सन्मार्ग देने के लिए तुम यह लीला रचते हो। है निर्विकारी शम्भु! तुम जगत के सन्तापहारी हो। है भूमि के भूम्याल अब प्रसन्न हो जाओ। हम गोबन्द (अति सरल, निष्कपट) होकर तृण मुख में लेकर तेरी अग्याल (पूजान्न) भेंट लेके खड़े है।

इस महाकाव्य में कवि भगवती जगदम्बा की आराधना निम्नवत् करता है-

तू ब्वै छैं हम लड़िक छवां, अंदालि लगी ग्यों तेरी।
खुचिलि पकड़ि ल्हे खुद लगीं, मंुडलि मलासी मेरी।।
अन्तर प्रेम पछ्याणि की प्रकट ह्वाय भवानि।
आदिशक्ति मां भगवती, सेवा हमारी मानि।।

अर्थात - तू मां है हम तेरे पुत्र हैं। तू हमें अपनी गोद में लेकर हमारे सिर पर अपना हाथ फेरकर अपना आर्शीवाद दें। शिव लीला के वर्णन में कवि ने श्रृंगार, हास्य, रौद्र, वीभत्स, आदि रसों का समुचित प्रयोग किया है।

नागरजा भाग-2 में नागरजा कृष्ण की लीला का भक्तिमय वर्णन है। इस सर्ग में कवि ने कंगालियां भाट (एक पात्र) की अवतारणा की है। जो कुंठाओं, कुवृत्तियों, व्यभिचार और स्वार्थ सिद्धि के लिए छद्मवेशी धार्मिक कर समाज को भ्रष्ट कर देता है। इस सर्ग में भगवान कृष्ण कंगाली भाट को नटखट सुंदरी बनकर ज्ञान, कला और सौन्दर्य के बल पर मोहित कर उसे जगत कल्याण का सन्देश देते है। कवि ने एक कल्पित पात्र कंठी दादा के माध्यम से जीव जगत, ईश्वर, तप-त्याग, सगुण-निर्गुण आदि दार्शनिक शंकाओं का विवेकपूर्ण ढंग से कंठी दादा के माध्यम से समाधान कराया है।

निष्कर्षतः इस काव्य की शैली अलंकृत और सरस है। इसमें ठेठ गढ़वाली शब्दों का ठाठ देखने में आता है। महाकाव्य के सभी लक्षण नागरजा में प्राप्त होते हैं। नागरजा में गीतिका, हरिगीतिका, कवित्त, सवैया, भुजंग प्रयात, उपजाति, इन्द्रबज्रा, उपेन्द्रबज्रा, ताटंक, दोहा, चौपाई आदि छन्दों को प्रयुक्त किया गया है।

'भूम्याल' खण्डकाव्य - भूम्याल का प्रकाशन सन् 1977 में हुआ। इसमें भूमि, उलार, दन्दोल, मिलन, कर्म, विरह, औळ, ममता, विहार, परिणय, दुन्द, रोपणी, विलाप, थर्प, जलेथा और उपसंहार कुल 16 सर्ग है। काव्य का नायक लोकप्रसिद्ध उद्दात्त वीर भड़ जीतू बगड़वाल है तथा नायिका भरणा है। काव्य का मुख्य संदेश सामजवादी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की प्रतिस्थापना है। इसमें अनेक मौलिक छन्दों का सृजन किया गया है।

11.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्व और सौन्दर्यानुभूति

गढ़वाली काव्य, रसतत्व की प्रधानता के कारण अलग पहचाने जाते है। श्रृंगार, वीर, हास्य, करुण और अद्भुत इन रसों की गढ़वाली कविता में सर्वत्र स्थिति देखी जा सकती है। वीरगाथाएं यदि श्रृंगार, करुणा और वीर रस से भरी है तो लोककथाएं, अद्भुत रस और अन्य रसों की अनुगामिनी है। लोकगीतों में सर्वत्र श्रृंगार और प्रकृति चित्रण, करुण रस तथा सामाजिक जीवन के चित्र (बिम्ब) मिलते है। अलंकारों का प्रयोग कविवर श्रीयाल की अन्याक्षरी कविता में

अधिक दिखता है। डंडरियाल जी का 'नागराजा' भी अलंकृत काव्य है। अन्य कवियों में नरेन्द्र सिंह नेगी, को छोडकर प्रायः काव्यालंकारों के प्रति मोह नहीं दिखाई देता है।

उन्होंने रस को ही प्रधानता दी है। भजन सिंह 'सिंह' और उनके युग के कवि सामाजिक समस्याओं के चित्रण में अधिक सफल हुए है। स्वातन्त्रयोत्तर प्रगतिवादी चेतना भी इन काव्यों की पृष्ठभूमि में कार्य कर रही है। देश भक्ति, वीरता, त्याग और सुधार की भावना, सिंह युग के कवियों की काव्यागत विशेष ता हैं। उदाहरणार्थ -

फ्रान्स की भूमि जो खून से लाल च,
उख लिख्यों खून से नाम गढ़वाल च,
रैंद चिन्ता बड़ी तै बड़ा नाम की,
काम को फिक्र रैंद न ईनाम की।

भाषिक प्रयोग में नवीनता - हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी इस कालखण्ड के कवियों ने बेहिचक किया है। उनमें गढ़वाली शब्दों के प्रयोग की अपनी बानगी तो है ही जैसे- चोली, छैला, डूडो, फाला, धौली, बसगाल, फ्योंली, जिकुड़ी, गैल्या, दुवारो, ज्यू का कालू आदि। शब्दराशि का बाहुल्य गढ़वाली कविता की अपनी अभिव्यक्ति को अपना सा बनाने में सहायक हुई है। अपने शब्दों (ब्वे की बोली) की अपनी मिठास अलग ही होती है।

प्रकृति चित्रण - गढ़वाली कविता एवं उसका काव्य साहित्य प्रकृति चित्रण के बिना अधूरा जान पड़ता है। प्रकृति चित्रण ही गढ़वाली काव्य साहित्य की एक विशिष्ट पहचान है। हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण, छायावादी प्रभाव की देन माना जात है। भले ही उससे पहले भी प्रकृति चित्रण को कविता के प्रमुख अंग के रुप में स्वीकारा जा चुका था। एक गढ़वाली कविता में श्रृंगार से भरे नारी के सौन्दर्य को दर्शाता काव्य को निम्न देखिए -

''अक्षत उंदकार चुलखियों मा,
रतव्योणी मा प्रेम की भारि भूखी,
जख रोज ही स्वप्न शरीर धारी,
क्वारी तरुणि स्याणी परी दिखेंदन।

काव्यालंकार- रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रुपाकृति वर्णन में अतिशयोक्ति की अतिरंजना, वीर भड़ों के शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम वर्णन में, सुन्दरियों के देहाकर्षण में सर्वत्र दृश्यमान है। उदाहरणार्थ- महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल के अॅज्वाल कविता संग्रह की उल्यरु जिकुडी कविता में आये अलंकारों के विविध बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रस्तुत है-

स्यूंद सी सैण मा की कूल, स्वाति की बूंद सी ढ्वलीने
झुमकि सी तुड़तुड़ी मंगरि, मखमलि हरि सी अंगडि
फील्वर्यू हलकदी धौपंली, घुंगटी सी लौकदि कुयेड़ी

उपर्युक्त पद्य में समतल खेतों की गूल को मांग के सदृश, आंसू को स्वाति के बूंद, पानी को पतली धारा को झुमकों, हरे मैदानों को अंगड़ी, और उड़ते कोहरे की चादर को घूघंट के समान

बताकर कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है। भूम्याल महाकाव्य में कविवर नागेन्द्र बहुगुणा 'अबोध बन्धु' की उपमाएं उनके अलंकृत कवि होने के प्रमाण है।

डांडा को क्वी तरुण हाथी सी लग्यूं मस्त बाटा
हर तर्प बटि सुन्दरता हृदय मा, बौला को पाणि सी कगार कटणि
हिरणी की बच्ची सी कुंगलि चिफली भरी नि सकणि हो चौकड़ी ज्वा
म्वारी सी माधुर्य भरीं च गूंगी चखुली सी ज्वा टुपरि उड़ नि सकदी

इन पंक्तियों में रास्ते में चलते तरुण हाथी के समान जीतू के मन में, भरणा की सुन्दरता ऐसे समा रही है जैसे गूल के किनारों की मिट्टी काटती बारीक पानी की धारा, जीतू की गोद में समर्पित भरणा हिरणी की कोमल बच्ची, मधुभरी मधुमक्खी, या आकर्षक चिड़िया के समान दिखाई दे रही है। उक्त पद्य में मालोपमा अलंकार है। उमाल के कवि प्रेमलाल भट्ट ने भी कुछ ऐसी ही उपमाओं को काव्य में अपनाया है।

मिथे उर्ख्यला की धाण सी, क्वी धौलि गै क्वी कूटि गै
निनि बोतल को नशा सी मैं, कखि कोणा लमड्यूं रैगयूं
कखि प्रीत क्वी मिलि छई, नौनो का बांठा कि भत्ति सी,
फुंड फेकि द्यो ये समाज न, मि फुकीं चिलम को तमाखु सी

इन पंक्तियों में कवि ने सामाजिक ज्यादतियों को ओखली में कूटे जाने के समान, खाली बोतल या जले हुए तम्बाकू की चुटकी के समान निरर्थक तथा प्रीत को बच्चे के हिस्से की खीर के समान नई उपमाएं दी है।

1. नए प्रतीकों के प्रयोग- आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने अपने गीतों में प्रतीकों को चुना है। उन्होंने जिन प्रतीकों को चुना वें लोक जीवन अथवा लोकभाषा में प्रचलित है। जैसे- उकाल-उंदार गीत में उकाल जीवन संघर्ष और उंदार आसान या पतनोत्मुख जीवन के प्रतीक है। 'हौंसिया उमर' गीत में बसगल्या न्यार, पोड मा को पाणी, धार मा को बथौं, झ्यूतू तेरी जमादरी में झ्यूतू शक्ति या राजसत्ता का प्रतीक, अंगूठा घिसै- अनपढ़ तथा लटुली फूली गैनि गीत में पके हुए बाल समय गुजर जाने के प्रतीक है। कवि के गीत संग्रह गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत है जिनमें गढ़वाली प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है-

खैरि का अंधेरों मा खुज्ययुं बाटु
सुख का उज्याला मा बिरड़ि गयूं
आंखा बूजिकि खुलदिन गेड़
आंखा खोलिकि अलझि गयूं
उमर भप्ये की बादल बणिगें
उड़दा बादल हैर्दि रयूं।
ज्वानि मा जर सी हैंसी खते छै

उमर भर आंसू टिप्दि रयूं
रुप का फेंण मा सिंवाल नि देखी
खस्स रौड़ू अर रडद्वदि गयूं

इन पंक्तियों में अंधेरा - परेशानी का, उजाला सुख का, गेड-मानसिक गुत्थी का, उलझना-परेशानी में पड़ना, बादल- बुढ़ापा का, हंसी- खुशी का, आंसू-दुख का, फेण- रुप की चमक तथा सिंवालु- (कायी) आकर्षण मन्द पड़ने का प्रतीक है। प्रतीक की दृष्टि से कवि गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' एवं अबोध बन्धु बहुगुणा प्रमुख कवि है। अन्य कवियों में गोविन्द चातक व श्रीधर जमलोकी उल्लेखनीय है। कवि कंकाल के गीत संग्रह नवाण की तुम द्यबता और अमर स्वर आदि कविताएं प्रतीकात्मक है। इस काव्य में बांसुरी जीवन की आती-जाती सांसां का प्रतीक है। भोर का तारा रतव्योण्यां जन्म का, फूलो का रस, रंग व गन्ध जीवन के विभिन्न सुख-उल्लासों की प्रतीक, जेठ की दुपहरी, जवानी अथवा जीवन की क्रियाशीलता का प्रतीक एवं खलिहान में बैलों के फेरे जन्म-मृत्यु के प्रतीक के रुप में प्रयुक्त मिलते है। उदाहरण प्रस्तुत है-

बजणी छ बांसुळी, धार मा देखा रतव्योण्यां ऐगे
भांति-भांति का रस, रंग लैगे, फूलों मा गन्ध रसधार फलू मा भरणी छ बांसुळी।।
जीवन मिट जालो स्वर यख राला, दायीं जसि फेरा रीटि की आला
बसग्याळि गंगा बणि की आख्यूं मा- तरणी छ बांसुळी

गिरधारी प्रसाद कंकाल ने घिडंवा (नर गौरेया) तथा घिडुड़ी (मादा गौरेया) को नर-नारी के प्रतीक के रुप में चुनकर गरीब पर्वतीय दम्पत्ति की कथा-व्यथा को मनोरंजक ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है। कवि चक्रधर बहुगुणा ने भी प्रतीकों में अपनी बात कही है। नौबत संग्रह की दीवा कविता में दिया-चेतना का, अन्धकार चेतना का, ज्योति ज्ञान का, तेल विवेक का, घानी संघर्ष का, और बाती त्याग का प्रतीक है। सदानन्द जखमोला के रैबार काव्य में बिम्बों की भरमार है। जैसे-

भींचूळों सी तिगुड़ी ढसको, प्यार पींदी धमेल, भैलो खिल्दा नितम्बों मा, चुंटि फूंदा भग्यान
मर्छाणी को अतुल गति से छांछ छुळदों किलोल, पुन्यो से ही दरश परश् पर्व काल सुकाळों।

मंगतू काव्य में कवि डंडरियाल ने मंगतू की गरीब पारिवारिक स्थिति के अनेक बिम्ब उतारे है।

2. छन्द विधान - गढ़वाली कवियों ने परम्परागत और शास्त्रीय छन्दों में रचना की है। मंगतू में बीस मात्रा के छन्द को अपनाया गया है।- किलै मेरि ईजत गिरीं इतग रैन्दी,

म्यरा बाब जी जो हमुम छैन्दि हून्दी।।
म्यरा बाब जी तुम यखा आइ जावा।
प्वड्यूं गौरु का ल्याख मी देखि जावा।।

फ्यूंली की कविताओं में नये छन्दों का वैविध्य विद्यमान है- फुर-घिंडुडी आजा, पदानु का छाजा, चाड नी जो छवी लगउं, केकु तेरा नेडु अउं, इन्नि समझि तन्नि छउं, कुछ नी तेरु काजा, पदानु का छाजा।

उमाशंकर 'सतीश' के गीतों का संग्रह खुदेड़ सन् 1956 गीतात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें एक कविता छन्द मुक्त शैली में है- है रां/दैव/कनी होली भग्यानी/मैतासु, मेरी जिकुड़ी का/टूक

होंदा/नी ओदूं सरील, जगा पर/मेरी भुली/दीदी, जिया/डांडा का काफल, कन होला/ खायेणा/मेरि ब्वे होंदी/मैं मैतु बुलौंदि/ है रां! दैव।

निष्कर्षतः गढ़वाली कवियों में पारम्परिक छन्दो के साथ ही मनमोहक मौलिक छन्दों का भी निर्माण किया। उनकी दृष्टि मुक्त छन्द वाली कविता की ओर भी आकृष्ट हुई है। गढ़वाली लोकगीतों में समय-समय पररचे जाने वाले देश, काल और परिस्थिति की प्रेरणा से उद्भूत घटना मूलक और इतिवृत्तात्मक गीतों की संख्या बहुत है। सत्य यह है कि लोक मानस अपने आस-पास की घटनाओं के प्रति अधिक आकर्षित होता है। फलतः जो भी वैसी घटना घटी, झट से उस पर गीत बन जाया करते है। कुछ घटनायें ऐसी होती है जिनमें इतिहास का निर्माण होता है किन्तु कभी बहुत सामान्य घटनाएं भी गीतों में बंध जाती है। लोक की दृष्टि में उनकर भी उतना ही महत्त्व होता है।

प्राचीन काल के घटनामूलक गीत अब शेश नही रह पाए है। कुछ मुग़ल और गोरखा आक्रमण के गीत बचे है। आजादी के लिए जो जन आन्दोलन हुए है उनकी अभिव्यक्ति गीतों मे कई बार हुई है। गांधी, नेहरु, नेताजी सुभाश चन्द्र बोस, सुमन आदि के गीत एक समय बहुत लोकप्रिय रहै है। पंचायती राज आ जाने के बाद लोक में जो राष्ट्रीय चेतना की लहर आई वह भी अनेक गीतों में बोलती है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐतिहासिक दौर के गीतों में गांधी, नेहरु, सुभाश की प्रशंसा तथा स्वतन्त्रता के बाद की बदलती स्थितियों, जमाने के बदलते रंगों, गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, अकाल जैसी दैवी आपदाओं, स्त्रियों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं, अधिकारियों के हथकंडों आदि कई घटनाओं पर गढ़वाल में समय-समय पर लोक साहित्य की रचना होती रही है। इस कालखण्ड में बालगीत भी खूब रचे गये। बालगीत अब मिटते जा रहै है। पुरानी वीरगाथाएं (पवाड़े) लुप्तप्राय हो रहै है। वर्तमान समस्याओं का चित्रण करने पाले गढ़वाली के नए लेखक पौराणिक एवं ऐतिहासिक साहित्य के लेखन में रुचि नही ले रहै हैं। इसका कारण उनका अपनी जड़ों से हट जाना ही माना जा सकता है। इसका प्रभाव गढ़वाली भाषा पर भी पड़ा है। उसके मूल शब्द खोते जा रहै है। गढ़वाली लोक साहित्य की परम्परा में भी भारी बदलाव आने लगा है। वैज्ञानिक प्रगति तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और रहन-सहन ने पुराने मिथकों को ध्वस्त कर दिया है। अतः आधुनिक पाठक और रचनाकार/लेखक प्राचीन परम्पराओं (मिथों) पर अविश्वास जतलाने लगे है। वें कल्पना की अपेक्षा यथार्थ को महत्त्व दे रहै है। यही कारण है गढ़वाली का कल्पना से अतिरंजित लोक साहित्य धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।

11.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रुप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते है। इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डॉ. गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण,

निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वीं (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक है। राम प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहै है। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही है। उपन्यास एक आध दिखने में आते है। नाटक लिखे जा रहै है लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही है जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती है। खण्डकाव्य कम देखने में आ रहै है। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नही गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नही पनप पा रही है। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक प्रहलाद की आज भी चर्चा होती है। लेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नही लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गये नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नही दे रहै है या उनकी रुचि इन विधाओं में नही है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नही बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

11.3.3 वर्तमान लोक साहित्य की विधाएं

वर्तमान समय में गढ़वाली लोक साहित्य में कविता, कहानी, निबन्ध, आलोचना, रेडियो रुपक, नाटक/एकांकी, हास्य-व्यंग्य, उपन्यास और रिपोर्ताज विधाएं विकसित हो रही है। नए लेखकों और कवियों ने अपना शिल्प और काव्य वर्तमान हिन्दी साहित्य के अनुकरण पर बिल्कुल ताजा और तीखे स्वाद वाला अर्थात अभिधात्मक किन्तु व्यंग्य से भरपूर (बिहारी के दोहों की तरह) लघु आकार प्रकार किन्तु तीखी मार वाला शिल्प, और वर्णन कौशल को अंगीकार कर लिया है। पुरानी परम्परा का नीतिपरक साहित्य अब बीते युग की बात हो चुका है। वर्तमान काव्य विद्या के अन्तर्गत पद्यात्मक अभिव्यक्ति की ओर नए लेखकों का अधिक रुझान है।

11.4 सारांश

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रुप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते है।

इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डॉ. गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण, निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वीं (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक है। राम प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहै है। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही है। उपन्यास एक आध दिखने में आते है। नाटक लिखे जा रहै है लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही है जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती है। खण्डकाव्य कम देखने में आ रहै है। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नही गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नही पनप पा रही है। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक प्रहलाद की आज भी चर्चा होती है। लंेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नही लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गये नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नही दे रहै है या उनकी रुचि इन विधाओं में नही है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नही बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

11.5 शब्दावली

मोछंग	-	छोटा वाद्य यन्त्र
माल	-	बहादुर/मल्ल
भोट	-	तिब्बत
नागरजा	-	कृष्ण
ढ़साक	-	हल्का स्पर्श
ज्यूंदाल	-	मन्त्र द्वारा फेंके गये चावल
जागरी	-	जागर गीतों के विशेष ज्ञ (गायक/वादक)

अंज्वाल	-	अंजुलि
खर्क	-	भैसों के रहने का स्थान
खुंदेड़	-	एक प्रकार के गीत
कळकळी	-	उत्कंठा से उत्पन्न गले पर एक प्रकार की अद्भुत अनुभूति
औजी	-	ढोल, दमामा बजाने वाले हरिजन
गदरा	-	छोटी नदी
रुणक-झुणक	-	चुपके-चुपके मन्द ध्वनि करते हुए
मुन्यासों	-	पगड़ी
कुखड़ी	-	मुर्गी
दगड्या	-	दोस्त
बोकट्या	-	बकरा

11.6 अभ्यास प्रश्न एवं उत्तर

1. निम्न प्रबन्ध किसके द्वारा लिखे गये है ?

क गढ़वाल के साहित्य संस्कृति पर स्कन्द पुराण का प्रभाव

ख नागरजा महाकाव्य

ग नाथपंथ और गढ़वाल

घ जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन

2. आधुनिक गढ़वाली कथा के किन्ही तीन लेखकों के नाम लिखों ?
3. गढ़वाली नाटक विधा पर सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किस विद्वान ने किया है ?
4. प्रथम चरण के गढ़वाली काव्यों के नाम लिखिए।
5. निम्नलिखित आधुनिक कविता संग्रहों के लेखकों के नाम बताइये।?

क गाण्यू की गंगा, स्याण्यू का समोदर,

ख मेरी अग्याल

ग हैंसदा फूल खिलदा पात

घ कुयेड़ी

6. निम्न रचनाएं किस कवि की है ?

अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू,

7. गढ़वाली प्रबन्धकाव्य पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए।
8. आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक का नाम बताओ।
9. नरेन्द्र सिंह नेगी के बसन्त पर लिखे हुए गढ़वाली गीत के बोल लिखों।

उत्तर

उत्तर 1

क चन्द्रशेखर बडोला

ख कन्हैयालाल डंडरियाल

ग डॉ. विष्णुदत्त कुकरेती

घ डॉ. उमाशंकर 'सतीश'

उत्तर 2

1. नरेन्द्र कठैत
2. हिमवन्तवासी
3. अबोध बन्धु बहुगुणा

उत्तर 3 डॉ. गोविन्द चातक

उत्तर 4 प्रथम चरण के गढ़वाली काव्य निम्नलिखित है-

1. बाटा गोडाई
2. जय-विजय
3. पंछी पंचक
4. फुलकण्डी
5. मोछंग
6. प्रहलाद नाटक

उत्तर 5

क नरेन्द्र सिंह नेगी

ख ऋषिवल्लभ कण्डवाल

ग ललित केशवान

घ कन्हैयालाल डंडरियाल

उत्तर 6 अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू, उक्त तीनों रचनाएं कन्हैयालाल डंडरियाल जी की है।

उत्तर 7 गढ़वाली प्रबन्ध काव्य

प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत खण्डकाव्य और महाकाव्य दोनों विधाएं आ जाती है। गढ़वाली में अभी तक दो ही महाकाव्य प्राप्त हुए है। पहला महाकाव्य अबोध बन्धु रचित भूम्याल और दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल रचित नागरजा है। गढ़वाली में अनेक गीत एवं संवादात्मक खण्डकाव्य भी रचे गय है। जिनमें जय-विजय, प्रहलाद नाटक दोनों भवानीदत्त थपलियाल रचित गीतात्मक प्रबन्ध नाट्य काव्य है। इनकी शैली नाटकीय होने से लोग इन्हें नाटक ही मानते है। बाटा गोडाई बलइेव प्रसाद दीन का गीत संवादात्मक खण्डकाव्य है। जिसे रामी नाम से जाना जाता है। भजन सिंह 'सिंह' की वीर देवकी तथा तारादत्त गैरोला कृत सदेई दोनों खण्डकाव्य है। कन्हैया लाल डंडरियाल का मंगतू तथा सदानन्द जखमोला का रैबार और अश्रुमाला कृतियां खण्डकाव्य के अन्तर्गत है।

उत्तर 8 आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक श्री वीरेन्द्र पंवार है।

उत्तर 9 नरेन्द्र सिंह नेगी का बसन्त पर आधारित गढ़वाली गीत निम्नलिखित है-

रुणुक-झुणुक ऋतु बसन्ति गीत लगांदि ऐगे,
बसंत ऐगे हमार डांडा सार्यू मा
ठुमुक-ठुमुक गुंदक्यली खुट्यून हिटी की ऐगे,
बसन्त ऐगे लिपीं पोतीं डिंडल्यूं मा।
मुखड्यूं मा हैसणू च पिंगलू मौल्यार,
गल्वड्यूं मा सुलगै गे ललंगा अंगार
आंख्यूं मा चूमाण सुपिन्या बसन्ती
उल्रया जिकुड्यूं मा छलकेणू प्यार
सिंणका सूत कुंगलि कंदुड़ि- नकुड्यूं मा पैरेगे
बसन्त ऐगे हमार गांदी चौठ्यू मा।

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड की लोक कथाएं, गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, अन्सारी रोड़, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण 2003
2. गढ़वाली लोककथाएं, डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली
3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. उत्तराखण्ड की लोककथाएं, डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
5. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना, मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
6. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य, डॉ. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
7. गढ़वाली लोक गीत विविधा, डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

11.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के वर्तमान स्वरूप पर विस्तृत निबन्ध लिखिए .

इकाई - 12 पंजाबी साहित्य का इतिहास एवं परिचय

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन: विभिन्न दृष्टिकोण
12.4 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन
12.5 आदिकाल (850 ई. से 1500 ई. तक)
12.5.1 नाथ योगियों का काव्य
12.5.2 बाबा फ़रीद श करगंज
12.5.3 लोक साहित्य
12.5.4 वार काव्य
12.6 मध्यकाल (1500 ई. से 1850 ई. तक)
12.6.1. गुरमत काव्य
12.6.2. गुरमत काव्य के प्रतिनिधि कवि
12.6.3. श्री गुरू ग्रंथ साहिब
12.6.4. सूफ़ी काव्य
12.6.5. सूफ़ी काव्य के प्रतिनिधि कवि
12.6.6. किस्सा काव्य
12.6.7. किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि
12.6.8. वार काव्य
12.6.9 गद्य साहित्य
12.7 आधुनिक काव्य (1850 ई. अब तक)
12.7.1 ईसाई मिशनरियों का पंजाबी भाषा और साहित्य को योगदान
12.7.2 सिंह सभा का योगदान
12.7.3 पंजाबी कविता
12.7.4 उपन्यास-साहित्य
12.7.5 कहानी-साहित्य
12.7.6 निबन्ध
12.7.7 आलोचना

12.7.8 नव्यतर गद्य विधाएँ
12.8 सारांश
12.9 अभ्यास प्रश्न

12.1. प्रस्तावना

इस इकाई में हम पंजाबी साहित्य पर एक दृष्टि डालते हुए इसका परिचय प्राप्त करेंगे। इसके अध्ययन से हमें यह ज्ञात होगा कि भारतीय साहित्य के इस खण्ड़ विशेष का क्या महत्त्व है और इसके साहित्य की कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं जिसके कारण इसका अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितना अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का। आप यह भी जानेंगे कि पंजाब कितना प्राचीन है और इसके साहित्य की जड़ें कहाँ तक जा पहुँची हैं। आपको यह भी ज्ञान होगा कि पंजाबी भाषा का उद्भव कहाँ से हुआ।

प्यारे विद्यार्थियो ! यह तो आपको पता ही है कि पंजाब भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित इलाके का नाम है। इस इलाके (क्षेत्र) में बोली जाने वाली भाषा को पंजाबी कहते हैं। पंजाबी श ब्द फ़ारसी का है, जिसका अर्थ है पाँच नदियों (पंच+आब) का प्रदेश । ये पाँच नदियां हैं - सतलुज, व्यास, रावी, जेहलम एवं चनाव। यह नाम मुग़लों के द्वारा रखा गया था। इससे पहले इसे पंचनद, सप्तसिंधु आदि नामों से बुलाया जाता था। यह भी आपको स्पष्ट होना चाहिए कि बृहतर पंजाब का अब एक हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। भारत में भी इस का एक हिस्सा हिमाचल प्रदेश बन गया तो दूसरा हरियाणा। पंजाबी की तीन उप-बोलियाँ हैं - माझी (अमृतसर), दोआबी (होशियारपुर) और मलवई (पटियाला)। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार इसका विकास 'टक्क' अपभ्रंथ से हुआ है और इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव है। डॉ. भोलानाथ तिवारी का मानना है कि इसका विकास पैशाची या कैकय अपभ्रंश से हुआ है। पंजाबी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. प्रेम प्रकाश भी कैकयी प्राकृत अपभ्रंश से इसका विकास मानते हैं। आपको यह बात भी यहीं जान लेनी चाहिये कि जिस प्रकार हिन्दी की लिपि को देवनागरी कहा जाता है, उसी प्रकार पंजाबी लिपि को 'गुरुमुखी' कहा जाता है जिसे गुरु अंगद देव ने व्यवस्थित किया। हाँ, पाकिस्तान में, पंजाबी फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। करनैल सिंह भिंद ने अपनी पुस्तक 'पंजाब दा लोक विरसा' में स्पष्टतः यह माना है, ''पंजाबी का वैदिक संस्कृत, प्राकृतों और अपभ्रंषों से व्याकरण एवं श ब्दों आदि की दृष्टि से तुलना करके यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं की भांति ही पंजाबी भी हिन्दी-आर्य भाषा परिवार की आधुनिक भाषा है।"

पंजाब की समृद्ध साहित्यिक परम्परा का अवलोकन करने से पूर्व यह जान लेना भी आवश्यक है कि पुरातन खोजों के अनुसार पंजाब की सभ्यता अत्यंत प्राचीन-सिन्धु घाटी की सभ्यता तक जाती है। 1921-22 ई. में हडप्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई से यह बात सिद्ध हो चुकी है। हडप्पा, मोहनजोदड़ो और संघोल इसके प्रमुख केन्द्र थे। पंजाब बाह्य आक्रमणों का

केन्द्र भी रहा। सिकंदर ने अरबों के सिंध के राजा दाहर पर आक्रमण करके आगामी मुसलमान आक्रमणकारियों के लिये रास्ता खोल दिया। इसके बाद सुबकत दीन, महमूद ग़ज़नवी, मुहम्मद ग़ौरी के लगातार आक्रमण हुए। 1000 ई. तक पूरा पंजाब मुसलमानों के कब्ज़े में आ गया। यहाँ गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोधी आदि वंशों ने राज्य किया फिर बाबर के आक्रमण से मुग़लों का राज्य स्थापित हो गया। इसके बाद अंग्रेज़ों का आगमन हुआ। मुग़लों के साथ भी पंजाब का सम्बन्ध कभी सौहार्दपूर्ण तो कभी असौहार्दपूर्ण रहा। सदा आक्रमणकारियों का सामना करने के कारण पंजाब के लोगों में अक्खड़ता, लडाकूपन देखने को मिलता है।

इतनी प्राचीन सभ्यता होते हुए भी पंजाबी का साहित्य 1000 ई. के लगभग देखने को मिलता है। पंजाबी तब तक अपना आज का स्वरूप लगभग ग्रहण कर चुकी थी। इसे शुद्ध और एकरूपता देने का काम गुरू अंगद देव ने अवश्य किया।

12.2 उद्देश्य

एम0ए0एच0एल – 204 की यह बारहवीं इकाई है। इस इकाई में आप पंजाबी भाषा के साहित्य से परिचित होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- पंजाबी साहित्य के काल विभाजन से परिचित हो सकेंगे।
- पजाबी साहित्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- पंजाबी साहित्य के प्रमुख कवियों, लेखकों से परिचित हो सकेंगे।
- पंजाबी साहित्य के योगदान को समझ सकेंगे।

12.3 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन: विभिन्न दृष्टिकोण

अभी तक हमने पंजाब और पंजाबी भाषा के बारे में जाना है। अब पंजाबी साहित्य के विभाजन के बारे में जानेंगे। प्रायः साहित्येतिहास को लिखना कठिन रहा है। इसका मुख्य कारण इसके सम्पूर्ण साहित्य का विभाजन है। पद्य और गद्य का विभाजन तो सामान्य सा विभाजन है। मूल समस्या मानव की चित्तवृत्तियों का अंकन करने वाले साहित्य ही की है। इसका विभाजन विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से किया है।

यह बात तो अब तक आपको स्पष्ट हो चुकी है कि पंजाबी साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। इसे व्यवस्थित रूप में लिखने की परम्परा का प्रारम्भ बीसवीं सदी में ही हुआ है। ये साहित्येतिहास व्यक्तिगत और संस्था के स्तर पर लिखे गये हैं। इन इतिहासों के दृष्टिकोण अलग-अलग रहै जिसके कारण अभी तक कोई संतोश जनक इतिहास प्राप्त नहीं होता। पंजाबी साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व इसके साहित्येतिहास लेखन की परम्परा हो जानना आवश्यक है।

पंजाबी साहित्य का पहला इतिहास 'बावा बुध सिंह' द्वारा रचित तीन पुस्तकों में मिलता है। चूंकि यह पहला इतिहास है इसलिये इसमें साहित्य विभाजन की कई कमियाँ देखने

को मिलती हें। उनके विभाजन से यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्होंने अपने विभाजन के लिये विषय, रूप, प्रवृत्ति, धारा, राजनैतिक घटना में से किसे आधार बनाकर लिखा। सिख मज़हवी लिटरेचर, मुसलमान मज़हबी लिटरेचर, हिन्दू लिटरेचर, ईसाई लिटरेचर, दुनियाबी लिटरेचर और नया लिटरेचर उनके विभाजन का मुख्य आधार है। मज़हब के आधार पर किसी भाषा के साहित्य का विभाजन न वैज्ञानिक है और न तर्क के आधार पर ही उचित कहा जा सकता है।

डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने साहित्येतिहास से सम्बंधित पुस्तकें लिखीं - इन पुस्तकों के काल-खण्ड विभाजन में पर्याप्त अन्तर है। उदाहरणार्थ 1. पुस्तक में पहले काल खंड को 'पूर्व नानक काल' कहा तो दूसरी पुस्तक में इसे 'नाथ योगियों का युग' कहा। 1. में 'गोरख नाथ का समय' कहा तो दूसरी पुस्तक में 'पूर्व नानक काल' या 'गोरख काल' कहा। इस प्रकार उनके इतिहास में निष्चितता नहीं है, स्थिरता नहीं है। दूसरे उन्होंने विभाजन राज घरानों को आधार बनाकर किया जैसे 'मुगल काल, रणजीत सिंह काल' - यह साहित्येतिहास का आधार नहीं हो सकते। डॉ. गोपाल सिंह दर्दी एवं प्रो. प्यारा सिंह पोगल द्वारा रचित इतिहासों पर प्रो. मोहनसिंह के इतिहास का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है।

डॉ. सुरेन्द्र सिंह कोहली ने पंजाबी साहित्य का इतिहास लिखते हुए धाराओं को आधार बनाया जैसे 'लोक गीत और साहित्यिक झुकाव, पंद्रहवी सदी, गुरमत का साहित्य, निर्मल साधु 'सूफी सदी' आदि। इसमें एकरसता के साथ-साथ धाराओं का उद्भव, विकास एवं समाप्ति का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार सुरिन्दर सिंह नरूला का 'पंजाबी साहित्य का इतिहास' भी त्रुटिरहित नहीं है। उन्होंने महत्त्व हीन को महत्त्व पूर्ण बना दिया और महत्त्व पूर्ण को महत्त्व हीन बना दिया जैसे पहले काल को 'वीर गाथा काल' कहकर उन्होंने उन 'वार काव्यों' को महत्त्व दिया जो उपलब्ध ही नहीं हुए और नाथों सिद्धों एवं बाबा फरीद की रचनाओं को निकाल ही दिया है।

ज्ञानी हीरा सिंह दर्द ने जो इतिहास 1954 ई. में लिखा उसमें इसके साहित्य के दो भाग किए - 'पुराना काल' एवं 'नया काल' और यह भी माना कि अंग्रेज़ों के आने पर ही पंजाबी साहित्य में नया मोड़ आता है। यह कथन दोश पूर्ण भी है और तर्कहीन भी। इसका अर्थ तो यही निकलता है कि 1850 ई. से पहले पंजाबी साहित्य में कोई परिवर्तन ही नहीं आया। वैसे भी 'पुराना काल' पंजाबी के महत्त्व पूर्ण साहित्य को कहना उचित नहीं।

डॉ. जीतसिंह सीतल ने 1973 ई. में 'पंजाबी सहित दा आलोचनात्मक इतिहास में 'गुरू नानक' को आधार बनाकर इसका विभाजन किया जैसे 'पूर्व नानक काल', 'नानक काल', 'उत्तर नानक काल'। इसमें संदेह नहीं कि गुरू नानक की वाणी प्रभावशाली और महत्त्व पूर्ण है, मगर उन्होंने न केवल बाबा फरीद का महत्त्व घटा दिया, एक रचनाकार को काल विभाजन का आधार बनाकर और 1850 ई. के बाद के साहित्य को 'परिवर्तन काल', 'आधुनिक काल' कहकर इससे मुक्ति पा ली। अतः यह मानदंड दोश पूर्ण है। यही नहीं प्रारम्भिक काल के बारे में ग़लत जानकारी भी दी गई है - जैसे इस काल में कोई प्रामाणिक रचना ही नहीं हुई, अतः पंजाबी साहित्य का कोई आदिकाल नहीं। यह बात तथ्याधारित नहीं है।

ईशर सिंह तांध ने अपने 'पंजाबी साहित दा पूरण-मूलांकन' में साहित्यिक धाराओं को आधार अवष्य बनाया। जैसे 'वीर रस काव्यधारा, श्रृंगार काव्यधारा, भक्ति काव्यधारा' आदि। यह इतिहास 19वीं सदी तक होने के कारण अधूरा है।

किरपाल सिंह केसल, परमिंदर सिंह एवं गोबिन्दसिंह लांबा ने 'पंजाबी साहित दी उत्पत्ति अते विकास' नाम से जो इतिहास लिखा है, वह विद्वानों द्वारा प्रषंसित है। इन्होंने काल खंड के मुख्य तीन भाग दिये हैं - आदि काल, मध्य काल, आधुनिक काल। इन काल खंडों को फिर उपखंडों में बांटा और काव्य धाराओं एवं साहित्य रूपों के आधार पर समझने का प्रयत्न किया गया है। यह इतिहास पंजाबी साहित्य को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है। लेकिन इस साहित्योतिहास की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि नये संस्करण में 'आदिकाल' को 'मध्यकाल' के अन्तर्गत बिना किसी तर्कसंगत कारण के समाविष्ट कर दिया गया है।

पंजाबी साहित्य के इतिहास लेखन का कार्य भाषा विभाग, पंजाब (दो भाग), पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पाँच भाग), पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (तीन भाग), गुरू नानक देव विष्वविद्यालय, अमृतसर (तीन भाग) एवं पंजाबी अकादमी, दिल्ली (14 भाग) ने अपने-अपने धरातल पर किया है। इन संस्थागत इतिहासों में त्रुटियाँ रह गई हैं जिसके कारण ये इतिहास कहीं पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाये। इन्हें संतोष जनक नहीं माना जा सकता।

12.4 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन

अभी तक हमने पंजाबी साहित्येतिहास की परम्परा और दृष्टियों का संक्षेप परिचय में प्राप्त किया है। अब हम पंजाबी साहित्य का काल-विभाजन करेंगे जो अधिकांश विद्वानों द्वारा अनुमोदित है:-

आदिकाल (850 ई. से 1500 ई. तक)
(क) नाथ योगियों का काव्य
(ख) बाबा फ़रीद शकरगंज (सूफ़ी काव्य)
(ग) लोक साहित्य
(घ) वार काव्य
मध्यकाल (1500 ई. से 1850 ई. तक)
(क) गुरमत काव्य
(ख) गुरमत काव्य के प्रतिनिधि कवि
(ग) श्री गुरू ग्रंथ साहिब
(घ) सूफ़ी काव्य
(च) सूफ़ी काव्य के प्रतिनिधि कवि
(छ) किस्सा काव्य
(ज) किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि
(झ) वार काव्य

(घ) गद्य साहित्य
आधुनिक काव्य (1850 ई. अब तक)
(क) ईसाई मिश नरियों का पंजाबी भाषा और साहित्य को योगदान
(ख) सिंह सभा का योगदान
(ग) पंजाबी कविता
(घ) उपन्यास-साहित्य
(च) कहानी-साहित्य
(छ) निबन्ध
(ज) आलोचना
(झ) नव्यतर गद्य विधाएँ

अब हम इस विभाजन का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

12.5 आदिकाल (850-1500 ई. तक)

प्यारे विद्यार्थियो ! पंजाब के आदिकालीन साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व उस काल की पंजाब की स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। पंजाब की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी रही है कि सभी आक्रमणकारियों के लिये यह प्रवेश द्वार रहा। तुर्कों, ग़ाज़ियों के आक्रमण होतें रहै। महमूद ग़जनबी ने 1001 ई. में हिन्दू राजा जैपाल को हराया। जैपाल के पुत्र आनन्दपाल के साथ उसका युद्ध 1008-09 ई. में हुआ। आनन्दपाल की दो तीन राजाओं की मिली-जुली सेना को उसने हरा दिया। इस प्रकार पंजाब में ग़जनबी राज स्थापित हो गया। ग़जनबी का मूल उद्देश्य भारत के मंदिरों को लूटना था। सोमनाथ मंदिर को भी उसने लूटा। 1030 ई. में उसकी मृत्यु हुई। उसका पुत्र मसऊद कमज़ोर सिद्ध हुआ। अतः उसका साम्राज्य केवल ग़जनी और पंजाब तक सीमित हो गया। इधर राजपूतों का दबदबा बढ़ा और उन्होंने पंजाब में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। मगर वे ग़जनबियों को बाहर न निकाल सके। ग़ज़नी पर जब मुइजुद्दीन मुहम्मद जिसे मुहम्मद गौरी के नाम से जाना जाता है, ने कब्जा किया तो ग़ज़नबियों को मार भगाया। पृथ्वीराज चौहान को हराने के बाद उसने कुतुबुद्दीन ऐवक को राज-प्रबंध सौंप दिया। इस प्रकार पंजाब में तुर्कों का राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार यहाँ गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोधी आदि ने वर्षों राज्य किया। मुसलमानों के प्रवेश के कारण दो संस्कृतियों का मेल हो रहा था। ब्राह्मणवाद की कट्टरता और बुद्धमत की दुर्बलता ने योगियों का प्रभाव बढ़ा दिया।

12.5.1 नाथ योगियों का काव्य

इस काल को कुछ विद्वान 'पूर्व नानक काल' भी कहकर पुकारते हैं। जैसे कि पहले ही आपको बताया जा चुका है कि इस काल में पंजाबी का पहला रूप 'सिद्ध मात्रिक' लिपि में लिखा जा रहा था जो बाद में संशोधित होकर वर्तमान 'गुरुमुखी' लिपि कहलाई। 'सिद्ध मात्रिक' लिपि का

पहला प्रयोग सिद्ध नाथ योगियों ने ही किया। इनसे और बाबा फ़रीद की वाणी से पंजाबी साहित्य का प्रारम्भ माना जाता है। ये नाथ सिद्ध योगी सभी पंजाब में अपने मठ स्थापित करने वाले थे। इन योगियों ने आम जनता को विषय-विकारों से मुक्त करवाने का प्रयत्न किया। राजाओं को भी ऐय्यायशी से मुक्त करके अपना शिष्य बनाया। इनमें जलंधर नाथ, मछंदर नाथ, गोरख नाथ, चरपट नाथ, चौरंगी नाथ, रतन नाथ, भतृहरी नाथ आदि प्रमुख हैं। इन नाथों की वाणी में अपभ्रंश प्रधान पंजाबी देखने को मिलती है। इन नाथों के दोहों, पदों, शब्दों और श्लोकों में व्यंग्य प्रधान साहित्य का रूप देखने को मिलता है। डॉ. राजिन्दर सिंह सेखों ने 'पंजाबी साहित दा नवीन इतिहास' में कहा है, ''निंदा और उपदेश इस साहित्य के प्रमुख साधन हैं। इन कवियों का सारा साहित्य भैरव, रामकली और गऊड़ी राग में है।'' इसमें आध्यात्म की विशेष श ब्दावली का प्रयोग हुआ है।

12.5.2 बाबा फ़रीदश करगंज (सूफ़ी काव्य) (1173 ई.-1266 ई.)

इन्हें पंजाबी साहित्य का पितामह कहा जाता है। इनकी वाणी 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित होने के कारण विकृत होने से बच गई है और अपने शुद्ध रूप में है। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में इनके 132 श्लोक तथा राग आसा और सूही में दो शब्द हैं। इनके 112 श्लोक ही हैं शेष 20 श्लोक , पहले, तीसरे और पाँचवे गुरु ने टिप्पणी के रूप में दिये हैं। बाबा फ़रीद पहले ऐसे पंजाबी कवि हैं जिनकी रचना शुद्ध और ठेठ पंजाबी में है और ये आज की पंजाबी के बहुत निकट है। इनकी सभी रचनाओं में सदाचार की, आध्यात्म की शिक्षा मिलती है जिसे कलात्मक, सरल एवं संयमित ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। फरीद एक निपुण कलाकार है जिनकी वाणी की अनेक पंक्तियाँ आज मुहावरा बन कर लोगों की जुबान पर हैं। डॉ. दीवान सिंह का कहना है, ''शिखर पर पहुँचा आध्यात्म और रहस्यवादी अनुभव यथार्थ से ऐसे घुल मिल गया है जैसे संसार की ठोस वस्तुओं में पवन सम्मिलित होता है।''

12.5.3 लोक साहित्य

यह बात स्मरणीय है कि प्रत्येक भाषा के साहित्य का पहला रूप लोक साहित्य ही होता है, जिसमें लोक गीत बुझारतें, कह मुकरियाँ और दो सुखने आदि होते हैं 'कह-मुकरियाँ' उन बुझारतों को कहते हैं जिनमें जवाब भी इनमें ही दिया जाता है। दो सुखने में सवाल दो भाषाओं में होता है जवाब उस शब्द द्वारा दिया जाता है जो दोनों भाषाओं में सांझा हो। ये सब रचनाएँ अमीर खुसरो के नाम के साथ जुड़ी हुई हैं। ये सब रचनाएँ लोक वाणी द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होती हुई बदले रूप रंग में हम तक पहुँची हैं।

12.5.4 वार काव्य

वार काव्य या वारां पंजाबी में वीर काव्य को कहते हैं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि पंजाब की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है कि यहां के निवासियों को आदिकाल से ही बाहर के आक्रमणों का सामना करना पड़ा है। वीर काव्य वीरों को युद्ध क्षेत्र में वीरता दिखाने की प्रेरणा

हेतु रचे जाते थे। इस काल के वार-कवियों का पता नहीं। हाँ पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने अपनी किताब 'गुरमत निर्णय सागर' में इन वारों के नमूने प्रस्तुत किए हैं। इन्हीं के आधार पर श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज वारों को गाने का हुक्म दिया गया।

फुटकर के अन्तर्गत 'गद्य' का प्रारम्भिक रूप आता है जिसका वर्णन 'गद्य साहित्य' में किया जायेगा।

12.6 मध्यकाल (1500 ई.-1850 ई. तक)

कुछ विद्वान इसे दो भागों में बांट कर देखते हैं - पूर्व मध्यकाल (1500-1700 ई.) और उत्तर मध्यकाल (1701-1850 ई.)। कुछ विद्वान इसे 'गुरू नानक काल' और 'उत्तर गुरू नानक काल' कहकर भी पुकारते हैं। इस काल को पंजाबी का 'स्वर्ण युग' कहकर पुकारा जाता है। इसके अध्ययन से पूर्व इसकी परिवेश गत स्थिति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

गुरूनानक के जन्म के समय लोधी और पठानों का राज्य था। यह राज्य भ्रष्टाचार, बईमानी और बेइन्साफी से भरा हुआ था। सामाजिक दषा भी ऊँच-नीच, जाति-भेद, बहमों-भ्रमों, झूठे रस्म, रिवाजों का षिकार थी। बाबर ने इब्राहिम लोधी को हराकर अपना राज्य कायम किया। मुगलों के भारत में कब्जा करने पर कई सदियों के बाद लोगों को षान्ति प्राप्त हुई। हिन्दुओं पर अत्याचार कम हुए। बाबर नानक का समकालीन था तो औरंगज़ेब दसवें गुरू गोबिन्दसिंह का। अकबर को छोड़कर सभी राजाओं की गुरूओं से ठनी रही है। जहांगीर, शाह जहां, औरंगज़ेब सभी ने गुरूओं को प्रताड़ना दी। यह सब होते हुए भी मुगलों के दौर में कोई बड़ी बग़ावत नही हुई, न ही कोई बाहर से आक्रमण हुआ। औरंगज़ेब का राज्य अवष्य विद्रोह का अखाड़ा बना। गुरू तेग़बहादुर की श हीदी के बाद 1699 ई. में गुरू गोबिन्द सिंह ने 'खालसा पंथ' की नींव रखी ताकि धर्म की रक्षा की जा सके। 1707 ई. में औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उनका बेटा मुअज़म, जो बहादुरशाह कहलाया, गद्दी पर बैठा। इधर बंदा बहादुर ने पंजाब में मुग़लों की नाक में दम कर दिया। 1716 ई. में बंदा बहादुर की श हीदी के बाद 30 वर्ष तक सिखों पर अकथनीय, असहनीय अत्याचार हुए। 1739 ई. में इरान के राजा नादिरशाह ने आक्रमण करके मुहम्मदशाह रंगीले की कमर तोड़ दी। 1757 ई. को अहमदशाह अब्दाली ने केन्द्रिय श क्ति यानी मुग़ल श क्ति को कमज़ोर कर दिया। सिखों का मूलनाश करने के प्रयत्न हुए। सिखों ने हौसला करके 12 संगठन बना लिये जिन्हें 'बारह मिसले' कहकर पुकारा जाता है। इन्हीं मिसलों में 'षूकरचकिया' मिसल के सरदार रणजीत सिंह ने पहले 1801 ई. में लाहौर पर कब्ज़ा कर लिया और फिर धीरे-धीरे 1839 ई. तक पूरे पंजाब तक अपनी हदों का विस्तार कर लिया। लेकिन आपसी झगड़ों और रणजीत सिंह की मौत के बाद सिख शक्ति समाप्त हो गई और 1849 ई. तक पंजाब पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो गया।

12.6.1. गुरमत काव्य

लौकिक एवं अलौकिक संसार से सम्बंधित गुरूओं और ' श्री गुरू ग्रंथ साहिब' में दर्ज़ वाणीकारों की विचारधारा को समूचे रूप में गुरमत काव्य कहा जाता है। इस काल में रचे गये सम्पूर्ण काव्य में सर्वश्रेष्ठ काव्य गुरूओं का ही है जिसे 'आदि ग्रंथ' में संकलित किया गया है। डॉ. परमिंदर सिंह का इस सम्बंध में कहना है, ''पंजाबी साहित्य में गुरमत काव्य धारा सबसे श क्तिशाली कही जा सकती है क्योंकि इस काल की अन्य सभी साहित्यिक प्राप्तियों से, जहाँ आकार में यह सबसे अधिक है, वहाँ लोक भावनाओं की भी यह सबसे अधिक व्याख्या करती है। सभी गुरूओं ने समाज को आध्यात्मिक भाईचारा, सदाचार और सभ्याचार आदि भिन्न-भिन्न पक्षों से विकसिक करने के लिये साहित्य को एक साधन के रूप में जीवन के ठोस विकास का साधन सिद्ध किया।" गुरू नानक, गुरू अंगद देव, गुरू अमरदास, गुरू रामदास, गुरू अर्जुन देव, गुरू तेग बहादुर एवं गुरू गोबिन्द सिंह की वाणी आध्यात्मिक और कलात्मक दृष्टि से निःसंदेह उदात्त जीवन दृष्टि की परिचायक है। ये सारी वाणी संगीत बद्ध है।

12.6.2. गुरमत काव्य के प्रतिनिधि कवि

प्रिय विद्यार्थियो ! अभी तक हमने गुरमत काव्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया है। अब हम इसके प्रमुख काव्यों का परिचय प्राप्त करेंगें। इस अध्ययन को करते समय सदैव स्मरण रखें कि पंजाब की संस्कृति का यह मूल आधार है और सभी कवियों का वर्णन यहाँ नहीं दिया जा सकता है।

12.6.2.1. गुरू नानक (1469 - 1539 ई.)

गुरू नानक पंजाब के ही नहीं समूचे भारत में समादृत हैं। उनकी प्रामाणिक वाणी 'श्री गुरू ग्रंथ साहिब' में संकलित है। 2949 बंदों में समाहित उनकी वाणी 19 रागों में निबद्ध है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में संकलित उनकी वाणी गुरू अर्जुन देव को छोड़कर सबसे अधिक है। उनकी वाणी के बारे में डॉ. परमिंदर सिंह का कहना है - ''इस अमर साहित्य की सबसे बड़ी खूबी यह है कि गहरे से गहरे, गम्भीर से गम्भीर और सूक्ष्म आध्यात्मिक विषयों को लोक अनुभव के अधिक से अधिक निकट रखा और उसे लोक भाषा के माध्यम से रूपायित किया।" पंजाबी साहित्य के नये युग का प्रारम्भ करने वाले, साहित्य को लोक-जीवन से जोड़ने की नयी परम्परा डालने वाले गुरू नानक 24 वर्ष तक देश देषाटन करते रहै। उनकी वाणी में जपुजी साहब, तुखारी राग का बारहमासा, बाबर वाणी प्रसिद्ध है।

12.6.2.2. गुरू अर्जुन देव (1563 - 1606 ई.)

गुरू अर्जुन देव की पंजाब को सबसे बड़ी देन तो 'श्री गुरू ग्रंथ साहब' का सम्पादन है जिसका परिचय आपको पहले दिया जा चुका है। इस ग्रंथ में उनकी सम्पूर्ण वाणी संकलित है। 'सुखमनी', 'बारमहासा', 'फुहने' और 6 वारें उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आप की भाषा शुद्ध एवं ठेठ पंजाबी है। प्राकृत, संस्कृत एवं ब्रज भाषा में भी आपने रचनाएँ की हैं। दार्शनिक चिन्तन

आप से पहले के गुरूओं से अलग नहीं, मगर सभी रचनाओं पर आपके व्यक्तित्व की छाप है। काव्य की मिठास, प्रवाह और सुन्दर शब्द- योजना आपकी रचनाओं का श्रेष्ठ गुण है। 'सुखमनी' पंजाबी प्रबंध-काव्य का उत्कृष्ट नमूना है।

12.6.2.3. गुरू तेग बहादुर (1666 - 1708 ई.)

गुरू तेग बहादुर की वाणी परिमाण में कम है केवल 59 पद और 57 श्लोक। इनकी वाणी को गुरू गोबिन्द सिंह ने श्री गुरू ग्रंथ साहब में दर्ज करवाया। गुरू जी की वाणी में संसार की नष्वरता और वैराग्य का स्वर प्रमुख है। संसार, मानवीय सम्बंध सब अस्थिर हैं। मनुष्य स्वार्थ के चलते सबसे सम्बंध बनाता और तोड़ता है - उनकी सम्पूर्ण वाणी इस बात को दोहराती है।

12.6.32.4. गुरू गोबिन्द सिंह (1666 -1707 ई.)

गुरू गोबिन्द सिंह की सम्पूर्ण वाणी 'दश म ग्रंथ' में संकलित है। 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में एक दोहा ही है। आपकी वाणी 'चंडी दी वार' एवं दो शब्दों को छोड़ कर, ब्रज भाषा में है। 'चण्डी दी वार' लिखने का उद्देश्य जन-साधारण में आत्मिक बल के साथ-साथ वीरता की भावना भर कर उन्हें अत्याचार और अन्याय के विरूद्ध खड़े होने के लिये प्रेरित करना है। उनकी यह रचना विद्वानों के अनुसार पंजाबी की पहली प्रामाणिक वीर रस की रचना है। 'मित्तर प्यारे नू' उनकी पंजाबी की उत्कृष्ट रचना है।

12.6.2.5. भाई गुरदास (1543 - 1637 ई.)

भाई गुरदास को डॉ. परमिंदर सिंह ने 'मध्यकाल के सारे कवियों में शिरोमणि' कहकर पुकारा है। आपने 39 बारें पंजाबी में और 600 से ऊपर कवित्त एवं सवैये ब्रज भाषा में रचे। 'गुरू अर्जुन देव' ने इनकी रचना को 'श्री गुरू ग्रंथ साहब की कुंजी' कहकर सम्मान दिया था। पंजाबी में सबसे अधिक वारे लिखने का श्रेय भी इन्हें ही प्राप्त है। आपकी रचनाओं में गुरूवाणी की विस्तार पूर्वक व्याख्या और गुरमत की विचारधारा को तर्क एवं उदाहरणों से स्पष्ट किया।

12.6.3. श्री गुरू ग्रंथ साहिब

यहाँ इस बात का उल्लेख अत्यंत महत्त्व पूर्ण है कि इन समस्त गुरूओं की वाणी बिना किसी मिलावट के ठीक उसी रूप में हम तक पहुँची है जिस रूप में उन्होंने रची थी। इसके षुद्ध रूप का सारा श्रेय ' श्री गुरू ग्रंथ साहिब' को है जिसे गुरू अर्जुन देव ने 1604 में अनथक मेहनत से तैयार किया और जो आज भी ज्यों का त्यों सिखों का एकमात्र आधार ग्रंथ है। विष्व के सभी धर्मों में संभवतः यह एक अकेला ग्रंथ है जो षुद्धता की दृष्टि से प्रामाणिक है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में दर्ज वाणी बहु-भावी और व्यापक है। इसलिये इसे सम्पूर्ण भारत की सांझी विरासत स्वीकार किया जाता है। गुरू अर्जुन देव ने 6 गुरूओं के अतिरिक्त उन भक्तों, संतों, सूफ़ी कवि षेख़ फ़रीद को भी श मिल किया जिनका विचार गुरमत के अनुरूप है। इस ग्रंथ में भले ही भाई गुरदास और गुरू गोबिन्द सिंह श मिल नहीं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि ये गुरमत विचार धारा से अलग हैं। दोनों गुरमत विचार धारा का हिस्सा है। गुरू गोबिन्द सिंह की अधिकांश रचनाएँ ब्रज भाषा

में है - 'चण्डी दी वार' को छोड़कर। उनकी वाणी 'दश म ग्रंथ' में संकलित है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब के गुरू नानक, गुरू अंगद देव, गुरू अमरदास, गुरू रामदास, गुरू अर्जुन देव, गुरू तेगबहादुर के अतिरिक्त जिन भक्तों की वाणी संकलित है वे हैं - कबीर, नामदेव, रविदास, त्रिलोचन, फ़रीद, बेनी, धन्ना और जयदेव। उल्लेखनीय है कि इस ग्रंथ में 11 भाटों की रचनाएँ भी संकलित हैं। सामान्यतः भाट वो कवि होते हैं जो राजाओं और कुलीन वर्ग के लोगों की प्रशंसा में 'वारें' रचते थे या उन के जीवन वृतान्त सुनाते थे। इनकी वाणी में सिख संस्था के महत्त्व का वर्णन है। सम्पूर्ण श्री गुरू ग्रंथ साहब को संगीत की अलग-अलग राग-रागनियों में गाने का आदेश है। गुरूद्वारों में जो गायन होता है वह इसी गुरू आज्ञा का पालन है।

12.6.4. सूफ़ी काव्य

इस्लाम के भारत में प्रवेश के साथ ही सूफी विचारधारा का प्रवेश हुआ । पंजाब के सामाजिक जीवन, संस्कृति, भाषा, लोकछंद, अलंकार, प्रतीक बिम्ब पंजाबी सूफी कविता का श्रृंगार बने । यह कविता इस्लाम की कट्टर परिधि से बाहर आकर पंजाबियों के जीवन का अंग बन गई। 'सूफी' शब्द 'अरबी' शब्द 'सूफ' से बना है जिसका अर्थ है 'ऊन'। हजरत मुहम्मद के समकालीन सूफी ऊन के कपड़े पहनते थे। जो लोग सांसारिक मोह-माया को छोड़कर आध्यात्मिक रास्ते पर चल पड़ते थे वो काले कपड़े पहनकर फकीर बन जाते थे। वे ही सूफी थे।

पंजाबी सूफ़ी धारा बारहवीं सदी से आरम्भ होकर सत्रहवीं सदी में अपने षिखर पर पहुँचती है और उन्नीसवीं सदी के पहले मध्य में अपने पतन को प्राप्त होती है। इस अवधि में इष्क़, रांझा और विरह इनके स्थाई आधार रहै। शेख़ फ़रीद को पहला पंजाबी कवि और पहला सूफी कवि माना जाता है। इसने अपने 'शब्दों और श्लोकों' के माध्यम से परमात्मा और मौत' से इश्क को जोडा। शाह हुसैन ने 'काफी' और सुलतान बाहू ने 'सिहरफी' के माध्यम से विरहा और बौद्धिकता से इसमें रंग भरा। बुल्लेशाह का काव्य तो पंजाबी काव्य की सीमाओं का लांध कर देश -व्यापी हो गया है। उसे प्रायः सभी उच्चकोटी के गायकों ने गाया है। बुल्लेशाह में मस्तमौलापन भी है, कबीर सी अक्खडा भी, पाखंड विरोध भी, इश्क में एकनिष्ठता और तल्लीनता भी। अली हैदर, सैय्यद गुलाम कादर शाह, शाह हबीब, फर्द फकीर, मियाँ जान मुहम्मद, गुलाम जीलानी रोहतकी, मौलाना अब्दुल रहिमन खुलदी, हाश म, कादर बख़्ष बेदिल उर्फ़ बेदिल फ़कीर, हिदायतुल्ला, गुलाम फरीद ने भी अपने सूफी काव्य से पंजाबी कविता को आगे बढ़ाया। सूफ़ी काव्य जहां वेदांत और गुरमत विचारधारा से प्रभावित हुआ वहां गुरमत को अपनी उपलब्धियों से प्रभावित किया।

12.6.5. सूफ़ी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि

सूफ़ी काव्य का परिचय प्राप्त कर लेने के बाद इस लम्बी परम्परा के कुछ प्रतिनिधि कवियों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक होगा कि पंजाबी में सूफ़ी काव्य का प्रारम्भ फ़रीद शकरगंज से माना जाता है - जो मध्यकाल से पहले हुए और जिनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

12.6.5.1.शाह हुसैन (1539 - 1593 ई.)

शाह हुसैन की 163 काफ़ियाँ रागों में हैं। डॉ. सुरिन्दर सिंह कोहली शाहहुसैन को 'नई पंजाबी में लिखने वाला पहला सूफ़ी' मानते हैं। इनकी काफियों में सूफ़ी काव्य के सभी प्रमुख लक्षण देखने को मिलते हैं। अपने विचारों और सिद्धान्तों में वह पूर्णतया भारतीय हैं। उसके सूफ़ी रहस्यवाद में भारतीय और ईरानी विचारों का सुन्दर मिश्रण है। सदाचार ओर दार्शनिक दृष्टि से आपकी कविता महत्त्व पूर्ण है। शाह हुसैन को विरह का कवि भी कहा जाता है। उसने ईष्वरीय प्रेम, जिसे 'इश्क हकीकी' कहा जाता है, अत्यंत वेगपूर्ण भावों में व्यक्त किया है। साह हुसैन के काव्य से सूफ़ी विचारधारा अपने एक ऐतिहासिक विकास की नई मंज़िल तक पहुँच जाती है।

19.6.5.2. बुल्लेशाह (1680 - 1758 ई.)

बुल्लेशाह वारिसशाह की भांति पंजाब और समय की सीमा पार करके आज भी सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक है। इसका वास्तविक नाम अब्दुल्ला था। इनायत शाह का भरी जवानी में शिष्य बनकर बुल्लेसाह ने सूफ़ी मत का प्रचार किया। अपने 'मुश' (उस्ताद) की मृत्यु के बाद तीस वर्ष तक बुल्लेसाह ने उनकी गद्दी पर बैठ कर लोगों को सूफ़ी मत की ओर प्रेरित किया। बुल्लेशाह ने सूफ़ी काव्य को यौवन तक पहुँचा दिया। डॉ. असलम राना ने बुल्लेशाह को 'पंजाबी का बेबाक शायर' कहा है क्योंकि बुल्लेशाह जितना स्पष्ट वादी सूफ़ी था, वैसा कोई नहीं था। वह बेझिझक होकर पांखड़ियों को खरी-खरी सुना देता था - जैसे कबीर। दोनों ही हृदय से निष्छल थे। बुल्लेशाह के काव्य में अद्वैत विचारधारा स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। इसी को सूफ़ी शब्दावली में 'वहदतुल वुजूद' कहा जाता है। इस अवस्था में किसी वस्तु में कोइ भेद नहीं रह जाता। सब ईश्वरमयी हो जाता है। बुल्लेशाह की कविता का यही मूलाधार है। बुल्लेशाह ने 158 काफियाँ रचि जो सर्वाधिक प्रचलित हैं। उन्होंने 48 दोहरे, 40 गंडां, 3 सिहर्फियाँ, 1 अठवारा तथा 1 बारमासा रचीं। छंद की दृष्टि से इन्हें काफी, बैंत, दोहरे, गीत आदि में बांटा जा सकता है। इन सब रचनाओं में सूफ़ी रहस्यवादी अनुभव को बुल्लेशाह ने अत्यंत सुघड़ श ब्दावली में अभिव्यक्त किया है। बुल्लेशाह ने अपने सभी बिंब, अपने अलंकार, प्रतीक साधारण जन-जीवन एवं प्रकृति से लेकर अपने काव्य को लोक-काव्य के निकट पहुँचा दिया। इसलिये वह सर्वाधिक लोकप्रिय है।

12.6.5.3. वजीद (1550-1660 ई.)

डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने मुगलकाल के उतर्राद्ध के तीन प्रसिद्ध सूफ़ी कवियों में इन्हें एक माना है। वजीद की पंजाबी में रचनाओं की संख्या 77 मानी जाती है। वजीद पहला पंजाबी कवि है जिसके काव्य में नाटकीय, व्यंग्य और हास्य मिलता है। वजीद सामाजिक असमानता और दरिद्रता के लिये परमात्मा को भी ताने देने की हिम्मत करता है। वजीद की सभी रचनाएँ 'बाबा वजीद' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। वजीद ने अन्य सूफ़ियों से अलग समाज सुधार का मार्ग अपनाया। संभवतः इसलिये उसकी वाणी में कटाक्ष और व्यंग्य देखने को मिलता है। इस दृष्टि से वह सूफ़ी होकर भी यथार्थवादी है।

12.6.6. किस्सा काव्यधारा

पंजाब में किस्सा काव्य का प्रारम्भ मध्यकाल में माना जाता है। विद्वानों का मानना है कि ये फ़ारसी की मसनवी के आधार पर रचे गये। केवल स्थानीय रंग और ग्रामीण रूप पंजाबी का है। शेष ढांचा फारसी मसनवी का है। फ़ारसी में लम्बी कहानी को मसनवी कहा जाता है। पंजाबी में किस्सा उस छंदबद्ध वृतान्त रचना को कहा जाता है जिसमें कथानक का सम्बंध प्रेम, रोमांस आदि के साथ हो। अब ये नाम प्रेम, रोमांस के साथ रूढ़ हो गया है। पंजाब के प्रसिद्ध किस्साकारों में दमोदर (किस्सा सस्सी पुन्नू, युसुफ जुलैखा) अहमद गुजर (बैंत छंद में हीर रांझा का किस्सा) मुकबल (किस्सा हीर), वारिसशाह (किस्सा हीर रांझा), हामद (किस्सा हीर रांझा), हाश म (किस्सा सस्सी पुन्नू), इमाम बख़्श (शाह वहराम), कादर यार (पूरण भगत, सोहणी महिवाल) आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमें वारिसशाह की हीर -जो कि पंजाबी किस्सा काव्य का प्रमुख आधार है -अपनी लोकप्रियता में अद्वितीय है।

12.6.7. किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि

प्यारे विद्यार्थियो ! यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि आध्यात्मिक काव्य के बाद मध्यकाल की सबसे अधिक प्रतिनिधि धारा किस्सा काव्य ही है। इनके प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

12.6.7.1. दमोदर

दमोदर से पंजाबी किस्सा काव्य का प्रारम्भ होता है। दमोदर के जन्म मृत्यु का इतिहास प्रामाणिक नहीं है। इतना ही पता चलता है कि वह बहलोल लोधी और शेरशाह सूरी के समय युवा और अकबर के समय बूढा था। दमोदर का एक ही किस्सा 'हीर रांझा' मिलता है जो 'दवइया छंद में है, जिसकी 28 मात्राएँ होती हैं। उल्लेखनीय है कि पंजाबी में 'हीर रांझे' का किस्सा लिखने वाले लगभग दो सौ कवि हैं। अतः कह सकते हैं कि यह विषय कवियों का प्रिय विषय है। दमोदर का 'किस्सा हीर रांझा' कई विद्वानों ने सम्पादित करवाया है और इसके 950 से 990 तक बंद हैं। इसकी बोली लहंदी पंजाबी या झांगी है। इसमें फारसी के तत्सम श ब्द देखने को मिलते हैं। यह किस्सा सवाल-जवाब या नाटकीय ढंग से लिखा गया है। कवि ने कई स्थानों पर अपना बयान भी दर्ज किया है। दमोदर के काव्य में संयम, संक्षेप और संकोच है। कला की दृष्टि से यह किस्सा वारिसशाह से कम नहीं। इसमें श्रृंगार, वीर एवं करूणा रस की प्रधानता है। अलंकारों का प्रयोग भी कवि के काव्य-कौश ल का परिचय देता है। पंजाबी में इस किस्से का विशेष महत्त्व है।

12.6.7.2. पीलू

पीलू अकबर और जहांगीर (1556 से 1627 ई.) के समय था। 'मिरजा साहिबा' लिखने वाला वह पहला कवि है। उसकी रचना लोगों की जुबान से होती हुई प्रकाशित हुई। पीलू का यह किस्सा अधूरे रूप में प्राप्त है जिसकी कडी भी कई बार टूटती है। पीलू का यह किस्सा लोगों को इतना प्रिय है कि इसका आधा हिस्सा तो सभी को याद है और गायक जब इसे गाते हैं

तो दिलों को हिला कर रख देते हैं। पंजाबी के प्रारम्भिक आलोचक बावा बुध सिंह ने पीलू के किस्से को 'जटका' (सतही) कहा है जबकि मौला बख़्ष कुष्ता ने इस किस्से में सोज़, प्रतीक, संकेत और प्रवाह पाया है। इसमें संदेह नहीं कि 'मिरजा साहिबा' हीर के बाद पंजाबी लोगों में अत्यंत लोकप्रिय है।

12.6.7.3. वारिस शाह

वरिस शाह पंजाब के उन सौभाग्यषाली कवियों में से एक है जो पंजाब की सीमा, काल की सीमा को पार करके पूरे भारत के प्रिय हुए और आज भी हैं। वारिसशाह की 'हीर' की लोकप्रियता का अब तक कोई मुकाबला नहीं कर सका। वारिस ने 'हीर' का किस्सा घर-घर पहुँचा दिया। वारिसशाह के जन्म एवं मृत्यु के बारे में विवाद रहा है। मगर यह माना जाता है कि उसका जन्म 1720 ई. में और मृत्यु 1792 ई. में हुई तथा उसने अपना यह किस्सा 1766-67 ई. में पूर्ण किया। वारिसशाह ने अपना यह 'किस्सा हीर वारिस' बैंत छंद में लिखा और इस छंद को अपनी श्रेष्ठता तक पहुँचाया। इस किस्से में उसनें उस समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक स्थितियों का बड़ी लगन से वर्णन किया है। उस समय के समाज के रीति, रिवाज, विवाह आदि का बड़ा सजीव वर्णन मिलता है। वह इश्क मजाज़ी की बातशुरू करके उसे 'इश्क हकीकी' की ओर मोड़ देता है। ऐसा करके भी वह यथार्थ पर परदा नहीं डालता। वारिस की सबसे बड़ी विशेष ता उसकी प्रभावशाली भाषा है। अनुभव की विशालता और वर्णन की अद्भुत क्षमता उसे श्रेष्ठता प्रदान करती है। केन्द्रीय और पश्चिमी पंजाबी का सुंदर सम्मिश्रण उसकी भाषा में है। फारसी श ब्दावली का उसने खुलकर प्रयोग किया है। विश्वकोषीय ज्ञान उसकी एक और बड़ी खूबी है। जीवन की हर स्थिति के बारे में वारिस का ज्ञान हैरान करने वाला है। दृश्य का चित्रण करने और नखशिख वर्णन में वह बेजोड़ है। शिप्ले ने अपनी पुस्तक 'एनसाइक्लोपीड़िया ऑफ लिट्रेचर' में वारिसशाह को पंजाब का सबसे बड़ा कवि और 'हीर' को उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना कहा है।

12.6.7.4 हाश म (1752 - 1829 ई.)

हाश म महाराजा रणजीत के समय का सबसे श्रेष्ठ किस्सा कवि है। इसके किस्से 'सोहणी महिवाल', 'हीर रांझे की बिरती', 'सस्सी पुन्नू', 'श्री-फरहाद की बारता' आदि हैं जिनमें उस युग के सरोकारों का भी वर्णन है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'किस्सा सस्सी पुन्नू' है। हाश म से पहले लिखे इस किस्से को वो प्रसिद्धि नहीं मिली जो हाश म को प्राप्त हुई। इस किस्से में 126 छंद हैं। दवइया छंद में रचित यह किस्सा नाटकीय षैली में लिखा होने के कारण कथावस्तु की कमी अनुभव नहीं होने देता। 'सोहणी महिवाल' में आलोचक चमक और रस नहीं पाते जो 'सस्सी पुन्नू में है। हाँ 'सोहणी' के विरह का वर्णन प्रभावषाली है। किस्सों के अतिरिक्त हाश म ने फुटकर काव्य भी लिखा।

12.6.7.5. कादरयार (1802 - 1892 ई.)

कदरयार का वास्तविक नाम कादर बख़्ष था। उसकी कई रचनाएँ हैं - पूरण भगत, किस्सा सोहणी महिवाल, रोज़ानामा, वार रानी कोकिलां, वार हरी सिंह नलूआ आदि। जैसे

वारिस का शाह कार 'हीर' है, हाश म का 'ससी हाश म' है, ठीक उसी प्रकार कादरयार की रचना 'पूरण भगत' है जिसे उन्होंने बैंत छंद में लिखा। यह किस्सा उसने अपने समकालीन जाटों को ऊँचा उठाने के लिये लिखा। इसमें उसने मां की ममता के गौरव और महिमा को वर्णित किया है। इस रचना से प्रभावित होकर ही षिवकुमार बटालवी ने 'लूणा' लिखी। इस रचना में फ्रायड के 'इडिपस कम्पलेक्स' के रेषे भी दृष्टिगोचर होते हैं। 'सोहणी महिवाल' में कादरयार की काव्य कला और निखरी है। इसमें विरह का वर्णन, भाषा की मिठास और षैली की रवानगी स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

12.6.7.6. फ़ज़लशाह (1828 - 1890 ई.)

फ़ज़लशाह अपने समय के एक श्रेष्ठ किस्सा काव्यकार थे। अरबी, फारसी का गहरा ज्ञान उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। इनके पाँच किस्सा काव्य मिलते हैं - सोहणी महिवाल (1846 ई.), सस्सी पुन्नू (1862 ई.), हीर रांझा (1866 ई.), लैला मजनू (1870 ई.) और युसुफ जुलैखा (1870 ई.)। सोहणी महिवाल इन्होंने बीस वर्ष की आयु में रचा और यही उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इसमें कवि ने कथानकगत कई नये तथ्य शामिल किए हैं। इसको लिखने की प्रेरणा भी इसे निजी वियोग की पीड़ा से मिली। शब्दों का जादूगर होने के कारण इसने अपनी कविता की पहचान बनाई। बैंत छंद का सुन्दर प्रयोग और श ब्दालंकारों की बहुतायत इनके काव्य की विशेष ता है। इसने अपने सभी किस्सों में इश्क -ए-मजाज़ी से इश्क - ए-हकीकी की यात्रा करवाई है। लेकिन जहाँ भी इसे अवसर मिला है इसने इस्लाम धर्म की प्रशंसा करके इसका प्रचार किया और यूँ धर्म निरपेक्षा की प्रवृत्ति को धक्का पहुँचाया।

12.6.8 वार काव्यधारा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वार काव्यों का प्रारम्भ आदिकाल में ही हो गया था। मगर मध्यकाल तक आते-आते इसके कई रूप हो गये। सांसारिक वारों के साथ आध्यात्मिक वारें लोक वारें, ऐतिहासिक वारें, मिथ वारें, नवीन वारें आदि लिखी जाने लगीं। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में 22 वारें हैं। 39 वारें भाई गुरदास ने और 2 वारें दूसरे गुरदास के नाम पर प्रचलित हैं। इस युग के प्रमुख वीर रस के कवि हैं अब्दुला, पीर मुहम्मद हाफिज़ बरखुरदार और गुरू गोबिन्दसिंह। गुरू गोबिन्दसिंह की 'चण्डी दी वार' से वीर काव्य षिखर पर पहुँचता है। हाफित बदखुरदार द्वारा रचित जंगनामा भी इसी काल में रचा गया। वीर काव्य पंजाबी साहित्य की अपनी विशेष ता है। पंजाब की भौगोलिक स्थिति, इसकी प्राचीन विरासत, परम्परा, इतिहास, पंजाबी चरित्र- सब मिलकर इस धारा को जीवित रखे हुए हैं।

12.6.9 गद्य साहित्य

कुछ विद्वानों का मानना है कि पंजाब में गद्य लेखन आदिकाल में ही शुरू हो गया था लेकिन कुछ उदाहरणों को छोड़ कर कोई रचना नहीं मिलती। अतः मध्यकाल में यह गद्य न केवल आकार, बल्कि विषय, रूप और प्रकारों की भिन्नता के कारण अपना महत्त्व रखता है। जन्म साखियाँ, टीका, परमार्थ, वचन, महात्म, गोष्टों और हुक्मनामें इस काल की गद्य के प्रमुख रूप हैं।

ये गद्य परम्परा मूलक हैं। इसमें दार्शनिक, वृतान्त, वर्णन, व्याख्या या वार्तालाप आदि रूपों में हैं। इस युग में 'पुरातन जन्मसारणी', 'गोष्टो' गुरू नानक की, परमारथ, हाज़रनामा, प्रमुख हैं। प्रधान गद्य रूप जन्म साखियों का है। इस काल में फारसी, संस्कृत से अनुवाद भी हुए जिनमें आदि रामायण, विष्णु पुराण, पारस भाग (फारसी में) सिंहासन बतीसी, ज्ञान प्रबोध उदय चन्द नाटक, भागवत महापुराण, भागवत गीता (संस्कृत) आदि।

12.7. आधुनिक काल (1850 से अब तक)

प्यारे विद्यार्थियों ! अभी तक आपने पंजाबी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल का परिचय प्राप्त किया है। अब आधुनिक काल के विषय में जानेंगे। इस काल में पंजाबी साहित्य का बहुविध विकास हुआ है और अनेक ऐतिहासिक परिवर्तन हुए हैं। पंजाबी साहित्य के इस विकास को जानने के लिये कुछ बातों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

पंजाबी के आधुनिक साहित्य का आरम्भ उन्नीसवीं सदी से माना जाता है। 1849 ई. में सिखों की दूसरी लड़ाई के बाद अंग्रेज भारत में व्यापार करने की गरज़ से आये, अंग्रेजों ने, अन्य इलाकों की भांति, पंजाब को भी अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार पंजाब फिर गुलाम हो गया। 1857 ई. की भारत की स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में अंग्रेज़ों की जीत ने पंजाब में उनके पैर और मज़बूत कर दिये। इसके परिणाम स्वरूप यहां पश्चिमी प्रभाव पड़ने लगा। अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी नीतियाँ जहाँ पंजाब के निवासियों को दो फाड़ करने का प्रयत्न कर रही थी, वहाँ इसके कुछ अच्छे परिणाम भी हुए। यह बात यहाँ स्मरण रखना आवश्यक है कि अंग्रेज़ों ने जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सुधार किए वे केवल और केवल अपने व्यापारिक हितों को सामने रखकर किए। उन्होंने जो व्यवस्था की वह आधुनिक थी। नहरों, शिक्षा विभागों, स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटियों की स्थापना की। रेलों, सड़कों, डाक-तार आदि की व्यवस्था की। इस प्रकार भौतिकवादी सुविधाओं ने समाज और साहित्य दोनों को प्रभावित किया। यथार्थवादी सोच और पत्र-पत्रिकाओं के प्रवेश ने गद्य का बहुविध विकास किया। इस प्रकार पूंजीवाद ने अपना प्रभाव दिखाया जो बीसवीं सदी के मध्य में अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गया। इस पूंजीवाद ने मध्य श्रेणी के साथ-साथ शहरीकरण की प्रवृत्ति, आत्मकेन्द्रिता की प्रवृत्ति को जन्म दिया। साहित्य में विधा-रूपगत परिवर्तन तो हुए ही।

एक बात विद्यार्थियों सदैव आपको स्मरण रहनी चाहिये कि साहित्य में परिवर्तन एकदम किसी निश्चित तारीख में नहीं होता। यह परिवर्तन अत्यंत धीमी गति से होता है। अतः राजनैतिक परिवर्तनों के बावजूद कुछ पुरानी प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं। पंजाब में अंग्रेज़ों के आने से जो परिवर्तन हुए उसके बावजूद कुछ परम्परा से चली आ रही प्रवृत्तियाँ चलती रहीं। इनमें किस्सा काव्य और पुराने ढंग का गद्य प्रमुख है। इस युग के किस्सा काव्याधार के प्रमख कवियों में फ़ज़लशाह (जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है) मुहम्मद बख्श (1830-1904 ई.), गंगा राम (1835-1902 ई.), किश न सिंह आरिफ़ (1830-1900 ई.), मुहम्मद बूटा, भगवान सिंह

(1842-1902 ई.), मौलवी गुलाम रसूल (1840-1892 ई.), कालीदास गुजरांवालिया (1865-1944 ई.) आदि ने मध्यकालीन इस विधा को अपने हुनर से जीवित रखा।

जहाँ तक इस समय के गद्य का प्रश्न है तो अंग्रेज़ों के प्रभुत्व के कारण गद्य का पुराना रूप समाप्त होने लगा। अंग्रेज़ी गद्य के रूपों को अपनाया गया। पाठय पुस्तकें, लेख, कहानी, नावल, नाटक और षोध आदि लिखे जाने लगे। वाक्य विन्यास, शब्द-निर्माण तक में अंतर आ गया। पंजाबी पत्रकारिता अस्तित्व में आई। 1867 ई. में अमृतसर से 'श्री दरबार साहिब' निकलने लगा। 1880 ई. में लाहौर से गुरमुखी समाचार पत्र, 1886 ई. में यहीं से 'खालसा अखबार', 1896 ई. में 'सिंध सभा गजट' और 1894 ई. में भाई वीर सिंह ने अमृतसर से 'खालसा समाचार' निकाला। इस काल के प्रमुख गद्यकारों में श्रद्धाराम फिल्लौरी (1807-1881 ई.), ज्ञानी ज्ञान सिंह (1822-1925 ई.), बिहारी लाल पुरी (1830-1885 ई.), ज्ञानी दित्त सिंह (1853-1901 ई.), डॉ. चरन सिंह (1853-1908 ई.) आदि का नाम उल्लेखनीय है।

12.7. 1 ईसाई मिशनरियों का योगदान

इसमें संदेह नहीं कि ईसाई मिशनरियों का मूल उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना था और इसीलिये इनका जन्म भी हुआ। मगर इस कार्य की सिद्धि के लिये प्रांतीय भाषा का पर्याप्त ज्ञान अपेक्षित था। इसी हेतु पंजाबी व्याकरण, कोश , पाठ्य पुस्तकों का उन्हें निर्माण करना पड़ा। पंजाबी गद्य के विकास में उनका इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान है। 1834 ई. में इसकी स्थापना लुधियाना में हुई और प्रेस शुरू की तथा ढेर सारा ईसाई साहित्य पंजाब में लिखा और छापा जाने लगा। 1851 ई. में न्यूटन ने 'पंजाबी ग्रामर' और 1854 ई. में जैनविअर की सहायता से पहली पंजाबी-अंग्रेज़ी डिक्शनरी छापी। इसी प्रकार इस्डल क्लेअर ने, जोहन बीन्ज ने भी पंजाबी ग्रामर पर काम किया। सर कैम्पवैल ने पंजाबी शब्दों पर प्रशंसनीय काम किया तो लायल साहब ने कांगडे की कहावतों को एकत्रित किया। इसी प्रकार विल्सन, फालन और टेंपल, वॉकर डेन आदि ने कोश और 'रिपोर्ट' तैयार करके पंजाबी की शब्दावली और कहावतों पर काम किया। इसी प्रकार ओबराइन, रिचर्ड टेंपल, ट्रम्प, ग्रीयर्सन आदि ने इस काम को आगे बढाया। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मैकालिफ़, ग्राहम बेली, एच.जे. रोज़, स्विनर्टन, पादरी हैअरज़ ने पंजाबी इतिहास, ग्रामर कोश रोमांसवादी कथाओं आदि पर काम किया। ईसाई मिशनरियों ने ही 1854 के निकट पंजाबी का पहला पत्र निकाला। यही नहीं इन मिशनरियों ने अपनी देखरेख में पंजाब के विद्वानों से पुस्तकें भी लिखवाई। इनमें श्रद्धाराम फिल्लौरी, भाई विश नदास पुरी, माया सिंह का नाम लिया जा सकता है। श्रद्धाराम फिल्लौरी की 'सिख राज दी विथिया' एवं 'पंजाबी बातचीत' तो आधुनिक पंजाबी गद्य की पहली पुस्तक मानी जाती है।

ईसाई मिश नरियों का जहाँ यह योगदान था, वहीं लोगों के अंदर यह चेतना भी जागी कि हम अपनी संस्कृति की रक्षा क्यों नहीं कर सकते। उनके अंदर भी अपने धर्म-प्रचार की भावना पैदा हुई। इसी भावना ने पंजाब में सुधारवादी लहर को जन्म दिया और पंजाब में 'सिंह सभा जैसा मिशनरी संगठन अस्तित्व में आया।

12.7.2 सिंह सभा का पंजाबी साहित्य को योगदान

सिंह सभा पंजाबी भाषा और सिख धर्म के पक्ष वाले विद्वानों की ऐसी संस्था थी जो ईसाई मिशनरियों के सिख धर्म के विरूद्ध प्रचार के विरोध में अस्तित्व में आई थी। इस सभा के तीन प्रमुख उद्देश्य थे - धर्म सुधार, गुरूद्वारा सुधार (पुजारीवाद की विरोधता) सिखों और स्त्रियों की शिक्षा। इन तीनों सुधारों के साथ पंजाबी साहित्य का जो विकास और जो परिवर्तन हुआ, वह अद्भुत है।

सिंह सभा ने सबसे पहले 'गुरमत ग्रन्थ प्रचारक सभा' की स्थापना करके सिख इतिहास से सम्बंधित कुछ प्रामाणिक पुस्तकों को प्रकाशित करवाया जिसमें 'गुरपर्व प्रकाश , गुरमत सिद्धान्त', 'गुर प्रणाली' आदि प्रमुख हैं। फिर 'खालस टेक्स्ट सोसाइटी' ने छोटी-छोटी जीवनियाँ प्रकाशित की। गुरवाणी की व्याख्या गुरमत आशय के अनुकूल प्राप्त नहीं थीं। अतः सभा ने विभिन्न विद्वानों से गुरवाणी के आदर्श टीके तैयार करवाये। समाज-सुधार का कार्य करने के लिये इस सभा ने छुआ-छूत, बाल विवाह, विधवाओं की स्थिति, सति-प्रथा और नशे के विरूद्ध भी कई पुस्तकें प्रकाशित करवाई और एक महत्त्व पूर्ण कार्य में सहयोग दिया।

सिंह सभा ने जहाँ गुरूद्वारे बनाये, वहाँ 'खालसा स्कूलों' की स्थापना भी की, जहाँ सिख धर्म की शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों की पढ़ाई का प्रबंध किया। यही नहीं सरकार पर दवाब डालकर सभी सरकारी स्कूलों में पंजाबी अनिवार्य करवाई। इन्होंने पुस्तकालयों की स्थापना भी की जिससे इनका साहित्य लिखे जाने लगे। यूँ पंजाबी भाषा लिखे जाने वाली भाषा के रूप में भी स्थापित हो गई। 1885 ई. में सिंह सभा ने 'खालसा प्रेस' भी लगा लिया, जिससे खालसा समाचार अख़बार भी निकलने लगा। सिंह सभा का पंजाबी बोली पर जो सबसे बडा और महत्त्व पूर्ण प्रभाव पडा वह था पंजाबी का साहित्यिक बोली में बदलना। पहले इसे गंवारों की भाषा ही समझा जाता था। इसके विकास का किसी ने प्रयत्न ही नहीं किया। सिंह सभा से विद्वान जुडे तो पंजाबी भाषा का बहुमुखी विकास हुआ । सिंह सभा ने पंजाबी कवि सम्मेलनों का आयोजन ही नहीं शुरू किया, कवियों के लिये ईनामों की व्यवस्था भी की। विदेषी प्रभावस्वरूप उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के विकास का मार्ग खोला। इस प्रकार सिंह सभा का योगदान अविस्मरणीय है।

ईसाई मिशनरियों और सिंह सभा की लहर के साथ-साथ आर्य समाज की लहर, अहमदिया लहर, नामधारी लहर, निर्मल सम्प्रदाय आदि ने पंजाबी लोगों की चेतना को जाग्रत करने, शिक्षा के क्षेत्र को विकसित और समर्थन देने और प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पंजाबी साहित्य को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

12.7.3 पंजाबी कविता

अभी तक हमने आधुनिक काल की पृष्ठभूमि में पंजाबी साहित्य के विकास के प्रेरक तत्वों का परिचय दिया है। अब आधुनिक पंजाबी काव्य का परिचय प्राप्त करेंगे ।

आधुनिक पंजाबी कविता के कई पड़ाव हैं जिन्हें अलग-अलग बाँट कर देखा जाना चाहिए। विद्वानों ने अलग-अलग भाग किए भी हैं। पहली पीढ़ी, दूसरी पीढ़ी जैसा विभाजन भी किया है।

कुछ विद्वानों ने 1947 ई. को विभाजन रेखा बांट कर भी विभाजन किया है। हमने संक्षेप में सभी भागों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है।

प्रायः सभी विद्वान आधुनिक कविता का प्रारम्भ भाई वीर सिंह से मानते हैं। पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरूप पंजाबी कविता ने अपना रंग रूप बदला। इन्होंने पंजाबी का किस्सा काव्य की पुरानी परम्परा से निकालकर पश्चिमी रंग का नवीन रूप दिया। संभवतः इसलिये कुछ विद्वान इसे 'नवीन काल' कह कर भी पुकारते हैं। इस युग के कवियों का मूल उद्देश्य कविता को नवीन रूप रंग देना था। इनमें से कुछ पर सिंह सभा लहर का प्रभाव भी रहा। इनमें भाई वीर सिंह (1872-1957 ई.), लाला धनी राम चातरिक (1876-1954 ई.), प्रो.पूरण सिंह (1881-1931 ई.), कृपा सागर (1879-1939 ई.), चरन सिंह श हीद (1891-1935 ई.), डॉ. मोहन सिंह (1899-1984 ई.), दीवान सिंह कालेपानी (1894-1944 ई.) आदि प्रमुख हैं। काव्य में नवीन चेतना का विकास इन्हीं कवियों ने किया। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में जो परिवर्तन होता है उसमें 'डार्विन' के 'विकासवाद', सिंगमंड फ्रायड के 'मनोविज्ञान', मार्क्स के 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' का और 'ज्यां पाल सार्त्र' के 'अस्तित्ववाद' का बहुत बड़ा हाथ है। ईश्वर के अस्तित्व पर इन सबने प्रश्न चिह्न लगाया। भाई वीर सिंह ने 'नव रहस्यवाद' का प्रारम्भ किया तो प्रो. पुरण सिंह ने 'रोमांसवादी' कविता की नींव रखी। यही धारा आगे चल कर प्रगतिवाद में बदल गई। इस धारा के अन्य प्रमुख कवि प्रायः रोमांसवाद से निकल कर आये थे – शायद इसलिये इन्हें 'रोमांसवादी प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्ति' कह कर पुकारा जाता है। 1936 ई. में चली प्रगतिवादी धारा का सबसे पहला प्रभाव संतसिंह सेखों और प्रो. मोहन सिंह ने ग्रहण किया। बाद में बहुत से कवियों ने इसे अपनाया। इनमें अमृता प्रीतम, बाबा बलवंत, प्रीतम सिंह सफ़ीर का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। प्रो. मोहन सिंह और बाबा बलबंत ने जहाँ सामान्य जन और शोषक समाज की बात की वहाँ अमृता प्रीतम ने स्त्री के उस दोहरे संताप को अभिव्यक्ति दी जो उसे पूंजीवादी और पुरूश प्रधान व्यवस्था का हिस्सा होते हुए भोगनी पड़ी। सफ़ीर ने गले सडे प्राचीन विचारों को त्याग कर क्रांति, परिवर्तन का समर्थन दिया।

1947 ई. में भारत विभाजन अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी और 'फूट डालो और राज करो' की नीति का स्पष्ट उदाहरण है। भारत विभाजन का सबसे अधिक प्रभाव पंजाब पर पड़ा क्योंकि पंजाब विभाजित हो गया। जो लूट-पाट, क़त्ल, बलात्कार और धर्मान्धता का पाष्विक नृत्य दोनों तरफ हुआ और लोगों को अपना घर-बार छोड़कर पलायन करना पड़ा। साहित्यकार की संवेदना उसे अभिव्यक्त किए बिना न रही। प्रो. मोहन सिंह, अमृता प्रीतम, डॉ. हरभजन सिंह, गोपाल सिंह दर्दी, लाल सिंह कंवल ने इस विभाजन से सम्बंधित रचनाएँ कीं। पाकिस्तान के अहमद राही, अहमद सलीम का नाम लेना भी यहाँ आवश्यक है जिन्होंने इस विभाजन की पीड़ा को वहाँ अभिव्यक्त किया।

प्रगतिवाद में बार-बार एक ही प्रकार के प्रतीकों और विचारों के दोहराव ने पंजाबी में प्रयोगवादी (1961-1970 ई.) कविता को जन्म दिया। इसका प्रारम्भ 1961 ई. में 'पंजाबी साहित्य प्रयोग अकादमी' के द्वारा माना जाता है जिसे 1962 ई. को जालंधर श हर में प्रयोगवादी कवियों ने

और स्पष्ट किया। प्रयोगवाद की कोई लम्बी परम्परा नहीं रही। भले ही डॉ. राजिन्दर सिंह सेखों ने इसे एक बुखार कहा है मगर इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि नया काव्य रूप, नया बिंब विधान और आधुनिक मनुष्य की नई समस्याओं को अभिव्यक्ति इसी काव्य से मिली। यह भी सच है कि ये कविता आम इन्सान के होने और सोचने से कोसो दूर है। इस युग के कवियों में सुखपाल वीर हसरत, जसवीर सिंह आहलूवालिया, रवीन्द्र रवि, अजायब कमल आदि हैं। इस काव्यधारा को आगे के कवियों ने 'काग़ज़ का गर्भपात' और 'कलम की नोक' को 'बांझ' कहा है। संभवतः इसलिये इस काव्यधारा के विरोध में 'जुझारवादी' काव्यधारा (1970-80 ई.) प्रचलित हुई। इसका प्रारम्भ अवतार सिंह संधू उर्फ 'पाश ' के काव्य-संग्रह से हुआ। इसके प्रमुख कवि 'लाल सिंह दिल', 'संतराम उदासी', 'दर्शन खटकड़', 'ओम प्रकाश श र्मा' तथा 'अमरजीत चन्दन' हैं। इस काव्यधारा ने बंगाल की नक्सलवादी लहर से प्रेरणा या आधार प्राप्त किया। इन कवियों का मूलाधार राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना था। ये कविता ज़मीन से जुडी यथार्थवादी कविता है जो बैलों की पीठ पर पड़ी लाशें, पिचके गालों, पिता की समाप्त हो चुकी श राब और बेटियों के समाप्त हो चुके हास्य की बात करती हैं। इस काव्यधारा का कवि 'पाश ' पंजाबी में नयी अभिव्यक्ति क्षमता लेकर आया। कुछ पक्षों से उसे हिन्दी के 'धूमिल' के समकक्ष रखा जा सकता है। जुझारवादी काव्यधारा जिसे कुछ विद्वान नव प्रगतिवाद भी कहते हैं से संवाद रचाती एक और काव्यधारा चलती है जिसे आधुनिकतावादी या सौंदर्यवादी कविता (सोहजवादी) कह कर पुकारा जाता है। इसे प्रयोगवादी कविता का अगला पड़ाव भी कहा जाता है। इसे गहरे रंग देने का काम हरभजन सिंह और षिवकुमार बटालवी ने किया। बटालवी पंजाबी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में से एक है और उनकी कविता का मूलभाव 'वियोग या दुःख' है। इसे और अधिक आधुनिक बनाने का काम विश्वनाथ तिवारी, सतिन्दर सिंह नूर, मोहनजीत, मनजीत टिवाना, तारा सिंह कामिल, सोहन सिंह मीषा ने किया। इन पर सार्त्र, कामू, बैकेट आदि का प्रभाव है। ये लोग वर्तमान को जीने में नहीं 'भोगने' में विश्वास करते हैं।

आठवें दशक के अंत में आतंकवाद ने ख़ालिस्तान का नाम लेकर सिर उठाया। 'बंदूक' (आतंकी) और 'बैल्ट' (पुलिस) के बीच आम आदमी का जीवन कठिन हो गया। ऐसी स्थिति में पंजाबी कविता आम आदमी की पीड़ा की अभिव्यक्ति का साधन बनी। एक दशकचले इस आतंकवादी संकट पर प्रायः सभी कवियों ने कविता की। कुछ नये कवि भी जुड़े जिनमें धर्म कमियाना, अमरजीत कोके, गुरतेज कुहारवाला, स्वर्णजीत सटी प्रमुख हैं। नवें दशक के बाद जब रूस के किले बिखरे और भारत ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीति अपनाई तो पूंजीवाद को खुल-खेलने का अवसर मिला। ऐसे में जहाँ आम आदमी भूमंडलीकरण का हिस्सा बना वहीं उसका घर उसका गाँव शहरीकरण की भेंट चढ़ा। व्यक्ति अपनी संवेदना, सच्चाई को बचाने की फिक्र्र करता रहा। ऐसी स्थिति में जो कविता रची गई उसे 'समकालीन' अथवा 'उत्तर आधुनिक' कविता कहा जाता है। बीसवीं और इक्कीसवीं सदी की कविता की मुख्य विशेषता स्वकेन्द्रिकता है। अब कवि बाहर की नहीं अपने अंदर की युद्ध भूमि में युद्ध लड़ता है।

उसका परिवेश उसके भीतर समा गया है - इसी से वह संवाद रचाता है। इस युद्ध भूमि में वह अपना विरोधी स्वयं है। ऐसे समय के कवियों में सुरजीत पातर, रविन्दर रवि, अजायब कमल, सुखविन्दर, अमृत, मोहनजीत, जसवंत दीद, गुरभजन सिंह गिल, इन्द्रजीत हसनपुरी, दर्षन बूटर, रविन्द्र भट्ठल आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

पंजाबी कविता के साथ-साथ पंजाबी ग़ज़ल भी लिखी जाती रही है।शुरू में मंचीय कवियों ने इसे अपनाया लेकिन वे इसे उच्च स्तरीय न बना सके। प्रगतिवादियों में प्रो. मोहन सिंह, बावा बलवंत ने इसे विकसित करने में योगदान दिया। बाद में तख़्त सिंह, दीवान सिंह मिषा, षिवकुमार बटालवी, जगतार और सुरजीत पातर ने इसे बुलंदियों तक पहुँचाया। डॉ. राजिन्दर सिंह सोखों का मानना है कि आज 'कुछ ही ग़ज़लें और बहुत कुछ ग़ज़ल जैसा' रचा जा रहा है। कुछ ग़ज़ल लिखने वाले ग़ज़लकार हैं - एस.तरसेम, एस. नसीम, सुरजीत सखी, सुखविन्दर अमृत, गुरतेज कुहारवाला, गुरभजन गिल, हरबंस माछिवाडा, जगदीप आदि।

इस प्रकार आधुनिक पंजाबी कविता ने लधु-कविता, मुक्तछंद कविता, नज़्म, महाकाव्य, ग़ज़ल, गीत, दोहै, काव्य नाटक आदि प्रायः सभी काव्य-रूपों की यात्रा की है जो नदी की भांति निरन्तर प्रवाहमान है। यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि पंजाबी कविता केवल भारत में ही नहीं पाकिस्तान, ब्रिटेन, कैनेडा, अमेरिका में भी रची जा रही है। इसमें प्रवासी पंजाबी कविता का अपना विशेष महत्त्व है।

12.7.4 पंजाबी उपन्यास

प्रिय विद्यार्थियों अभी तक हमने कविता के विभिन्न पड़ावों की जानकारी ली है। अब हम गद्य साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। यह बात निर्विवाद है कि भारत में उपन्यास पश्चिम की देन है। पंजाबी के पहले मौलिक उपन्यास को लेकर विवाद है। प्रो. ब्रह्मजीत सिंह, भाई वीर सिंह के पिता डॉ. चरण सिंह द्वारा रचित 'महारानी शराब कौर' (1893 ई.) को पहला उपन्यास मानते हैं जबकि डॉ. राजेन्द्र सिंह सेखों एवं परमिन्दर सिंह भाई वीर सिंह रचित 'सुन्दरी' (1898 ई.) से मानते हैं। अधिकांश विद्वान इससे सहमत हैं। पंजाबी उपन्यास आदर्शवाद, यथार्थवाद से होता हुआ नवीन विचारधारा से जुड़ता चला गया है। पहले दौर के उपन्यासों पर सुधारवादी लहरों का प्रभाव है। अतः उनके उपन्यासों में आदर्शवाद देखने को मिलता है। पहले दौर के प्रारम्भिक उपन्यासकारों में भाई वीर सिंह (1872-1957 ई.), मोहन सिंह वैद (1881-1936 ई.), चरण सिंह श हीद (1881-1935 ई.) प्रमुख हैं। ये उपन्यास कला-पक्ष से कमज़ोर और दृष्टि के स्तर पर तंग दायरे को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास हैं।

दूसरे दौर का उपन्यास 1930 ई. के आस-पास शुरू होता है। इसमें रचनाकार का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण और उनसे मुक्त होने का संदेश देना है। ये उपन्यास रोमानी झुकाव छोड़ कर यथार्थवादी दृष्टि अपनाते हैं। अब लोग भौतिक जीवन को धर्म के रंगीन चश्में के स्थान पर नंगी आँख से देखने लगे थे। इस दौर का प्रारम्भ पंजाबी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार नानक सिंह (चिट्टा लहू, पवित्र पापी, इक म्यान दो तलवारां) से होता है जिन्होंने

38 मौलिक और 8 अनुवादित उपन्यास पंजाबी को दिये। इनके अतिरिक्त इस दौर के उपन्यासकारों में सुरिन्द्र सिंह नरूला (पओ-पुतर, दीन-दुनिया), संत सिंह सेखों (बाबा उसमान, लहू मिट्टी), जसवंत सिंह कंवल (रात बाकी है, सिविल लाइनज़), नरिन्दर पाल सिंह (टापू, बामुलाहिजा होषियार), सोहन सिंह सीतल (दीवे दी लौ, युग बदल गया), करतार सिंह दुग्गल (हाल मुरीदां दा, ओदी चकोडियाँ), अमृता प्रीतम (डॉ. देव, नागमणि, जेब कतरे, दिल्ली दी गलियाँ, पिंजर) आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं। इन्होंने जीवन के यथार्थ को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है। तीसरे दौर का उपन्यास सुधारवाद और यथार्थवाद के दायरों से निकलकर प्रयोगवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद के इर्द-गिर्द घूमता है। 1960 के आस-पास ये प्रवृत्तियाँ उभरीं। प्रयोगवादी रचनाकारों में सुरजीत सिंह सेठी (एक खाली प्याला), नरिजंन तस्नीम (खोए अर्थ), सुखबीर (पानी दा पुल, गर्दिश) प्रमुख हैं। आलोचनात्मक यथार्थवाद को आधार बनाने वालों में दलीप कौर टिवाना (एहो हमारा जीवणां, कथा कहो उर्वषी), गुरदयाल सिंह (परसा, अध चाँणनी रात), रामस्वरूप अणखी (कोठे खड़क सिंह), अजीत कौर (पोस्टमार्टम, फालतू औरत) आदि प्रमुख हैं।

आठवें दशकके अंत और नौवें दशक के शुरू में उत्तर यथार्थवादी दौर का उपन्यास शुरू हुआ। अब उपन्यास में अन्तर्विरोध का चित्रण होने लगा। नायक की जगह 'लघु मानव' ने ले ली और परम्परागत नायक का स्थान प्रतिनायक ने ले लिया। इस दशकमें पुराने उपन्यासकारों में गुरदयाल सिंह, दलीप कौर टिवाना, जसवंत सिंह कंवल, निरंजन तस्नीम ने ऐसे उपन्यास रचे। इस दौर के उपन्यासकारों में इन्दर सिंह खामोश (इक ताजमहल, काफिर मसीहा), मितर सेन मीत (कौरव सभा, तफ़तीश), बलदेव सिंह (लाल बत्ती, अन्नदात), निंदर गिल (पल पल मरना, दास्तां दलितां दी), बलविन्दर कौर बराड़ प्रमुख हैं।

पाकिस्तान और विदेशी धरती पर भी पंजाबी में उपन्यास लिखे जा रहे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

12.7.5. पंजाबी कहानी

वैसे तो लोक कथाएँ कहानी का आरम्भ मानी जा सकती हैं। पंजाबी में गुरूओं की साखियों को भी कथात्मकता के कारण कहानी कहा जा सकता है मगर सही अर्थों में कहानी का विकास पश्चिमी से ही हुआ है और पंजाबी में इसका श्रेय भाई मोहन सिंह वैद (1881-1936 ई.) को दिया जाता है। उसके बाद चरण सिंह शहीद (1891-1935 ई.) ने व्यंग्यात्मक कहानियों की रचना की। नानक सिंह, गुरबख्ष सिंह प्रीतलड़ी और ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफ़िर ने एक स्वतंत्र विधा के रूप में कहानी को स्थापित कर दिया। इसे आदर्षवादी यथार्थवादी कहानी कहा जाता है।

पंजाबी कहानी अपने अगले दौर में पहुँचकर आधुनिक संस्कार प्राप्त कर लेती है। इसे विद्वान प्रगतिवादी यथार्थवादी कहानी का नाम भी देते हैं। अपनी विधागत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ कहानी ने स्वयं को समाज के आम आदमी के सरोकारों से जोड़ा। कहानी आदर्श का पल्ला छोड़कर जीवन के यथार्थ का दामन थामती अपने विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। ऐसे

पंजाबी के कहानीकारों में –गुरबक्श सिंह प्रीतलड़ी, करतार सिंह दुग्गल, संत सिंह सेखां, सुजान सिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी, कुलवंत सिंह विर्क, नौरंग सिंह, महैन्द्र सिंह जोशी, जसवंत सिंह कंवल, बलवंत गार्गी, सुखबीर, नवतैज सिंह, अमृता प्रीतम, गुरदयाल सिंह आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कहानी के तीसरे दौर को 'आधुनिकतावादी कहानी' कह कर पुकारा जाता है क्योंकि इस दौर की कहानी बाहर और भीतर से पिछली कहानी से अलग दिखाई देती है। इस दौर की कहानी साधारण मनुष्य के स्थान पर लघु मानव को आधार बनाती है जो अनेक समस्याओं से घिरा है। ये कहानी यथार्थ के बहुआयामी पक्षों को उद्घाटित करती है। इस युग में प्रवासी लेखक भी आ जुड़ते हैं। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में रामस्वरूप अणखी, जसवंत सिंह विरदी, गुलज़ार संधु, मोहन भण्डारी, अतरजीत, अजीत कौर, बरियाम संधु, प्रेम प्रकाश , गुरवचन पुल्लर का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने पंजाबी कहानी में गुणात्मक वृद्धि की, पाकिस्तान में भी कहानी लिखी जा रही है जिनमें जावेद गरजाखी, आगा अशरफ़, अफ़जल अहमद रंधावा, मंषा यार, अफ़ज़ल तौसीफ, ज़मील अहमद पाल प्रमुख हैं। अन्य प्रवासी पंजाबियों ने भी कहानी में योगदान डाला है जिनकी लम्बी सूची है।

12.7.6. पंजाबी नाटक एवं एकांकी

प्यारे विद्यार्थियों ! अभी तक हमने आधुनिक पंजाबी कविता, उपन्यास और कहानी का परिचय प्राप्त किया है। अब हम पंजाबी नाटक, एकांकी, निबंध और आलोचना का परिचय प्राप्त करेंगे।

एक बात सदैव स्मरण रखें कि नाटक रंगमंच की वस्तु है- यही बात इसे उपन्यास, कहानी आदि से अलग करती है। दूसरी बात यह स्मरण रखें कि गद्य की सभी विधाओं का जन्म अंग्रेज़ों के आने और उनके साहित्य से परिचय के बाद ही हुआ है। पंजाबी नाटक भी इसका अपवाद नहीं हैं। नोरा रिचर्डज़ की प्रेरणा से पहले, पंजाबी रंगमंच कमरों के भीतर ही रहा - फिर ये रंगमंच पर गया। इन्हीं की प्रेरणा से ईश्वरचन्द्र नन्दा के नाटक अस्तित्व में आये। उनके नाटक 'दुल्हन' को पहला पंजाबी आधुनिक नाटक होने का श्रेय प्राप्त हुआ। ईष्वरचन्द्र नन्दा के साथ जिन नाटककारों ने अपना योगदान दिया उनमें हरचरण सिंह (कमला कुमारी, हिन्द दी चादर), संतसिंह सेखों (कलाकार, वारिस), बलवंत गार्गी (लोहा कुट्ट, केसरो, सौतन) प्रमुख हैं। बलवंत गार्गी ने पंजाबी नाटक में मनोविज्ञानिक विषयों को स्थान दिया। पश्चिमी नाटक की संकेतिकता, प्रतीकात्मकता को उसी ने पंजाबी नाटक में प्रतिष्ठित किया।

पंजाबी नाटक को 1947 ई. के विभाजन के कारण लाहौर से दिल्ली और शिमला में स्थानांतरण करना पड़ा, फिर 1962, 65 और 71 ई. के युद्धों ने उसे नयी विषयवस्तु और संचार माध्यमों से भी जोड़ा। अतः पंजाबी नाटक नये विषयों को अपनाता है और संचार की नयी विधियों की खोज करता है। संभवतः इसीलिये कुछ विद्वान इसे 'प्रयोग का दौर' कह कर भी पुकारते हैं। काव्य नाटक और रेड़ियो नाटक तो इस काल में रचे ही गये - एब्सर्ड थियेटर, हंगामी थियेटर, एपिक थियेटर या गाँव का थियेटर आदि नाट्यशैलियों को इसने अपनाया। गुरशरण सिंह (जदो

रोशनी हुंदी है, तंदूर तथा अन्य नाटक, बाबा बोलदा है, कर्फ्यू) जैसे प्रतिबद्ध नाटककार एवं रंगकर्मी ने गाँव की ओर मुँह मोड़ कर अत्यंत सम्मान और लोकप्रियता प्राप्त की। इस समय के अन्य नाटककारों में सुरजीत सिंह सेठी (काफी हाऊस, किंग, मिरजा और सपेरा), कपूर सिंह घुम्मन (जैलदार, पुतलीघर), हरशरण सिंह (फुल्ल कुम्लाह गया, उदास लोग), गुरचरण सिंह जसूजा (मकड़ी दा जाल, पछतावा, परियाँ) आदि प्रमुख हैं। ये नाटककार प्रयोग करते रहै और अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचे।

इन्हीं नाटककारों के साथ-साथ 1975 ई. में नये नाटककार मैदान में आते हैं। इन में आत्मजीत (रिष्तियाँ दा की रखिये नां, चाबियाँ और अन्य एकांकी, शहर बीमार है) तथा अजमेर औलख (अन्ने निशानचीं, मेरे चुनिंदा एकांकी, इक सी दरिया) के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त केवल धालीवाल, स्वराजबीर पाली भूपेन्द्र, कुलदीप सिंह दीप आदि का नाम भी आज के नाटककारों में लिया जा सकता है। इन सबने मिलकर नाटक को ऊँचाईयों तक पहुँचाया। आज दूरदर्शन के धारावाहिकों एवं सिनेमा के शक्तिशाली आक्रमण के बावजूद यदि नाटक जीवित है, तो उसमें पंजाब में विश्वविद्यालयों द्वारा हर वर्ष स्कूलों, कालेजों में करवाये जा रहै 'युवक मेलो', भाषा विभाग की 'नाट्य प्रतियोगिताओं' का बड़ा हाथ है।

12.7.7. पंजाबी निबंध

यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि ईसाई मिशनरियों के और प्रेस के आगमन से पंजाबी गद्य साहित्य का विकास हुआ। निबन्ध का अर्थ है अच्छी तरह बांध-संवार कर प्रस्तुत की गई रचना। इसके पर्याय रूप में पंजाबी में 'लेख' शब्द भी प्रचलित है।

पंजाबी में साहित्यिक एवं प्रौढ़ निबन्ध लिखने की परम्परा प्रो. पूर्ण सिंह (1881-1931 ई.) से प्रारम्भ होती है जो हिन्दी और पंजाबी में एक समान समादृत हैं। इनके बाद एस.एस. चरण सिंह श हीद का भी महत्त्व पूर्ण स्थान है। भाई जोध सिंह भी इसी दौर के निबन्धकार हैं - इनका मुख्य विषय धर्म- विशेषतः सिख धर्म रहा है। प्रिंसिपल तेजा सिंह को निबंधों में शिरोमणि माना जाता है क्योंकि उन्होंने स्तरीय और टकसाली निबंध लिखे। अनुभव की मौलिकता और अभिव्यक्ति की सटीकता गुरबख़्ष सिंह प्रीतलड़ी में देखने को मिलती है। डॉ. बलबीर सिंह ने दार्शनिक एवं काव्यशास्त्र से सम्बंधित निबंध लिखे।

पंजाबी निबंध के कैनवस को विषाल करने में हरिन्दर सिंह रूप, एस.एस. अमोल, कपूर सिंह आई.सी.एस., प्रो. जगदीश सिंह, बलराज साहनी, गियानी लाल सिंह, ज्ञानी गुरदित्त सिंह का नाम विशेष रूप से महत्त्व पूर्ण है। इनके निबंधों में विभिन्न विषयों को वर्णित किया गया है। हास्य-व्यंग्यपरक निबंधकारों में प्रो. ध्यान सिंह, डॉ. गुरनाम सिंह धीर का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। पंजाबी में ललित निबंधकार के रूप में कुलवीर सिंह कंग (1936 ई.) का योगदान महत्त्व पूर्ण है। पंजाबी में निबन्ध लेखन पत्र-पत्रिकाओं की भेंट अधिक हुआ है। इस सम्बंध में अब लेखक जाग्रत हुए हैं और इस विधा का और विकास होने लगा है।

12.7.8. पंजाबी आलोचना

आलोचना का अर्थ है किसी कला या साहित्यिक कृति का सर्वांगीण विष्लेश ण। इस दृष्टि से पंजाबी के कुछ आलोचक गुरू नानक या फिर मध्यकालीन किस्सा काव्यकारों के अपने पूर्ववती काव्यकारों के बारे में की टिप्पणियों को पहली आलोचना मानते हैं। यदि इसे छोड़ दिया जाये और आलोचना के मानक रूप को सामने रखा जाये तो डॉ. राजिन्द्र सिंह सेखों के अनुसार संत सिंह सेखों पहले आलोचक हैं। आलोचना की विभिन्न दृष्टियाँ पंजाबी आलोचना में मिल जाती हैं जैसे प्रभाववादी प्रशंसावादी आलोचना (बाबा बुद सिंह, प्रो. पूरण सिंह, प्रि. तेजा सिंह, गोपाल सिंह दर्दी आदि), मार्क्सवादी (संत सिंह सेखों, किश न सिंह, अतर सिंह, नज़्म हुसैन सय्यद) रूपवादी संरचनावादी (डॉ. हरभजन सिंह, डॉ. तिरलोक सिंह कंवर, डॉ. आत्मजीत सिंह, सुरिन्दर सिंह नूर, जगबीर सिंह, डॉ. महिन्दर कौर गिल, डॉ. सतिन्दर सिंह, अमरीक सिंह पुन्नी, डॉ. हरचरन कौर आदि) नव मार्क्सवादी (टी.आर विनोद, रविन्दर सिंह रवि, तेजवंत सिंह गिल, केसर सिंह केसर, जोगिन्दर सिंह राही आदि)।

पंजाबी में उत्तर आधुनिक, विखण्डवाद, उत्तर मार्क्सवाद, उत्तर संरचनावाद के साथ-साथ दलित चेतना और स्त्री-विमर्ष को भी आधार बनाया गया है। विधागत विशेष ताओं को भी आधार बनाकर आलोचना हुई है। ऐसे आलोचकों में गुरभगत सिंह, आत्म सिंह रंधावा, तेजवंत सिंह गिल, अमरजीत गिल, डॉ. सुरजीत सिंह भट्टी, डॉ. सर्वजीत सिंह, सतिन्दर सिंह नूर, बलविन्दर सिंह आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है।

12.7.9. नव्यतर गद्य विधाएँ

पंजाबी में नयी गद्य-विधाओं में भी लेखन हुआ है। आत्मकथा का प्रारम्भ नानक सिंह (मेरी दुनिया) से होता है। उल्लेखनीय आत्मकथाओं में प्रि. तेजा सिंह (आरसी) गुरबख़्ष सिंह प्रीतलडी (मेरी जीवन कहानी-तीन भाग) बलराज साहनी (मेरी फिल्मी आत्मकथा), अमृता प्रीतम (रसीदी टिकट), दिलीप कौर टिवाना (नंगे पैरां दा सफर, पीले पत्याँ दी दास्तान), बलवंत गार्गी (नंगी धूप) अजीत कौर (खानाबदोश) हरभजन सिंह (चोला टाकियांवाला) प्रमुख हैं।

जीवनी महत्त्व पूर्ण व्यक्तियों के जीवन को आधार बनाकर लिखी जाती है। पंजाब के सभी गुरूओं की जीवनियों के अतिरिक्त महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, अब्दुल कलाम आज़ाद, श हीद भगत सिंह आदि की जीवनियाँ लिखी गई। लेकिन ये सारी जीवनियों में श्रद्धा और भावुकता अधिक है।

1960 ई. के बाद की जीवनियों में यह तत्व क्षीण होता है और धर्म के क्षेत्र में भी उनकी रूचि कम हुई है। सामाजिक राजनैतिक एवं साहित्यिक जीवनियाँ लिखी गई। इनमें संत सिंह सेखों (जुहू दा मोती, बलराज साहनी), वरियाम संधु का (कुश्ती दा ध्रुव तारा), बलवंत गार्गी का 'पंजाब दे कलाकार' का उल्लेख किया जा सकता है।

पंजाबी में 'रेखाचित्र' विधा को भी रचनाकारों ने अपनाया है। पहले रेखाचित्र निबन्धनुमा रेखाचित्र थे। सही अर्थों में 'रेखाचित्र' लिखने वाले पहले लेखक बलवंत गार्गी हैं। 'निम्म दे

पत्ते', 'सुरमे वाली आँख', 'हसीन चेहरे' उनके रेखाचित्र संग्रह हैं। कुलवीर सिंह कंग ने 'बद्लां दे रंग', 'पत्थर लकीर', 'पकक्की इंटें' जैसे रेखाचित्र संग्रह दिये। जीत सिंह सीतल के 'मित्र मेरे वो', अमृता प्रीतम का 'किरमची लकीरें', जसवंत सिंह विरदी' की 'माता तुम महान', अजीत कौर का 'तकिए दा पीर', कुलदीप सिंह का 'दरिआवां दी दोस्ती', करतार सिंह दुग्गल का 'याद करते हुए', सरवन सिंह की 'पंजाबी खिलाड़ी', दलीप कौर टिवाना की 'जीने योग्य' आदि के रेखाचित्र संग्रह महत्त्व पूर्ण हैं।

इन नयी विधाओं के साथ-साथ डायरी, इन्टरव्यू, सफ़रनामें भी पंजाबी में रचे गये। इन विधाओं में सफ़रनामों में पंजाबी के लेखकों ने अधिक रूचि ली है। षोध एवं कोश कार्य भी विष्वविद्यालयों की सहायता से पर्याप्त हुआ है। पंजाबी में अनुवाद कार्य भी हुआ है - सरकारी प्रकाश नों द्वारा भी, ग़ैर सरकारी प्रकाश नों द्वारा भी। ये अनुवाद अंग्रेज़ी, संस्कृत, फारसी और हिन्दी से हुए हैं। इसने पंजाबी साहित्य की श्रीवृद्धि में महत्त्व पूर्ण योगदान दिया है।

12.8. सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से आपको न केवल पंजाबी साहित्य का परिचय प्राप्त हुआ होगा, इसके क्षेत्रों, इसकी क्षमता की भी जानकारी मिली होगी। आधुनिक युग से पहले पंजाबी की मूल धारा कविता रही है जो अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँची है। आधुनिक काल की सबसे बड़ी देन गद्य का विस्तार है और नावल, कहानी, नाटक, आत्मकथा, रेखाचित्र, सफ़रनामें, षोध और कोश जैसी नई विधाओं का जन्म एवं विकास हुआ है। काव्य में भी एक स्पष्ट पार्थक्य दिखाई पड़ता है और यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पष्चिम की चिन्तन धाराओं के साथ पंजाबी कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ रही है। प्रवासी लेखक भी इसमें महत्त्व पूर्ण योगदान डाल रहै हैं।

12.9 शब्दावली

- गुरूमुखी – पंजाबी भाषा की लिपि
- साहित्येतिहास – साहित्य का इतिहास
- चित्तवृत्ति – हृदय की अभिरूचि
- एकरसता – एक समान स्थिति
- त्रुटि - गलती

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाषा विज्ञान कोश : भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ: दीपचन्द जैन, डॉ. कैलाश तिवारी
3. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास: डॉ. शिवराज वर्मा

4. हिन्दी भाषा का स्वरूप विकास: अवधेश्वर अरूण
5. भारतीय भाषाओं के साहित्य का इतिहास: केन्द्रिय हिन्दी निदेशालय
6. आज का भारतीय साहित्य: सं. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंजाबी साहित्य के आदिकाल पर प्रकाश डालिए तथा गुरमत काव्य किसे कहते हैं? इसका परिचय दीजिए।
2. पंजाबी साहित्य का विस्तृत विवेचन कीजिये तथा पंजाबी साहित्य के विकास में ईसाई मिशनरियों के योगदान का उल्लेख कीजिए।

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:-

1. श्री गुरू ग्रंथ साहिब
2. वीर काव्य अथवा वार काव्य

इकाई 13 राजस्थानी साहित्य का इतिहास एवं परिचय

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 राजस्थानी भाषा और बोलियाँ
13.3.1 डिंगल और पिंगल
13.3.2 राजस्थानी भाषा की लिपि (देवनागरी और मुड़िया लिपि)
13.3.3 राजस्थानी भाषा की विविध बोलियाँ
13.4 राजस्थानी साहित्य का इतिहास: नामकरण और काल विभाजन
13.5 राजस्थानी साहित्य का आदिकाल
13.5.1 आदिकालीन परिवेश
13.5.2 आदिकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
13.5.2.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ
13.5.2.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ
13.6 राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल
13.6.1 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य का परिवेश
13.6.2 मध्यकाल के प्रतिनिधि कवि और रचनाएँ
13.6.3 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
13.6.3.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ
13.6.3.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ
13.7 राजस्थानी साहित्य का आधुनिककाल
13.7.1 आधुनिक कालीन परिवेश
13.7.2 आधुनिक कालीन राजस्थानी काव्य
13.7.2.1 स्वतन्त्रता से पूर्व काव्य एवं प्रवृत्तियां
13.7.2.2 स्वातन्त्र्योत्तर काव्य एवं प्रवृत्तियाँ
13.7.3 गद्य की विविध विधाएँ: परिचय
13.8 सारांश
13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारत देश के परिदृश्य में राजस्थान का सांस्कृतिक वैभव और साहित्यिक विरासत अमूल्य है। इस प्रदेश की भौगोलिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक विविधता अनोखी है। त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों और गरिमामयी संस्कृति के इस क्षेत्र में दूर - दूर फैली अरावली की श्रृंखलाएं है, जो हरीतिमा में वैभव से पूर्ण है तो दूसरी और विराट मरूस्थल, मरू (रेत) के टीलों का अखण्ड साम्राज्य। उत्तर में गंगानगर से लेकर दक्षिण में डूंगरपुर, बाँसवाड़ा तक और पूर्व में अलवर, भरतपुर से लेकार पश्चिम में जैसलमेर तक फैला यह प्रदेश आकार में ही नहीं है, वरन प्राकृतिक सम्पदा, कलात्मक वैभव, रहन-सहन, वेश-भूषा, बोली-भाषा, धर्म दर्शन ओर साहित्य आदि इसे सांस्कृतिक दृष्टि से उच्चतम शिखर पर ले जाते है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य के महान कवि कन्हैयालाल सेठिया ने लिखा है -

या तो सुरगा नै सरमावै, ईं पर देव रमण नै आवै
ई रो जस नर-नारी गावे, धरती धोरां री, धरती वीरां री।

भाषा संस्कृति एवं साहित्य का मूल आधार होता है, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समरसता के लिए भाषा एक प्रभावी माध्यम है इसलिए साहित्य के इतिहास लेखन में भाषा भी एक प्रमुख घटक है। राजस्थानी साहित्य को भलिभाँति समझने के लिए राजस्थानी भाषा का ज्ञान जरूरी है। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश (गुर्जरी रूप) से मानी जाती है। राजस्थानी भाषा की प्रमुख बोलियाँ हैं, - मारवाडी-मेवाड़ी (पश्चिमी राजस्थानी), ढूँढाडी-हाड़ौती (पूर्वी राजस्थानी), मेवाती (उत्तरी राजस्थान), मालवी (दक्षिणी राजस्थान) इत्यादि। राजस्थान भाषा पहले मुडिया लिपि (महाजनी) में लिखी जाती थी अब यह देव नागरी लिपि में लिखी जाती है जिसमें ळ (ल) जैसे अक्षर भी मान्य है।

साहित्य इतिहास लेखन के लिए तत्कालीन युग, परिवेश, प्रवृत्तियाँ, भाषा, स्वयं का विवेक एवं अध्ययन, रचनाकार और उनकी कृतियाँ आदि विविध आधार होते हैं, साहित्य युगीन वातावरण से प्रभावित होता है अतः उसका अध्ययन भी युग विशेष और उसके सन्दर्भ में ही होना चाहिए। प्रस्तुत इकाई में इन सभी आधारों को ध्यान रखते हुए राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन और नामकरण करने का प्रयास किया गया है। राजस्थान साहित्य के इतिहास का प्रमुखतः आदिकाल मध्यकाल और आधुनिक काल इन तीन भागों में बाँटा गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल के नामकरण एवं काल विभाजन में जिस प्रकार विद्वानों में मत विभिन्नता रही उसी तरह राजस्थानी साहित्य के इतिहास के इस प्रारम्भिक काल में रही। प्रो. नरोत्तम दास स्वामी इसका प्रारम्भ वि.सं. 1150 से मानते है तो हीरालाल माहैश्वरी वि.सं. 1100 से, सीताराम लालस वि.सं. 800 से और एल.पी. तैस्सीतरी सन् 1250 से। राजस्थान का आदिकालीन साहित्य अपने युग की सभी प्रवृत्तियों और काव्य शैलियों को समेटे हुए है। सिद्ध,

नाथ कवियों की वाणी जैन साहित्य, वीर शृंगार आदि विविध भावों को अभिव्यक्ति मिली है। आदिकालीन राजस्थानी साहित्य अपभ्रंश और गुजराती से प्रभावित रहा है। उस वक्त मरूं-गुर्जर अपभ्रंश से निकली भाषा राजस्थानी और गुजराती दोनों ही थी। राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल मुख्य रूप से 1450 से 1850 ई. तक माना जाता है। यह काल राजस्थानी भाषा और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल है। दक्षिण भारत से चलकर भक्ति भावना की जो लहर उत्तर में आलवार भक्तों के साथ आई उसमें सारा जन-मानस सराबोर हो गया था। भगवान राम और कृष्ण के लोकरक्षक ओर लोकरंजन रूप की अराधना और समृद्ध साहित्य रचा गया। जहाँ आदिकाल में युद्ध व शृंगार का स्वर प्रधान था, वहाँ मध्यकाल में वीर शृंगार के साथ-साथ भक्ति भावना की गूँज थी परन्तु आधुनिक काल के साहित्य में कविता और गद्य की विविध विधाओं का सुर दोनों कालों से भिन्न रहा था । 1857 का स्वतंत्रता संग्राम स्वतन्त्रता से पूर्व और पश्चात के परिवेश से इस काल में राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिशीलता, हास्य व्यंग्य, समकालीन बोध की अभिव्यक्ति कविताओं और गद्य के विविध विधाओं में हुई है। राजस्थान साहित्य विशाल शब्द सम्पदा, मौलिक छन्द शास्त्र, काव्य शैलियों और काव्यशास्त्र के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप:-

1. राजस्थानी साहित्य की जानकारी से पूर्व राजस्थान के भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश को जान सकेंगे।
2. राजस्थानी भाषा के उद्गम, डिंगल-पिंगल रूप, लिपि और विविध बोलियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. राजस्थानी सहित्येतिहास के नामकरण और कालविभाजन को समझ सकेंगे।
4. राजस्थानी साहित्य के आदिकाल, कालगत परिवेश और साहित्यिक प्रवृत्तियों (संवेदनागत और शिल्पगत) का अध्ययन कर सकेंगे।
5. मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य के युग - परिवेश, साहित्यिक प्रवृत्तियों, प्रतिनिधि कवियों ओर रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
6. प्रमुख राजस्थानी साहित्यकारों और उनकी कृतियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
7. राजस्थानी साहित्य के आधुनिक कालीन परिवेश, काव्य और गद्य की विविध विधओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
8. आधुनिक काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन और विश्लेषण कर सकेंगे।
9. राजस्थानी साहित्य के इतिहास को सांगोपांग समझ सकेगें।

13.3 राजस्थानी भाषा और बोलियाँ

भारत यूरोपीय (इण्डो यूरोपीय) भाषा परिवार की प्रमुख भाषा है राजस्थानी भाषा। यह राजस्थान और मालवा की मातृभाषा है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरूभाषा था। क्योंकि 8 वीं सदी में कुवलयमाला नामक ग्रन्थ में भारत की 18 भाषाओं में मरूदेश की भाषा का भी उल्लेख किया गया है। भारतीय आर्य भाषाओं के सबसे प्राचीन रूप को वैदिक संस्कृत कहा जाता है वैदिक से संस्कृत का विकास हुआ। संस्कृत से प्राकृत विकसित हुई। बुद्ध और महावीर के समय संस्कृत और प्राकृत में पर्याप्त अन्तर हो गया था। प्राकृत से अपभ्रंश का विकास हुआ। प्राकृत की भाँति अपभ्रंश में भी प्रान्तीय भेद रहै है। साहित्य में क्षेत्र में पश्चिमी अपभ्रंश की प्रधानता रही। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के (गुर्जरी रूप) से मानी जाती है।

13.3.1 डिंगल और पिंगल भाषा:

डिंगल और पिंगल राजस्थानी से भिन्न कोई भाषा नहीं है। दोनों राजस्थानी की ही एक काव्यगत शैली विशेष है। पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ आदि प्रदेशो में चारणों का जोर रहा और पूर्वी राजस्थान, ब्रजमण्डल आदि के पूर्व के क्षेत्रों में भाटों (ब्रह्मभट्टों)का प्रभुत्व. चारण और भाटों दोनों की रचनाएँ वीर रस प्रधान थी। चारण ने गीत शैली लेकर इस प्रदेश की भाषा राजस्थानी में काव्य रचना की तो भाटों ने पिंगल छंदों व पदों को लेकर ब्रजभाषा में काव्य रचना की साधारण बोलचाल की भाषा और इनकी रचनाओं की भाषा में कुछ अन्तर था चारणों की भाषा डिंगल भाटों की भाषा पिंगल नाम से अभिहित की गई। इसी प्रकार का मत डॉ. नामवरसिंह का भी है। वे यह मानते है कि पूर्वी राजस्थानी ब्रजभाषा से प्रभावित है, जबकि पश्चिमी राजस्थानी गुजराती से साम्य रखती हैं। राजस्थानी साहित्य में भी इन दो रूपों को अलग-अलग 'पिंगल' और 'डिंगल' के साहित्य में पहचाना जा सकता है। यहाँ पिंगल का अभिप्राय ब्रजभाषा से नहीं है, अपितु पूर्वी राजस्थानी के साहित्यिक रूप के नाम से है। इसी प्रकार डिंगल पश्चिमी राजस्थानी का साहित्य रूप थी। इधर कुछ विद्वानों द्वारा डिंगल को ही राजस्थानी भाषा का पर्याय माना जाने लगा हैं। यदि सोचने-समझाने का तरीका यही रहा तो एक पूर्वी राजस्थानी इससे अलग हो जायेगी। चूँकि भाषा एक विकासमान व परिवर्तित सम्प्रत्यय है। आगे चलकर चारणों ने भी पिंगल को अपनाया। कवि सूर्यमल्ल के वंश भास्कर में पिंगल भाषा का अधिक प्रभाव है। वीर रसात्मक कविता में वीररस उपयोगी द्वित्व संयुक्तवर्णों ट, ठ वर्ण की आवृत्ति और समासयुक्त शब्दावली का प्रयोग विशेष होता था अतः डिंगल कवि प्राचीन शब्दालवली का प्रयोग और शब्दरूपों, वर्तनी को सर्वथा कभी नहीं छोड पाए, साथ ही साधारण बोलचाल की भाषा से डिंगल कवियों ने सम्बन्ध विच्छेद भी नहीं किया। अतः डिंगल की भी दो शैलियां बन गई प्रथम जो बोलचाल की भाषा से प्रभावित द्वितीय पिंगल से प्रभावित।

राजस्थानी साहित्य तीन शैलियों में लिखा गया प्रथम जैन शैली, द्वितीय चारण शैली और तृतीय लौकिक शैली। जैन शैली के लेखक प्रमुख जैन साधु और यति थे, अनेक प्राचीन शब्द और मुहावरे इस शैली में है और गुजराती का प्रभाव अधिक, चारण शैली के लेखक प्रधानतया

चारण और गौण रूप से अन्य समाज होता था। डिंगल वास्तव में अपभ्रंश का ही विकसित रूप हैं लेकिन लौकिक शैली अर्थात् लोक साहित्य में सदा ही अपने समय की जन भाषा का उपयोग किया गया। साधारण जनता का साहित्य इसी में रचा गया। डिंगल शब्द का प्रयोग कभी तो राजस्थानी की चारणी शैली के लिए और कभी समस्त राजस्थानी के लिए किया जाता है। इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है।

13.3.2 राजस्थानी भाषा की लिपि (देवनागरी और मुड़िया लिपि)

(1) **देवनागरी लिपि**: देवनागरी लिपि को भारतीय संविधान में राजभाषा की लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है। हिन्दी की तरह राजस्थानी भाषा की लिपि देवनागरी है। देवनागरी एक आदर्श लिपि है आदर्श लिपि के सभी गुण देवनागरी लिपि में पाये जाते है। इस लिपि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें जो बोला जाता है वही लिखा जाता है और जो लिखा जाता है वही बोला जाता है। समग्र ध्वनियों को संकेत करने की इसमें क्षमता है। और ध्वनि और संकेत में निश्चितता है। चूंकि आप हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी है और इस लिपि का आपने पूर्व में अध्ययन कर लिया है इसलिए इसके बारे में विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं है।

(2) **मुड़िया लिपि**: वैसे राजस्थानी भाषा की स्वयं की लिपि थी जिसे 'महाजनी', 'बणियावटी' लिपि का नाम दिया गया था। मुड़िया लिपि इसी को ही कहा गया है। देवनागरी लिपि की भांति यह लिपि भी बायें से दायें ओर लिखी जाती है। इसे लिखने का तरीका दूसरा है, वह यह है कि पृष्ठ पर सबसे पहले लाइन खींच ली जाती है फिर लिखने वाला अपनी बात लिखनी शुरू करता है तो वह अपनी कलम तभी उठाता है जब वह खीचीं गई लाईन पूरी हो। इससे अक्षरों में घसीट आ जाती है, कलम नहीं उठाने से अक्षर भी मुड़ जाते है। इस लिपि की एक ओर विशेषता यह है कि इसमें शब्दों को अलग-अलग नहीं लिखा जाता, वे लगातार एक ही क्रम में चलते है और वाक्य पूर्ण हो जाता है। पाठक को अपनी बुद्धि और विवेक से शब्दों को तोड़कर वाक्य को पढ़ना होता है। सामान्य पाठक इस लिपि को नहीं पढ़ सकता है। इसके इस स्वरूप का प्रयोजन संदेशों, वार्ताओं को गुप्त रखने का रहा हो पर धीरे-धीरे इसी रूप में साहित्य का सृजन भी होने लगा और इस लिपि को राजस्थानी लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया गया। आज के समय में वणिक (व्यापारी) वर्ग अपने व्यापार पद्धति में भले ही इसका प्रयोग करते हों लेकिन राजस्थानी साहित्य का लेखन, मराठी, सिंधी, नेपाली और अन्य कई भारतीय भाषाओं की भांति देवनागरी लिपि में ही होता है।

13.3.3 राजस्थानी भाषा की बोलियाँ

(1) **मारवाड़ी**: पश्चिमी राजस्थानी की प्रधान बोली मारवाड़ी का प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व है। 'मरूभाषा' नाम से अभिहित इस बोली का क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, सीकर, नागौर, मेवाड़ , बीकानेर, सिरोही, जैसलमेर आदि जिलों तक विस्तृत हैं इसकी अनेक उपबोलियाँ हैं। साहित्यिक मारवाड़ी को डिंगल कहा जाता है। विशुद्ध 'मारवाड़ी' जोधपुर में बोली जाती है। मारवाड़ी का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। ओज, भक्ति, वीर, नीति एवं लोक

साहित्य विषयक साहित्य का अपार एवं अथाह भण्डार है। 'वीर सतसई' एवं 'वेलि' वीर और शृंगारपरक साहित्य के अनूठे उदाहरण हैं। इसमें प्रचुर मात्रा में संत साहित्य भी प्राप्त होता हैं। इसमें सामान्यतः देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है, किन्तु बहीखातों में महाजनी लिपि का प्रयोग आज तक होता हैं

(2) **मेवाड़ी**: मेवाड़ी, उदयपुर एवं उसके आसपास के मेवाड़ प्रदेश की बोली है। मेवाड़ी की अपनी साहित्यिक परम्परा अत्यंत प्राचीन है। कीर्तिस्तम्भ अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि महाराणा कुम्भा (वि.सं. 1490-1525) द्वारा रचित चार नाटकों में मेवाड़ी का प्रयोग किया गया हैं इसी प्रकार 'वेलि' की भी एक प्राचीन मेवाड़ी प्राप्त होती है।

(3) **बागड़ी:** डूँगरपुर एवं बाँसवाड़ा का सम्मिलित क्षेत्र 'बागड़' कहलाता है। यहाँ की बोली को ही बागड़ी कहा जाता हैं। उत्तर-पूर्व में इसका क्षेत्र बीकानेर ओर पंजाब की सीमा तक विस्तृत हैं मेवाड़ के दक्षिण एवं संधू राज्य के उत्तर में तथा अरावली प्रदेश एवं मालवे की पहाड़ियों तक इसका विस्तार है। इसमें हिन्दी की भूतकालिक सहायक क्रिया 'था' के स्थान पर 'हतो' रूप प्रचलित है।

(4) **ढूँढाड़ी:** पूर्वी राजस्थानी के मध्यपूर्वी विभाग की प्रधान बोली जयपुरी या ढूँढाड़ी है। कोटपुतली/शाहपुरा/चिमनपुरा को छोडकर पूरा जयपुर, किशनगढ़, टोंक, लावा एवं अजमेर मेरवाड़ा के पूर्वी अंचलों में यह बोली जाती है। दादूपंथ का अधिकांश साहित्य इसी बोली में लिपिबद्ध है। ढूँढाड़ी की प्रमुख बोलियो में हाड़ौती, किशनगढ़ी, तोरावाटी, राजावाटी, अजमेरी, चौरासी, नागरचोल आदि प्रमुख हैं।

(5) **हाड़ौती:** हाड़ौती का साहित्यिक महत्त्व भी है। कोटा-बून्दी क्षेत्र में प्रचलित हाड़ौती बोली का क्षेत्र ग्वालियर तक विस्तृत हैं हाड़ौती पर प्रचीनकाल में हूणों एवं गुर्जरो के सम्पर्क का प्रभाव भी देखा जा सकता है। जयपुरी और हाड़ौती में विशेष अन्तर नहीं है। इसमें वर्तमानकाल के लिए 'छै' एवं भूतकाल के लिए 'छी', 'छो' का प्रयोग होता है। सर्वनाम के तिर्यक रूप एक वचन में ऊ, ई दूरवाचक ओ, यो, वो तथा स्त्री रूप आ, या, वा का प्रयोग होता है। जब, कब के तब लिए जद तद, तथा कद रूपों का व्यवहार दृष्टव्य है।

(6) **मेवाती:** पूर्वोत्तरी राजस्थानी वर्ग में मेवाती बोली का विशेष महत्त्व है। यह मेवात क्षेत्र की बोली है। इस क्षेत्र को पूर्वकाल में मत्सय जनपद कहा जाता था। इसकी सीमा हरियाणा के जिला गुढ़गाँव की झिरका-फिरोजपुर, नूह तहसीलें तथा वल्लभगढ़ एवं पलवल के पश्चिमी भागों, उत्तर प्रदेश के कोसी, छाता तता मथुरा के पश्चिमी अंचलों एवं राजस्थान के जिला अलवर की किशनगढ़, तिजारा, रामगढ़ गोवन्दिगढ़, लक्ष्मणढ लहसीलों, जिला भरतपुर की कामा, डीग तथा नगर तहसीलों, के पश्चिमोत्तर तक विस्तृत हैं। उद्भव और विकास की दृष्टि से मेवाती पश्चिमी हिन्दी एवं राजस्थानी के मध्य सेतु का कार्य कर रही है। मेवाती में कर्मकारक में 'लू' विभक्ति एवं भूतकाल में हा, हो, ही, सहायक क्रिया का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं।

(7) **अहीरवाटी**: पूर्वोत्तरी राजस्थानी वर्ग की दूसरी महत्वपूर्ण बोली अहीरवाटी है। वस्तुतः अहीरवाटी बांगरू, (हरियाणवी) एवं मेवाती के मध्य संधिस्थल की बोली कही जा सकती है।

इसका क्षेत्र राजस्थान में जिला अलवर की तहसील बहरोड, मुण्डावर तथा किशनगढ़ का पश्चिमी भाग हरियाणा में जिला गुडगाँव की तहसील रीवाड़ी महेन्द्रगढ़ की तहसील नारनौल, जिला जयुपर की तहसील कोटपूतली का उत्तरी भाग तथा दिल्ली के दक्षिणी भाग तक विस्तृत है। प्राचीन काल में 'अभीर' जाति की एक पट्टी इस क्षेत्र में आबाद हो जाने से यह क्षेत्र अहीरवाटी या हीरवाल कहा जाने लगा है। इस बोली में पश्चिमी राजस्थानी के प्रभाव से 'न' का 'ण' बोला जाता है।

13.4 राजस्थानी साहित्य का इतिहास: नामकरण और काल विभाजन

आप सभी जानते है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। समाज में विद्यमान परिवेश, संस्कृति, पृष्ठभूमि से साहित्य का लेखन प्रभावित होता है। किसी भी भाषा का साहित्य इतिहास, समाजगत पृष्ठभूमि व साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है। राजस्थानी साहित्य के इतिहास लेखन का आधार बना है:- एक युग में रचा साहित्य, साहित्य की विधाएँ, प्रवृत्तियाँ, युग का वातावरण, काव्यधाराऐं, रचनाकार और उनकी रचनाएँ। वीरता, भक्ति, नीति, प्रेम-श्रृंगार आदि राजस्थानी जन-जीवन की मूल भावनाएँ सदियों से रही है, यही कारण है कि सारा राजस्थानी साहित्य इन्हीं मूल भावनाओं में डूबता-उतरता रहता है। राजस्थानी साहित्य राजस्थानी जन-जीवन की संस्कृति और सभ्यता का चितेरा है।

राजस्थानी जग में प्रसिद्ध समृद्ध और स्वतंत्र भाषा है। ऐसा माना जाता है कि विक्रम की नवीं शताब्दी सवंत् 835 में जब जैन कवि उद्योतन सूरि की अपनी पोथी में कुवलपमाला में उस समय की 18 देश भाषाओं में आज की राजस्थानी भाषा के लिए मसमासा रूप लिखा मिला तब से इसका साहित्येतिहास सामने आता है यथा ;

अप्पा तुम्हा भणि रै अह पेचछह मारूए (मरूभाषा) तत्तों

उपलब्ध साहित्य की दृष्टि से विक्रम संवत् 1200 के आसपास राजस्थानी प्राचीन जैन काव्य मिले है। शालिभद्र सूरि रचित 'भरतेश्वर बाहुबलिरास' का रचना काल सं. 1241 वि. है। प्रसिद्ध विद्वान सुनीति कुमार चटर्जी के मतानुसार राजस्थानी की उत्पत्ति नागर अपभ्रंश से हुई है। कवि जंबू स्वामी रचित 'स्थूल भद्र रास', इसी तरह 'रेवंतागिरि रास', 'आबूरास' इत्यादि से प्रमाण मिले हैं कि 13 वीं सदी में राजस्थानी भाषा ने विकसित होकर साहित्यिक रूप धारण कर लिया था विभिन्न विद्वानों के मतानुसार राजस्थानी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन और नामकरण निम्नानुसार है

(1) **आचार्य नरोत्तम दास के अनुसार**

(अ) प्राचीन काल (सं. 1150 से 1550 तक)

(ब) मध्यमाल (सं. 1551 से 1875 तक)

(स) अर्वाचीन काल (सं. 1875 से निरन्तर)

(2) **डॉ. मोतीलाल मेनारिया:** डॉ मोतिलाल मेनारिया स्वयं के ग्रन्थ (पोथी) राजस्थानी भाषा का साहित्य में राजस्थानी साहित्य का विभाजन निम्नानुसार करते है -

(अ) प्रारम्भिक काल - संवत् 1045 से 1460

(ब) पूर्व मध्यकाल - संवत् 1461 से 1600

(स) उत्तर मध्यकाल - संवत् 1601 से 1900

(द) आधुनिक काल - संवत् 1900 से आज तक

(3) **डॉ. हीरालाल माहैश्वरी के अनुसार** -

(अ) प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का आदिकाल संवत 1100 से 1500 तक

(ब) प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से नवीन काल संवत् 1501 से निरन्तर

(4) **सीताराम लालस के अनुसार** -

(अ) आदिकाल - वि. संवत् 800 से 1460 तक

(ब) मध्यकाल - वि. संवत् 1461 से 1900 तक

(स) आधुनिक काल - वि. संवत् 1901 से निरन्तर

(5) **डॉ. कल्याण शेखावत के मतानुसार -**

(क) **आरम्भिक काल**

(अ) अभिलेखीय काल वि. की 8 वीं सदी से 12 वीं सदी तक

(ब) आदिकाल (वीरगाथा काल) वि. सं. 1201 से 1450 तक

(ख) **मध्यकाल**

(अ) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) - वि.सं. 1450 से 1650 तक

(ब) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) - वि.सं. 1651 से 1850 तक

आधुनिक काल -

(अ) पहला चरण - ई सन् 1851 से 1920 तक

(ब) दूसरा चरण - सन् 1921 से 947 तक

(स) तीसरा चरण - सन् 1948 से आज तक

राजस्थानी भाषा के विकास क्रम में चार शैलियों के नमूने मिले हैं - जैन शैली, डिंगल शैली, पिंगल शैली, लौकिक शैली। डिंगल तो अपभ्रंश से ही विकसित हुई, पिंगल में राजस्थानी और ब्रज का मिला जुला रूप दिखता है। वास्तव में राजस्थानी का प्राचीन नाम मरूभाषा थ जो 19 वीं सदी में डिंगल और पिंगल दो धाराओं में बँट गया। 19 वीं सदी में चारण कवि साइया झूला कृत 'नागदमण' ग्रन्थ डिंगल का नामी ग्रंथ है जिसमें दोनों काव्य भाषाओं का उल्लेख इस प्रकार है -

कालिया नाग में नाथण का वर्णन '

''फुणा रा धणां रा हुवै फूतकारा।
उद्रै डींगल पींगल रा अंगारा।।''

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किया गया है। जिस प्रकार से हिन्दी साहित्य के आदिकाल के नामकरण एवं काल विभागजन के सम्बन्ध में विविध मत दिखाई देते है उसी तरह राजस्थानी इतिहास में भी इस काल को लेकर मत वैभिन्न रहा है। राजस्थानी साहित्य के आदि काल में वीरगाथात्मक रासो साहित्य भरपूर लिखा गया और साथ ही साथ जैन साहित्य लौकिक साहित्य, चारण साहित्य, ब्राह्मणी साहित्य, लोक साहित्य की विविध धाराएँ प्रवाह मान रही अतः साहित्य के विविध रूपों को देखते हुए राजस्थानी साहित्येतिहास के प्रथम काल को 'आदिकाल' नामकरण किया जाना उचित ही है।

13.5 राजस्थानी साहित्य का आदिकाल (10वीं शदी से 14वीं शदी तक)

'आदि' का अर्थ है आरम्भ (प्रारम्भ), राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भिक काल। यहाँ यह बात स्पष्ट करना जरूरी है कि आदिकाल की समय सीमा के बारे में विद्वान एक मत नहीं, बहुत से विद्वान 10 वीं शती से राजस्थानी साहित्य की शुरूआत मानते है, परन्तु सीताराम लालस जैसे विद्वान वि.सं. 8 800 से ही राजस्थानी साहित्य का आदिकाल स्वीकार करते है। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि 8 वीं शती रचित उद्यातन सूरि के कथा ग्रन्थ कुवलयमाला में अठारह देश-भाषाओं के अन्तर्गत मरूदेश की भाषा का उल्लेख है। इन सभी विवादों से परे 10 वीं सदी से 14 वीं सदी तक के साहित्य को राजस्थानी साहित्य के आदिकाल के अन्तर्गत माना जाता है और आदिकाल की रचनाओं को भी आदिकाव्य कहा गया है।

13.5.1 आदिकाल और परिस्थितियाँ:-

(1) **राजनैतिक परिस्थितियाँ** - राजनीति से समाज, धर्म, संस्कृति, अर्थ इत्यादि से भी प्रभावित होते है। भारतीय साहित्य के अन्तर्गत आदिकाल राजनैतिक अस्थिरता का काल माना जाता है। इतिहासकारों की धारणा है कि सम्राट हर्षवर्धन के निधन (सन् 648) के पश्चात भारत की संपूर्ण स्थितियाँ बदली, राजाओं की आपसी लडाई, बैर-द्वैषभाव, जाँति पाँति और अन्य रूढ़ियों का लाभ उठाकर भारत में उत्तर पश्चिम सीमा से इस्लामी सैनिकों ने हमला प्रारम्भ किया। सन् 712 में मुहम्मद बिन कासिम, सन् 986 में सुबुक्तगीन, 1000 ई. में महमूद गजनवी, 1178 में मोहम्मद गौरी के हमले हुए। मोहम्मद बिन कासिम के हमले के समय राजस्थान में प्रतिहार, परमार चौहान और गहलोत राजपूतों ने विदेशियों से लडने की तैयरी की थी। 733 में बप्पा रावल ने चित्तौड पर कब्जा कर गहलोत शासन की नींव रखी थी, इसी वंश में आगे चलकर राणा कुंभा, राणा सांगा, महाराणा प्रताप जैसे शूरवीर हुए, जिन्होंने राजस्थान की कीर्ति पताका पहराई। इस समय भारत में केन्द्रीय शासन नाम की कोई चीज नहीं थी। राजस्थान, महाराष्ट्र और कर्नाटक में शक्तिशाली राज्य थे परन्तु महाराष्ट्र और कर्नाटक के राष्ट्रकूट राजाओं में निरन्तर झगडा चलता रहता था। सन् 1193 में तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के हार से सारी स्थितियाँ बदल गयी थी कुतबुद्दीन ऐबक से लेकर गुलाम वंश (1206 ई.), खिलजी वंश (1290

- 1320) और तुगलक वंश (1320-1414 ई.) इत्यादि वंशों ने देश में सिर्फ युद्ध व नाश का वातावरण बनाया।

इन आक्रमणकारियों का मुकाबला करने के लिए देशभक्त वीर वीरांगनाएं, उनके बच्चे सभी कूद पड़े। बाप ने बलिदान दिया तो बेटा मायड़भोम (मातृभूमि राजस्थान) के लिए स्वयं को अर्पण को तैयार मिला, इसी परिस्थिति में राजस्थानी साहित्य का आदिकाल विकसित होता रहा। वीरता और देशभक्ति के भाव जाग्रत करने हेतु वीरगाथाएं रची गई।

(2) **सामाजिक परिस्थितियाँ** - जैसा राजा वैसी प्रजा के अनुसार सामाजिक स्थितियाँ भी निर्मित होत है, जातिपाँति वर्ण व्यवस्था, लूटपाट के माहौल के बीच सामंतशाही व्यवस्था में भी कई बुराईयाँ पनप रही थी। वीरता के साथ-साथ अहंकार और भोगविलास की प्रकृति भी जोर मार रही थी। इस्लामी आक्रमणों से सामान्यजन को ज्यादा नुकसान भोगना पड़ता था।

(3) **धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ** - यह काल धार्मिक दृष्टि से संक्रमण काल रहा। बौद्ध और जैन धर्म में विभाजन हो गया। बौद्ध धर्म हीनयान, महायान, व्रजयान, सहजयान, मत्रयान इत्यादि कर्मकाण्डों में फैल चुका था। तंत्रमंत्र वाम मार्ग, जाप और अंधश्विास इत्यादि कार्यो से अकर्म पनप रहा था। इसमें शक नहीं है कि धार्मिक आचार्य धर्म के सच्चे स्वरूप को जनता के समक्ष रख रहै थे परन्तु निम्न वर्ग के लोग इन वामाचारों के कृत्यों फैल चुके थे।

धर्म, आध्यात्म व संस्कृति के इस परिवेश ने आदिकालीन साहित्यिक परिवेश को अवश्य प्रभावित किया है। जिसका अध्ययन अगले बिन्दु मे किया जा रहा है।

आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएँ -

आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि का अभी आपने अध्ययन किया। साहित्यिक रचना अपने वातावरण से ही प्रभावित होती है। राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आपाधापी के युग में भी किसी न किसी तरह आदिकालीन साहित्य निम्नांकित विविध रूपों में दिखाई देता है -

(क) जैन साहित्य (ख) चारण सहित्य (ग) लौकिक साहित्य, (घ) गद्य साहित्य

(क) **जैन साहित्य** - जैन कवियों ने प्राकृत एवं अपभ्रश भाषा में कई ग्रन्थों की रचना की। जिनप्रभ सूरि, शैलेन्द्र सूरि, धनपाल इत्यादि कविगणों ने राजस्थानी साहित्य के भंडार भरण में कोई कसर नहीं छोडी। जैन साहित्य, चरित्र काव्य, उत्सव, नीति काव्य और स्तुति काव्य इन चार रूपों में मिलता है। जैन साहित्य गद्य-पद्य रूप में रहा और साहित्य सदाचार, सहिष्णुता, त्याग, संयम आदि मुख्य विषय रहै। जैन कवियों श्रीराम और कृष्ण को नायक बनाकर अपने सिद्धान्तों का वर्णन किया। इन्हें धर्म और समाज दोनों का संरक्षण प्राप्त हुआ।

(ख) **चारण साहित्य** - चारण साहित्य में वीर और शृंगार रस प्रधानता है। चारण कवि योद्धा और लेखक दोनों ही रहै, इसलिए यह साहित्य वीरों के युद्धों और वीरता के बखान का साहित्य है। चारण कवि तलवार व लेखनी दोनों के धनी थे और विशेष बात यह है कि इसमें सुनी सुनाई कथाओं का वर्णन नहीं वरन् आँखों देखी जिन्दगी और मौत से जूझते युद्धों का वर्णन काव्य और

गद्य रूपों में देखने को मिलता है क्योंकि ये कवि युद्धभूमि जोश उत्पन्न करने के साथ-साथ खुद जूझते थे। कान्हड़दे प्रबन्ध में कान्हड़देव अलाउद्दीन के युद्ध का दृश्य देखिए -

डूंगर तणा शिशर डगमगइ, थयूँअजआल सायर लगइ।

अर्थात डूँगर भी हिलने लगे और सागर भी उफनने लगा।

चारण शैली की सर्वप्रथम रचनाएं श्रीधर कृत 'रंणमल्ल छंद, चारण शिवदास कृत 'अचलदास खींची री वचनिका' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस शैली में वीररस व शृंगार प्रधान रासों काव्य लिखा गया जिसमें चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासौं', नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासौ आदि प्रमुख है। वेलि परम्परा का पहला ग्रन्थ रांउलवेल इसी शैली में लिखा गया है जिसमे 46 पद्य है और छः नायिकाओं का नख शिख वर्णन है।

(ग) **लौकिक साहित्य** - लौकिक साहित्य जनमानस का साहित्य है, जनता की भाषा में लिखा गया है। राजस्थान में लोक साहित्य की विविध विधाओं में अनेकानेक विषयों तथा घटनाओं से सम्बन्धित लौकगीत, जनकाव्य लोकगाथा, लोकनृत्य, लौकनाट्य, लोक कहावते कथाएं सम्मिलित है। यह लोक साहित्य लोकमानस की मुखर एवं जीवन्त अभिव्यक्ति राजस्थान ढोला मारू रा दोहा प्रसिद्ध लोककाव्य है।

(घ) **गद्य साहित्य** - इस काल में राजस्थानी गद्य की शुरूआत हो चुकी थी, इसका स्वरूप अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन दानपत्रों, परवानों, वार्ताओं एतिहासिक अभिलेखों में गद्य का प्राचीन रूप् संरक्षित है। राजस्थान में वात और ख्यात दोनों कीन्ही रूपो का उल्लेख मिलता है। वात कहानी को कहते है। इतिहास और वंश सम्बन्धित पोथियों को ख्यात कहते है । वात में ऐतिहासिक, धार्मिक, लौकिक रीति नीति सम्बन्धित कथाएँ, अलौकिक तत्वों व मनोविज्ञान के साथ उपस्थित होती है। लोक जीवन का सच्चा स्वरूप वात-साहित्य में नजर आता है।

13.5.2 आदिकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

आदिकालीन राजस्थानी साहित्य में धार्मिक, लौकिक, वीरगाथात्मक और शृंगार परक चारण साहित्य आदि काव्यधाराएं देखने को मिलती है और साथ ही साथ गद्य का स्वरूप भी। भारतेश्वर बाहुबली रास (शालिभद्र सूरि), पृथ्वीराज रासौ (चन्दबरदायी), बीसलदेव रास (नरपति नाल्ह), ढोलामारू रा दोहा (लौकिक काव्य), अचलदास खींची री वचीनिका (चारण कवि शिवदास गाडण), आदि इस काल की प्रतिनिधि रचनाएं है। अचलदास खींची री कथानिक गद्य-पद्य मिश्रित (चम्पूकाव्य) है।

13.5.2.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ

आदिकालीन साहित्य की विषय वस्तु सम्बन्धित विशेषताएं निम्नांकित है -

(1) **वीरगाथात्मकता और श्रृंगारिकता**: इस काल के साहित्य में वीर रस और शृंगार रस का साथ-साथ और स्वतंत्र रूप से भी चित्रण हुआ है। चारण शैली की रचनाओं में इतिहास के साथ-साथ कल्पना का समावेश कर योद्धाओं की वीरता का बखान तो नायिकाओं के नखशिख का वर्णन भी किया है। पृथ्वीराज रासौ में वीर और शृंगार रस एक साथ चले है। 'इंच्छिनी ब्याह'

'शशिबाला ब्याह' और 'संयोगिता हरण' इन तीनों अवसरों में युद्ध के साथ प्रेम प्रसंग का वर्णन है। कन्नौज युद्ध के समय स्वयं पृथ्वीराज संयोगिता के महल में मछलियों को मोती चुगा रहै है:-

भूलउं नृप तिहि रंग तहि जुद्ध विरूद्ध सहु।
मूंगति मीनन मुति लहंति लष्ष दहु।

अर्थात प्रेम रंग में राजा (पृथ्वीराज) युद्ध को भूल गए है। मछलियों के लिए वे मोती छोड़ते है तो दस लाख मछलियां उन्हें खाने के लिए दौड़ती है। सौन्दर्य का वर्णन इस महाकाव्य में मनभावन है। पद्मावती का सौन्दर्य देखिए:-

'सेत वस्त्र सौहै सरीर नष स्वाति बूंद जस।
भ्रमर भवति मुल्लहि खुमाव मकरंद वास रस।।'

अर्थात पद्मावती श्वेत वस्त्र में सुशोभित है, उनका नख स्वाति बूंद जैसा उजला है, उनमें शरीर की खुशबू से भँवरे की रस लेने आते है और चारों तरफ चक्कर काट रहै है। 'बीसलदेव रासो' में वियोग शृंगार का वर्णन है। इसमें भोज परमार की बेटी राजमती और अजमेर के राजा बीसलदेव चौहान (तृतीय) के शादी केबाद वियोग होने पर राजमती के विरह की भावानुभूति का चित्रण है। राजमती के विरह वर्णन को बारह मासा चित्रण से भी बताया गया है। जैसे -

''फागुन फरहया कपिया रूष।
चमकि उनिसि नींद न भूष।।''

अर्थात् फाल्गुन के महीने में हवा के तेज झौंके आते है; वृक्ष काँप रहै है। बिजली (बीजळी) की तरह मन चंचल है और नींद और भूख दोनों ही समाप्त हो गई है। इस काव्य में नारी जीवन की लाचारी, त्याग, बलिदान, कोमलता और विरह भावना को मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया है। इसी तरह 'ढोला मारू रा दूहा' भी वियोग शृंगार से भरा पूरा है। मारवणी को जब ढोला व मालवणी के विवाह की सूचना मिलती है तो वह विरह में डूब जाती है और हवा से कहती है -

जिणि दसे सज्जन बसइए, तिणि दिसि वज्जऊ वाउ।
उआं लागे मो लगासी ऊ ही लाख पसाऊ।।

अर्थात जिस देश मे मेरे साजन (भरतार) बसे है, है हवा! तू उसी दिशा में चल, क्योंकि उनको छूकर तू मुझे स्पर्श करेगी तो वह ही मेरे लिए लाख इनाम होगा। इसी तरह वह बादल से विनती करती है -

विज्जुलिंय नीलज्जियां, जलहरि तू ही लज्जि।
सूनी सेज विदेश प्रिय मधुरइ मधुरइ गज्जि।।

अर्थात ये बिजलियाँ तो निर्लज्ज (बेशर्म) है, है बादल! तू ही लाज रख। मेरे प्रिय विदेश में है, मेरी तो सेज सूनी है, इसलिए तू धीरे-धीरे गर्जना कर। मारवणी के उजले सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार है -

गति गंगा मति सरसती सीता सील सभाई।
महिला सरहर मारूई, अवर न दूजी काई।

अर्थात जिसकी गंगा के समान गति (चाल) है, सरस्वती जैसी बुद्धि और सीता के समान शील (शीतल) स्वभाव है, ऐसी महिला श्रेष्ठ मारवणी के समान कोई दूसरा नहीं है।

(2) आध्यात्मिकता नैतिकता - जैन कवियों द्वारा रचित साहित्य में आध्यात्मिकता व नैतिकता के दर्शन होते है। जैन कवियों ने हमेशा सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श सामने रखा। इन कवियों ने प्रबन्ध और मुक्तक के माध्यम से नैतिक व आध्यात्मिक जीवन की सीख दी है। राजस्थानी काव्य के विकास में इन कवियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। हैमचन्द सूरि का 'शब्दानुशासन' और 'कुमार पाल चरित', सुप्रसिद्ध रचनाएं है। जैन कवियों ने तीर्थकरों की जीवनियाँ, सन्यास, धर्म, त्याग, अहिंसा आदि का वर्णन किया है। यह सही है कि जैन कवियों ने अपनी पोथियों और पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास किया था, इसलिए आदिकालीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास भाषा विकास की जानकारी इन ग्रन्थों में उपलब्ध है। आदिकालीन राजस्थानी भाषा विकास की जानकारी इन ग्रन्थों मे मिलती है।

ऐतिहासिकता: जैन कवियों ने सिर्फ नैतिकता आध्यात्मिकता का वर्णन ही नहीं किया वरन् ऐतिहासिक काव्य की रचना भी करी। हैमचन्द कृत, 'कुमारपाल चरित', सोम प्रेम सूरि कृत 'कुमारपाल प्रतिबोध', धर्मसूरि कृत 'जम्बू स्वामी रास', ईश्वर सूरि कृत 'ललितांग चाित', विजय सेन सूर का रेवतगिरि रास इत्यादि काव्य में इतिहास की घटनाओं का सही रूप में चित्रित किया गया है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है ''राज्यश्रय, धर्माश्रय और लोकाश्रय इन तीनों कारणों से साहित्य सुरक्षित रहता है।'' जैन कवियों के ग्रन्थ (पौथियाँ) भी धर्मश्रय के कारण नष्ट नहीं हो सके, और इसकी रचनाएँ प्रमाणिक रह सकी। चारण ग्रन्थ 'अचलदास खींची री वचनिका' में भी इतिहास की पूरी रक्षा मानी जाती है। यद्यपि यह वीररस प्रधान रचना है और गद्य पद्य मय शैली में लिखी अचलदास और मांडू के सुलतान हुशंग गौरी के युद्ध का वर्णन है। चारण शैली की इस ऐतिहासिक रचना का साहित्य में ऊँचा स्थान है।

13.5.2.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

(1) **भाषा:** आदिकालीन राजस्थानी साहित्य में काव्य रचना तीन भाषाओं में होती थी 1. अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी, 2. डिंगल भाषा और 3. पिंगल। जैन, कवियों सिद्व नाथ कवियों की रचनाओं में अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी भाषा का रूप देखने को मिलता है जिसके कई उदाहरण हमने पहले के बिन्दुओं में पढ़ लिए है'।

डिंगल प्राचीन राजस्थानी की शैली है। इसका प्रयोग अधिकतर चारण कवियों द्वारा किया गया। कहा जाता है कि डिंगल शब्द का प्रयोग कविराजा बांकीदास द्वारा किया गया तब से यह शब्द मारवाड़ी साहित्य के लिए काम में लिया जाने लगा। डिंगल पिंगल से भी प्राचीन भाषा है। डिंगल ओजपूर्ण काव्य की भाषा जिसमें युद्ध के सजीव वर्णन के साथ-साथ वीर और श्रृंगार का वर्णन भी विविध काव्य रूपों में हुआ है। पिंगल, मधुरस और प्रसाद गुण से युक्त भाषा है। पिंगल का एक अर्थ छंदशास्त्र भी है, राजस्थान में डिंगल और पिंगल दोनों में साहित्य रचा गया है।

(2) **काव्य रूप**: डिंगल के काव्य रूपों में रास, रासौ और वचनिका प्रमुख है। जैन कवियों ने रास के रूप में तो चारण कवियों ने रासौं रूप में प्रबन्ध काव्य लिखे और वचनिकाऐं भी लिखी है। पिंगल भाषा के प्रभाव से इस काल में कई छन्द सामने आए, दूहा (दोहा), वेल, नीसाणी, चौपाई, छप्पय वेल, कवित्त, सवैया, सोरठा, रोला आदि छन्दों का प्रयोग पृथ्वीराज रासौं और अन्य ग्रन्थों में हुआ। छन्दों के नाम से भी रचनाएं हुई जैस - 'राउलवेल', 'नीसाणी विवेक वारता' और 'ढोला मारू रा दोहा' इत्यादि। नीति सम्बन्धित दोहों की भी प्रचुरता थी जेसे - हंस गया, सारस गया, बुगला गया विलाय। सम्मन अब इण रूंख पर, कागा बैठा आय।।

(3) **शैली:** यह साहित्य तीन विभिन्न शैलियों में लिखा हुआ है - 1. जैन शैली, 2. चारण शैली और, 3. लौकिक शैली। गद्य-पद्य शैली (चम्पू काव्य) 'अचलदास री की वचनिका' नामक ग्रन्थ में विद्यमान है। कथात्मक शैली में कथानक रूढ़ियों जैसे शुक शुकी संवाद, हंस-कबूतर जैसे संदेश भिजवाना, आकाशवाणी बारहमासा आदि प्रयुक्त होती रही।

(4) **गेयता:** राजस्थानी साहित्य में गीतित्व भी विद्यमान है। रास काव्य रूप में इसकी प्रधानता है। पृथ्वीराज रासौं, 'बीसलदेव रास', 'ढोलामारू रा दोहा' आदि ग्रन्थ इसके उदाहरण है।

13.6 राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (सन् 1450 से 1850 तक)

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल सामान्यतः 1450 से 1850 तक माना जाता है। इस संदर्भ में भी विद्वानों में एक मत नहीं है। कई विद्वान इसका प्रारम्भ 1350 ई. से मानते है तो कई विद्वान महाराणा सांगा के खानवा युद्ध (1527 ई) में हार से मध्यकाल का प्रारम्भ मानते है। सामान्यतः मध्यकाल 14 वी सदी से 19 वीं सदी के मध्य तक माना जा सकता है। राजस्थानी भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टि से मध्यकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। इस काल में राजस्थानी भाषा का स्वरूप निखरा। शौरसेनी अपभ्रंश के मारू गुर्जर स्वरूप से राजस्थानी और गुजराती अलग-अलग भाषाएँ बनी। राजस्थानी साहित्य का यह काल भक्ति से सरोबोर रहा।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल को दो भागों में 1. भक्तिकाल (सं. 1375 से 1700 तक) और रीतिकाल (संवत् 1700 से 1900 तक) बाँटा गया है परन्तु राजस्थान का मध्यकाल (सं. 1450 से 1850 तक) दोनों कालों की विशेषतओं को साथ लेकर चला है। कथ्य और भाषा शैली की दृष्टि से इस साहित्य का योगदान उल्लेखनीय रहा।

13.6.1 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य का परिवेश

इस काल की साहित्यक प्रवृत्तियों और काव्य धाराओं की जानकारी से पूर्व इस की परिस्थितियों को समझना आवश्यक है, जो निम्नानुसार है -

(1) **राजनीतिक परिवेश**: कहा जाता है कि खानवा के युद्ध (वि.सं. 1584 ई.) में राणा सांगा की बाबर से हार ने राजस्थान का ही नहीं, भारत का इतिहास बदल दिया। डॉ. रघुवीर सिंह

आधुनिक राजस्थान नाकम ग्रन्थ में लिखते है कि राणा सांगा की हार से जनता की सोच बदल गई। हिन्दू जनता निराशा, भय और आत्म ग्लानि को दूर करने के लिए भक्ति की ओर मुड गई। भक्तों और संतो ने इस संकट बेला को टालने के लिए भक्ति साहित्य रचना शुरू किया।

राजस्थान में आदिकाल में गहलोत राजवंश का प्रभाव था परन्तु मध्यकाल में सिसोदिया राजवंश का प्रभाव बढ़ गया था। मुगल साम्राज्य की स्थापना, उसका विकास, अंग्रेजी शासन के बीच और राजपूतों से सम्बन्ध यह सभी मध्यकाल में नये युग व हलचल की ओर संकेत है। जोधपुर में रावजोधा और बीकानेर में राव बीका ने शासन शुरू किया था। अन्ततः राजस्थान की रियासतों को पहले मुगलों से और बाद में अंग्रेजो से संधि करनी पड़ी। वैभव विलासित और विभृत सामंतशाही के कारण यह सब हुआ।

(2) **सामाजिक परिवेश:** इस्लाम धर्म के पश्चात् सामाजिक स्थितियाँ भी बदली। जाति पाँति, छूआछूत, पर्दाप्रथा आदि कुप्रथाओं का जोर बढता गया, हताश ग्रस्त जनता को संतो के माध्यम से भगवत भक्ति व नैतिक मूल्यों का संदेश मिला। भक्ति धारा के प्रबल वेग के कारण इस काल में संत साहित्य और सगुण (राम कृष्ण) काव्य की रचनाएँ प्रकट हुई। मुगलशासन में स्थिरता के विकास के पश्चात वैभव विलासिता जोर पकड़ने लगी, आश्रयदाताओं की प्रशंसा हेतु लक्षण ग्रन्थ और शृंगारिक रचनाओं का सृजन होने लगा और रीति काव्य परम्परा के रूप में उपस्थित हुआ।

समाज ऊँचा व निम्न दो भागों में बँटा हुआ था। समाज में व्यापारी (वर्णिक) वर्ग का दबदबा था। व्यापारी जमींदार और ठाकुरों तक को कर्जा देता था तो दूसरी ओर निम्न वर्ग भूखमरी, बेरोजगारी, पेट भरने के लिए भटकता रहता था।

(3) **धार्मिक एवं सांस्कृति परिवेश**: धर्म, राजनीति और समाज के मेलजोल का असर संस्कृति पर होता है। राजस्थान की सभ्यता व संस्कृति की पहचान निराली ही हैं बड़े गढ, मोटी मोटी हवेलियां, मन्दिर स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला में विकास और परिवर्तन मध्यकाल में देखने को मिलता है। मध्यकाल में जब बदलाव की बीन बजनी शुरू हुई तब राजस्थान के समाज और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। हिन्दू धर्म पर होने वाले आक्रमणों से मनुष्य की आस्था लड़खडाने लगी थी राजपरिवारों में विभाजन होने लगा था, सभ्यता व संस्कृति पर मुस्लिम और विदेशी शैली का प्रभाव दीखने लगा था। शैव, वैष्णव और शाक्त धर्मो का प्रचलन वर्षो से चलता रहा है, परन्तु पाखण्ड और अनाचार भी साथ में बढते गए। इसी बीच मध्यकाल में भक्ति की दो धाराएँ शुरू हुई - निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। मुगलों के अधिकार से मुस्लिम धर्म का भी फैलाव हुआ।

राजस्थानी सहित्य का स्वर्णयुग भी मध्यकाल ही माना जाता है। इस काल के मध्य भक्ति साहित्य के सगुण भक्त उपासक राम-कृष्ण को अपना आराध्य, ईश्वर के नाना विध स्वरूपों का बखान करते है। इधर निर्गुण उपासक संत पथ के लिए लेखनी चला रहै थे, संतों, विद्वानों के कारण सद व्यवहार, सदाचरण, सील, संयम, आत्मसंतोष जनता के मध्य विद्यमान रहा। इस काल में राजस्थानी समाज में नया जागरण नारी के प्रति श्रद्धा और प्रेमभाव, सदाशयता, ब्रह्म की

सत्ता की व्यापकता के कारण भक्ति की शक्ति बढ़ गई। भक्ति की शक्ति से जनमानस में शान्ति, सुरक्षा और आनंद का अनुभव होने लगा था।

13.6.2 मध्यकाल के प्रतिनिधि कवि और रचनाएँ

इस काल में मीराबाई, राठौड पृथ्वीराज, ईसरदास, दुरसा भाढ़ा, बांकीदास, कृपाराम, छंद राव जैत सी जैस ख्यातनाम प्ररितिनिधि कवि हुए जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

(1) **मीराबाई:** मेड़ता प्रदेश के राव दूदा की पोती और रतन सिंह की बेटी मीरांबाई बचपन से ही कृष्ण भक्ति में लीन थी। उनका विवाह मेवाड़ के राणा सांगा के बेटे भोजराज से हुआ जो अल्पायु में ही मारा गया था। मीरा बाई में कृष्ण भक्ति, नारी वियोग और कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम सम्बन्धित कई पदों का सृजन किया। मीरा सगुण भक्ति के साथ-साथ निर्गुण भक्ति भावना से जुड़ी रही, परन्तु सगुण साकार ईश्वर की परम भक्त रही जैसे -

म्हारा तो गिरधर गोपाल दूसरा ना कोई
दूसरा ना कोई साधां सकल लोक जोई

मीरां कृष्ण प्रेम की दीवानी थी, मीरां काव्य में समाज की दूर्दशा और वेदनानुभूति और दर्द का सजीव चित्रण हुआ है -

हैरी म्हासूं हरि बिन रह्यो न जाय।
सास लड़ै ए मेरी नन्द खिजावै, राणा रह्या खिजाय।
पहरो भी राख्यों, चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यू छोड़ी जाय।।

मीरां के प्रभु गिरधर नागर, अवरू न आवै म्हारी दाय।

मीरां की भाषा के सम्बन्ध में डॉ. भूपतिराम साकारिया लिखते है कि ''मीरा के पद राजस्थानी में है। स्पष्ट बात तो यह है कि मीरा ने मातृभाषा के किसी दूसरी भाषा में पदों की रचना नहीं की। अपने भावों के महत्व के कारण राजस्थानी के कुछ कवि सम्पूर्ण भारत के हो गई जैसे कि मीरा बाई। वैसे मीरा बाई के पदो में हिन्दी, डिंगल, पिंगल, ब्रज, संस्कृत, सुधक्कड़ी आदि मिश्रित भाषाओं का प्रयोग हुआ है।''

(2) **राठौड़ पृथ्वीराज:** मध्यकालीन राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ कवियों में प्रमुख राठौड पृथ्वीराज की डिंगल शैली में लिखि काव्य कृति 'क्रिसन रूकमणी री वेली' अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। बीकानेर नरेश रावकल्याण के सुपुत्र राठौड पृथ्वीराज का जन्म राठौड राजवंश में सन् 1543 में हुआ था। इनके बड़े भाई महाराजा रायसिंह अकबर के प्रमुख सेनापति थे और दानवीरता के लिए प्रसिद्ध थे। स्वयं राठौड़ पृथ्वीराज अकबरी दरबार के नौ रत्नों में से एक थे। पृथ्वीराज बहुमुखी प्रतिभा के धनी वीर होने के साथ भक्त और प्रथम श्रेणी के कवि थे। उनके समकालीन कविवर नाभजी ने 'भक्तमाल' में उनका उल्लेख किया है जो इस प्रकार है -

''सवया गीत सलोक वेलि दोहा गुण नव रस
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायों हरिजान

रूकमणी लता वरणन अनुप वागीस वदन कल्याण-सुव
नर - देव उभै-भाषा निपुण, पृथ्वीराज कवि-राज हुव।'' (भक्तमाल)

राठौड पृथ्वीराज ने 'क्रिसन-रूकमणी री वेलि' के अतिरिक्त 'ठाकुरजी रा दूहा', 'गंगा जी दूहा', 'महाराणा प्रताप रा दूहा' 'विट्ठला रा दूहा', राधाकृष्ण का नख-शिख श्रृंगार वर्णन इत्यादि रचनाएँ लिखी परन्तु सर्वाधिक उनकी ख्याति क्रिसन-रूकमणी की वेलि से हुई। राजस्थानी इतिहास के प्रसिद्ध लेखक कर्नल टॉड और राजस्थानी भाषा और सहित्य के महापंडित डाक्टर तैसीतोरी जैसे विद्वानों ने भी इस रचना को डिंगल काव्य की सर्वश्रेष्ठ रचना बताया है और तैसीतोरी ने तो इसके रचना राजस्थानी साहित्य का सबसे जगमगाता रत्न कहा है। मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है ''काव्य-सौष्ठव, अलंकार चातुर्य, भाव गाम्भीर्य, भाषा लालित्य, अर्थ गौरव आदि सभी दृष्टि से 'क्रिसन-रूकमणी री वेलि ग्रन्थ अनूठा है। वेलि के कथानक में सरसता, उनकी कवित में कोमलता, उनके प्राकृतिक वर्णन में कल्पना की कमनीयता, उसकी भाषा में प्रांजलता एवं भावों में मौलिकता है।'' वेलि मूल रूप से प्रबंध काव्य है और क्रिसन-रूकमनी के ब्याह का वर्णन है। भागवत से कथासूत्र ग्रहण कर कवि ने रूकमणी का सौन्दर्य-चित्रण, रूकमणी-सन्देश, प्रकृति वर्णन और युद्ध वर्णन में अनूठा काव्य सौन्दर्य भरा है। वसंत रूपी बालक का सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पहचान, पूर्वावर संबंध निर्वाह और स्थानीयता ये तीनो वेलि के कथानक में विद्यमान है।

वसंत रूपी बालक का सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है -

विधि सेणी वधावे वसंत वधायउ
भालिम दिनि दिनि वढ़ भरण।
हुळरावणे फागि हुळराय
तरू गहवरिया थिय तरूण।

अर्थात इस विधि से बसंत रूपी बच्चों को बधावो (गीतों) से बधाया गया। इसकी सुन्दरता दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसको फाग रूपी लोरियों से दुलारा गया और फाग की ठण्डी-हावाएँ उसे लोरियाँ सुना-सुना कर दुलराती गई। फिर धीरे-धीरे वृक्ष हरे-भरे और सघन हो गए। ऐसा प्रतीत होता है कि बसंत रूपी बच्चा जवान हो गया है। इस वेलि में भक्ति, श्रृंगार और रस तीनो का सुन्दर (फूठारा) वर्णन है।

(3) **ईसरदास:** मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में वीर और भक्ति रस के प्रमुख कवि ईसरदास का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। वीर रस प्रधान इनकी प्रमुख कृति है - ''हालां-झालां री कुण्डलियां'' जिसमें ध्रागंधा नरेश झाला रायसिंह और, ध्रोत राज्य के हाला जसवंत सिंह के युद्ध का वर्णन है। भक्तिरस की रचनाओं में उनकी प्रमुख कृति है 'हरिरस घणी' जिनका पाठ आज भी गुजरात और राजस्थान में बहुत से व्यक्ति करते है। यह एक मुक्तम काव्य है।

(4) **दुरसा आढ़ा**: मध्यकाल के कवि दुरसा आढ़ा कवि के साथ एक योद्धा के रूप में भी प्रसिद्ध रहै। राजस्थानी की जनता को जागरण का संदेश दिया। दूरसा जी की रचनाओं में 'विरूद्ध

छिहतरी', 'राव सुरताण रा झूलणा', 'राव अमरसिंह रा झूलणा', 'दूहा सोलंकी' 'वीरमदे रा किरतार बावनी' आदि प्रमुख है। 'विरूद्ध छिहतरी' में महाराणा प्रताप का गुणगान है। उदाहरणार्थ-

''अकबर समंद अथाह, तिंह डूबा हिन्दूतुरक।
मेवाडी तिण माह, पोयण फूल प्रताप सी''।

अर्थात् अकबर के साम्राज्य रूपी समुद्र में हिन्दू तुर्क सब डूब गए लेकिन उसके भीतर मेवाड़ी महाराणा प्रताप फूल के समान तैर रहै है। यहाँ प्रताप की वीरता, स्वाभीमान और स्वातंत्र्य भाव का उल्लेख हुआ है।

(5) **छंद राउ जैतसी रो:** कवि बीडू सूजई रउ द्वारा रचित 'छंद राउ जैतसी रो' एक वीर रसात्मक काव्य रचना है। जिसमें बीकानेर नरेश राव जैतसी के धरती प्रेम, वीर भावना, धर्म की रक्षा, साथ में अध्यात्मक भक्ति का सौन्दर्य भी विद्यमान है। इस ऐतिहासिक काव्य को सर्वप्रथम तैसीतरी द्वारा ई संवत् 1629 की हस्तलिखित प्रति के आधार पर सम्पादित किया गया। भाषा शैली की दृष्टि से यह डिंगल की अद्भुत रचना है। अपभ्रंश के प्रभाव के साथ तत्सम, तद्भव, देशज और अरबी-फारसी के शब्द भी विद्यमान है। अलंकार व छंद की वयणसगाई का अनूठा प्रयोग कवि ने किया हैं। इस काव्य की खास घटना है - रावजैतसी को बाबर पुत्र कामरान के विरूद्ध जीत।

(6) **कृपाराम खिडिया:** कृपाराम खिडिया सीकर के राजा देवी सिंह के आश्रयदाता कवि थे। इनकी लोकप्रियता का मुख्य आधार रहा 'राजिया रा दूहा' कृति। राजिया इनमें चाकर और कोई पुत्र न होने के कारण अत्यन्त दुखी रहते थे। दुख कम करने के लिए कृपाराम राजिया को सम्बोधित करके दोहै करते थे जिसमें जीवन के आचार विचार, रीति नीति का स्पष्ट चित्रण होता था। आज कृपाराम को राजिया रा दूहा के कारण याद किया जाता है,

डदाहरणार्थ -

दाम न होय उदास, मतलब गुण गाहक मिनख
ओखद री कड़वास, रोगी गिणे न राजिया।

यहाँ स्वार्थी मनुष्य के लिए व्यंग्य करते हुए कवि कहते है कि मतलबी मुनष्य का कोई स्वाभिमान नहीं जिस तहर रोगी रोग को दूर करने के लिए दवा की कड़वास भी पचा जाता है उसी तरह मतलबी मनुष्य भी किसी बात का बुरा नहीं मानता है। सरल, सीधी डिंगल में लिखे ये दोहै व्यावहारिक जीवन की बात बताते हैं और आज भी प्रासंगिक है।

(7) **माधवदास दधवाडिया**: माधवदास दधवाड़ियाँ कृत 'रामरासौ' एक कालजयी महाकाव्य है। माधवदास का जन्म वि. सं. 1615 के आसपास माना जाता है। इनके पिता का नाम चूंडा दधवाडिया और माता का नाम चन्द्रावल वरसड़ा था। इनके पूर्वज देवल गौत्र के चारण थे, मारवाड़ के रूंण ठिकाने के राजकवि थे और उन्हें दंधवाड़ा नामक ग्राम जागीर में मिला था, इसी कारण ये देवल दधवाडिया कहलाए।

माधवदास दधवाडिया बहुमुखी प्रतिभा के धनी थी। काव्यशास्त्र, संगीत, व्याकरण, छंद अलंकार, इतिहास, ज्योतिष, तंत्रविद्या, भाषाओं के ज्ञाता थे। कृष्ण के अनन्य उपासक करमानन्द उनके आध्यात्मिक गुरू थे, जिनके मार्गदर्शन से इन्होंने वाल्मीकि रामायण, भागवत, महाभारत, पुराण आदि धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। साहित्य साधना के पथ पर अग्रसर होते हुए माधवदास ने जो रचनाएँ की उनमें राम रासौ एक उत्कृष्टतम कृति है। यह भक्ति और वीर रस से भरपूर है। इस साहित्यिक रचना के लिए जोधपुर के तात्कालीन महाराज सूरज सिंह ने संवत 1654 में सोजन परगने का नापावास ग्राम जागीर में प्रदान कर सम्मानित किया था। माधवदास की ईश्वर के प्रति निष्काम भक्ति भाव व अडिग आस्था रही।

राजस्थानी साहित्य में मनुष्य जन्म की सार्थकता स्वामिभक्ति, कष्ट-सहिष्णुता, उदारता, वीरता, धरतीप्रेम, जाक्षीय गौरव, वीरगति का मोह, धर्म में आस्था, कर्त्तव्य परायण, वचन बद्धता आदि आदर्शो के निर्वाह में निहित मानी गई है। इन सभी का उल्लेख 'रामरासौ' कृति में होता है, इसीलिए यह कालजयी रचना हो सकी है।

(8) **बांकीदास** (1781 - 1833 ई. तक): कवि बांकीदास ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत रचनाएँ लिखी। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम संस्कृति की एकता को बढ़ावा दिया और अंग्रेजी शासन से जूझने के लिए वाणी दी। इस दृष्टि से आधुनिकता का पहला स्वर बांकीदास के काव्य मे मिलता है -

''आयो इंगरेज मुलक रै, ऊपर आहंस लीधा खैचि उरां।
छागियां मरैन दीधी धरती, धणिया, ऊभां गई धरा।।''

बंकीदास की रचनाँ बांकीदास ग्रंन्थावली में संकलित है। ख्यात साहित्य में 'बाँकीदास री ख्यात' इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण गद्य रचना है।

13.6.3 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

13.6.3.1 विषयवस्तु (भावगत-प्रवृत्तियाँ):-

इस काल में भी विषय वस्तु की विविधता विद्यमान रही है यद्यति मध्यकाल भक्ति साहित्य से सराबोर रहा तथापि चारण साहित्य, जैन साहित्य, गद्य साहित्य, लोक साहित्य और लक्षण ग्रन्थों की भी रचना बराबर होती रही -

(1) **चारण (ऐतिहास) काव्य**: आदिकाल की तरह मध्यकाल में भी चारण काव्य की काफी रचनाएँ सामने आई। इन रचनाओं से तत्कालीन इतिहास, समाज और संस्कृति का चित्रण मिलता है। राजपूतो के शौर्य व वीरता का चित्रण डिंगल-पिंगल शैली मे विद्यमान है। पसाइन राव रिणम कृत 'गुण जोधायण', 'रावरणमल के दोहै', भांडउ व्यास कृत 'हम्मीरायण' सूजा जी बीलू कृत 'राव जैतसी रो छंद', बारठ आसोजी कृत 'भटियाणी उमादे रा व्यक्ति', ईसरदास कृत 'हालाझाला री कुण्डलियाँ', दुरसा आढा कृत 'किरतार बावणी' और 'विरूद्ध छिहतरी', जोधराज कृत 'हम्मीद रासौ' आदि उल्लेखनीय है।

(2) **भक्तिकाव्य:** इस काल में तत्कालीन देश में चारों ओर भक्ति आन्दोलन का प्रभाव दिखाई देता है। निर्गुण और सगुण भक्ति की भावना मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में सामने आई। राजस्थान में वीर रसात्मक काव्य के साथ पौराणिक, धार्मिक भक्ति काव्य रचनाओं की भी प्रचुरता हैं। इस काल में भक्ति काव्य की दो धाराएं विद्यमान रही।

(क) निर्गुण भक्तिकाव्य धारा (ख) सगुण भक्ति काव्य धारा

(क) निर्गुण भक्तिकाव्य: साहित्य में निर्गुण भक्ति काव्य धारा का प्रवर्तन राजस्थान संत कवियों ने किया। संतो ने अपनी वाणियों के माध्यम से जाति-पाँति, ऊँच नीच, छूआ छूत, पाखण्ड, बाह्य आडम्बर आदि का विरोध कर जन-समाज को शांति और भाईचारे का संदेश दिया। दादू की वाणी है -

''दादू देखा दयाल की, एकल रहा भरपूर।
रोम-रोम में बसि रइयो, तू जिनि जाने दूर।।''

संतो ने नामस्मरण, गुरू की महिमा, सत्संग की महिमा, नैतिक मूल्यों, अहंकार और मन के विकारों के त्याग, रहस्य भावना पर जोर दिया। कुछ उदाहरण इस प्रकमार है -

डदाहरण इस प्रकार है -

(1) 'आपो मेटै, हरि भजै, तन-मन तजै विकार
निखैरी सब जीव सूं, दादू यह मत सार।' (अहंकार का त्याग - संत दादूदयाल)

(2) लालजी साहिब सत गुरू एक है, यामें संसय नाहिं
सतगुरू बिन पावै नहीं, ज्ञान, ध्यान की राह।
(सतगुरू की महिमा, संत लालदास)

(3) हिन्दू तुरह है दोउन का, येकहि राम रहीम खुदाजी
(नाम-स्मरण व हिन्दू-मुस्लिम एकता - संत लालदास)

(4) जब जब दरसन राम दे, तब मांगो सतसंग
चाहो पदवी भगत की, चढ़े सुनवधा रंग (संतसंग की महिमा - संत चारणदास)

(5) काम, क्रोध, अभिमान, कुपह काटा मत लावौ।
अलख भजन उर घरौ, मरो मति मौत चुकावौ।
(नैतिकता पर जोर - संत हरिदास)

इसी तरह संत जाम्बोजी, सुंदरदास, पीपाजी आदि ने महत्वपूर्ण वाणियां देकर समाज सुधार ज्ञान मार्ग को बढ़ावा दिया।

उपर्युक्त उल्लेखित संतो का किसी न किसी सम्प्रदाय से जुड़े हैं। राजस्थानी संत साहित्य के विकास मे निम्न चार सम्प्रदायों का विशेष योगदान रहा।

(1) नाथ सम्प्रदाय: इसका खास प्रचार गोरखनाथ ने किया।

(2) रसिक सम्प्रदाय: इसकी गद्दी रैवास (सीकर) सं आग्रदास इसके संस्थापक थे।

(3) विश्नोई सम्प्रदाय: इसकी स्थापना संत जाम्भोजी ने नागौर में की थी

(4) जसनाथी सम्प्रदाय: संत जसनाथ ने इस सम्प्रदाय की स्थापना बीकानेर में की

राजस्थान के अन्य सम्प्रदायों में निरंजनी सम्प्रदाय (प्रवर्तक हरिदास), निम्बाके (परसुराम), दादूसम्प्रदाय (दादूदयाल), चरणदासी (प्रवर्तक चरणदास), लालदासी (प्रवर्तक लालदास) आई पंथ (जीजीबाई) इत्यादि प्रमुख हैं।

(ख) सगुण भक्तिकाव्य: हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की भाँति इस मध्यकालीन राजस्थानी सहित्य में भी राम भक्ति काव्यधारा और कृष्ण भक्ति काव्यधारा ये दो रूप सगुण भक्ति में विद्यमान रहै। जिनका संक्षिप्त परिचत इस प्रकार है -

(1) रामभक्ति काव्य धारा: आराध्य भगवान राम को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थों का सृजन हुआ। यह काव्य धारा सांख्य, दास्य, अनुगृह, पुष्टि, ज्ञान और प्रेम आदि भक्ति के सभी प्रकारों को साथ लेकर चली। राम मर्यादा पुरूषोत्तम रूप का बखान कर इस काव्य धारा ने शील, शक्ति और सौन्दर्य तीनों में समन्वय दिखाया। भारतीय संस्कृति के आदर्शो और मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास रामभक्त कवियों ने किया जो उस गुण की परम आवश्यक थी। यह काव्य धारा सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत, शैव-वैष्णव, ज्ञान-भक्ति, राजा-प्रजा में समन्वय स्थापित करने में सफल रही। राजस्थान के रामभक्त कवियों में मेहोजी, 'माधवदास', 'दधवाडिया', 'ईसरदास', 'अल्लूनाथ कविया', 'पृथ्वीराज राठौड' एकलिंगनाथ इत्यादि प्रमुख है जिन्होंने भगवान राम की महिमा का बखान किया। माधोदास दधवाडिया का सहित्य इतिहास में नाम राम रासौ नामक ग्रन्थ के कारण अमर हो गया। यह डिंगल भाषा शैली की सशक्त रचना है। उदाहरणतः

''सिध सरुहि एक साधि। वसै संचरै चरै वनि।
मरै न कोय अळ प्रिति। ताप दुख व्याधि न कायंतनि।।''

अर्थात राम राज्य मे सिंह और गाय क्रमश अहिंसक और अभय होकर वन में एक साथ चरते हुए विचरण करते हैं। प्रजाजनों में कोई अकाल मृत्यु का शिकार नहीं होता और न ही किसी को किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट होता है। जैन कवि ब्रह्म जिनदास और कुशललाभ ने भी भगवान राम पर पोथियों की रचना की है।

कृष्णभक्ति काव्य धारा: श्री राम के साथ कृष्ण भक्ति में भी कई ग्रन्थ रचे गए। भगवान का लोकरक्षक और लोकरंजन दोनों रूपों का वर्णन किया गया। वात्सल्य और सख्यभाव की भक्ति की प्रधानता रही है। पुष्टिभार्गीय भक्ति भावना के अनुसार ब्रह्म औरजीव की अभिन्नता प्रकट हुई है। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि है - ईसरदास, मीराबाई, सायां झूला, जग्गा खिडिया, पृथ्वीराज राठौड, अल्लूनाथ आदि। श्री कृष्ण की महिमा का चित्रण अल्लू नाथ ने इस प्रकार किया है।

गोवरधन ऊधरण, ग्राह भारण गज तारण।
जरासिंध सिसपाल भिडे, भू-भार उतारण।।

इसी तरह क्रिसन-रूकमणी री बेलि में रूकमणी कृष्ण के दर्शन से स्वयं को धन्य मानती है।-

वदना रविंद गोविंद वीखिभई
आळोचई आप-आप-सूँ
हिव रूकमणी क्रितारथ हुइस्यइ
हुवउ क्रितारथ पाहिल हूँ। (पृथ्वीराज राठौड़)

जैन काव्य: जैन कवियों के आख्यान काव्य, आध्यात्मिक पोथियों से भी मध्यकाल का साहित्य समृद्ध हुआ। इनमें कुशललाभ और दौलत विजय विशेष रूप से उल्लेखनीय कवि है। दौलतविजय कृत 'खुमाण रासौ', रासौ ग्रन्थों में अत्यन्त लोकप्रिय है। इसमें चित्तौड़ के बप्पा रावल से लेकर रतन सिंह तक के राजाओं का वर्णन है। खुमाण रासौ में पद्मावती की घटना के साथ-साथ राजस्थान के जन-जीवन तीज त्यौहारों का भी वर्णन है। उदाहरणार्थ

पिउ चित्तौड न आविउ, सावण पहली तीज।
जोवै बाट विरहिणी, खिण खिण अणवै खीज।

गद्य साहित्य: मध्यकाल में ख्यात साहित्य, वचनिका, वात् वंशावलियां, पट्टावली इत्यादि गद्य के विविध रूपों के दर्शन होते है। मध्यकाल में पृथ्वीराज चरित (कवि माणिक्य चंद सूरि) वचनिका राठौड रतिन सिंह महैश दासोत री (खिडिया जग्गा), माताजी वचनिका (जतीब्रह्मचन्द) मुंहता नैणसी री ख्यात (मुहणौत नेणसी) इत्यादि उल्लेखनीय विविध गद्य रूप है।

लक्षण ग्रन्थ: इस काल में छंद, अलंकार, डिंगलकोश आदि पर ग्रन्थो की रचना की गई। कुशललाभ कृत 'पिंगल शिरोमणी', राजस्थानी भाषा का पहला लक्षण ग्रन्थ माना गया। जिसमें छंद, अलंकार डिंगल गीत कोश (नाममाला), पहैली इत्यादि विषयों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त हमीरदान रतनू कृत 'हमीर नाम माला', पिंगल प्रकाश, मंछाराम कृत 'रघुनाथ रूपक', आढ़ा किसना कृत 'रघुवर जस प्रकास' और मुरारिदान कृत 'डिंगलकोश' इत्यादि कई रचनाएँ मिलती है।

13.6.3.2 भाषा - शिल्पगत प्रवृत्तियाँ:

विषयवस्तु (भावपक्ष) के साथ इस काल का राजस्थानी साहित्य काव्य कला और शिल्प की दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध रहा है। इस काल की भाषा-शिल्पगत विशेषताएँ निम्नलिखित है -

(1) काव्य भाषा: इन कवियों ने लोक प्रचलित डिंगल शैली में अधिकांशतः ग्रन्थों का प्रणयन किया था। इस समय तक डिंगल भाषा विकसित होकर एक पतिष्ठित व सुन्दर भाषा बन चुकी थी। इसमें मारवाड़ी रूप ने सर्वाधिक प्रभावित किया। इसके ढूढाणी हाडौती, मेवाडी आदि बोलियों में भी साहित्य रचना होने लगी थी।

(2) काव्य रूप: इस काल में प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य रूपों में काव्य सृजन हुआ। प्रबन्ध काव्यों में वेलि, आख्यान, रासौ, आदि रूपों में ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। वैलि साहित्य राजस्थानी की समृद्ध परम्परा है जो विषय की दृष्टि से तीन भागों में बँटी हुई है - 1. चारणी वेलि साहित्य, 2. जैन वेलि साहित्य, 3. लौकिक वेलि साहित्य। मध्यकाल में नायक-

नायिकाओं को लेकर वैलि, रासौ, वचनिका, प्रकास, विलास कवित्त, छंद इत्यदि काव्य रूपों की रचना हुई। जिनका नामोल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

(3) छंद अलंकार: राजस्थानी साहित्य में दूहों छन्द सर्वाधिक प्रिय रहा है। नीति, वीर, शृंगार, प्रकृति वर्णन और अन्य अभिव्यक्ति के वास्ते डिंगल कवियों ने दूहो छंद का रूचिपूर्वक प्रयोग किया है। अपभ्रंश साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य तक यह प्रिय छन्द रहा है। 'दूहै' के सम्बन्ध कविवर कन्हैयालाल सेठिया ने लिखा है -

देस नी मरूदेस सो, मृगमद जिसौ न गंध।
सुरसत रै भंडार में, दूहै जिसौ न छंद।

राजस्थानी साहित्य में दोहै छन्द के भी अनेक भेद है जिसमें एक 'सृद्ध दूहौ' हिन्दी के दोहै छन्द के समान ही है। इस छन्द में भी विषय चरणों में 13-13 मात्राएँ और सम चरणों में 11-11 मात्राएँ और अंत में गुरूलघु होता है।

उदाहरणार्थ -

इळा ने देणी आपणी, - 13 मात्राएं
हालरिया हुलराय। - 11 मात्राएं
पूत सिखावै पालणै - 13 मात्राएं
मरण बड़ाई मायेा।। - 11 मात्राएं

उपर्युक्त सुद्र दूहा छनद के उदाहरण में तुकांत में गुरूलघु (5 - 1) है। इसके अतिरिक्त बड़ो दूहों (प्रथम चतुर्थ चरण में 11-11 मात्राएं तथा द्वितीय-तृतीय चरण में 13-13 मात्राएं), और तुंवेरी दूहो (बड़ौ दूहों का उलटा रूप) भी दोहा छंद के अन्य भेद होते है।

दोहै के अतिरिक्त, सोरठा (सुद्ध दूहै का विपरीत) वेलियों और नीसाणी नामक डिंगल गीत छन्दों का भरपूर प्रयोग इस काल की रचनाओं में हुआ है।

अलंकार: इस काल में शब्दगत और अर्थगत दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग में हुआ हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। रूपक अलंकार का उदाहरण दृष्टव्य है।

''घूघर पाखर धमकती, सिंधुर काजळ सार।
विचित्र घड़ा आई वरण, धज लज घूघरा।''

अर्थात घड़ा (सेना) रूपी सुन्दरी, पाखर रूपी घूघरा धमकावती, सिंधुर (हाथियों), रूपी कालळ सारती और ध्वजा रूपी लज्जा का घूघट धारण कर वरण के लिए युद्ध भूमि में आ गई है। यह उदाहरण रूपक के साथ-साथ आधुनिक मानवीकरण अलंकार को भी प्रस्तुत करता है।

वैण सगाई (वयण सगाई): यह राजस्थान का मौलिक और महत्त्वपूर्ण अलंकार है जिसका प्रयोग डिंगल काव्य में अनिवार्य रूप से हुआ है। नाद सौन्दर्य और कर्णप्रियता इस अलंकार में विद्यमान होते हैं। यह शब्दालंकार हैं और इसमें पंक्ति के प्रथम शब्द का प्रारम्भ और अंतिम शब्द का प्रारम्भ एक एक ही वर्ण से होता है जैसे -

कमला-पति तणी कहैवा कीरती (क वर्ण)

आदर करे जु आदरी (आ वर्ण)

वयण सगाई शब्द 'वरण सगाई' (वर्णो के सम्बन्ध (मेल)) से बना है। छंद के किसी चरणों में पहला और अंतिम अक्षर का मेल दिखता है वहाँ वयण सगाई होता है।

रस: 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' के अनुसार रस काव्य की आत्मा है। मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में वीर, शृंगार और शांत रस की प्रचुरता दृष्टव्य है। जिनका उल्लेख विविध उदाहरणों द्वारा पूर्व में किया जा चुका है।

13.7 राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल (1850 से अद्यतन)

13.7.1 आधुनिक कालीन परिवेश

राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल 1850 से लेकर अद्यतन माना जाता है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन से राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, भावातमक एकता इत्यादि भावनाओं का ज्वर फूटा। देश के इतिहास ने नई करवट ली। साहित्य में भी बदलाव आया। आधुनिक काल के इस पूरे चरण को दो चरणों - (1) स्वतंत्रता पूर्व का राजस्थानी साहित्य तथा (2) स्वतंत्रता पश्चात का राजस्थानी साहित्य। में बाँटा गया है। मध्यकाल तक राजस्थानी साहित्य में युद्ध, शौर्य चित्रण और भक्ति उदगार उस समय मुख्य स्वर थे, परन्तु आधुनिक काल में परिस्थितियां बदली और साहित्य आजादी की लड़ाई से जुड गया अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव भी इस पर पड़ा। अंग्रेजो के शासन ने देश को आर्थिक रूप से पंगु बना दिया था। कुटीर उद्योग धन्धे नष्ट हो गए किसान - मजदूर बेकार हो गए थे। राजस्थान में तो सामंतो के अत्याचार से जनता अत्यधिक दुखी थी। बिजौलिया ओर बेगूं आन्दोलन से राजस्थान भी दुखी जनता का अनुमान लगाया जा सकता है। लगान व सूदखोरी की प्रथा से शोषित और शोषक वर्ग में गहरी खाई बनती जा रही थी। इस युग में द्विवेदी युग, छायावाद, मार्क्सवाद, प्रतीकवाद, राहस्यवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता अस्तित्ववाद, मनोविज्ञान चिन्तन, इत्यादि का असर राजस्थानी साहित्य पर दिखाई देता है। राजस्थानी काव्य और गद्य की सभी विधाएं नवीन परिवेश से प्रभावित हुई है।

गद्य-पद्य की नई विधाऐं विकसित हुई। राजस्थानी साहित्यकार परम्परागत स्वभाव एवं तेवर को छोडकर युद्ध विरोधी बन गए। अणु परमाणु यंत्रो से उपजी बेरोजगारी से त्रस्त जनता से नाता जोडा, स्वतंत्रता के पश्चात मोहभंग साहित्य भी प्रभावित हुआ। अब धर्म और अध्यात्म की जगह युग बोध और सामाजिक सरोकार से जुड़कर राजस्थानी साहित्य ने नई पहचान बनाई।

13.7.2 आधुनिक कालीन राजस्थानी काव्य

13.7.2.1 स्वतन्त्रता से पूर्व काव्य एवं प्रवृत्तियां

(1) **परम्परागत राजस्थानी काव्य -** 1850 से 1947 तक के काव्य को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इस संबंध में सूर्यमल्ल मिश्रण के काव्य से आधुनिक राजस्थानी कविता का

प्रारम्भ माना जाता है। ये जनकवि थे और 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में राजाओं की कायरता देखकर अत्यन्त दुखी हुए थे। वीर सतसई लिखकर उन्होंने जनता में राष्ट्रीयता ओर देशभक्ति के भाव उत्पन्न किए थे। वीरसतसई में वीर सपूतों और वीर माताओं का सटीक चित्रण किया गया है। उदाहरण -

इळा न देवी आपणी, रण खेतां भिड जाए
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय।
गोठ गया सेब गेह रा, वणी (दुश्मन) अचानक आय।
सिंधण जायी सिंधणी, लीधी तेग (तलवार) उठाय।

सूर्यमल्ल मिश्रण के अतिरिक्त अमरदान लालस, महाराजा चतुरसिंह, केसरीसिंह बारहठ, रामनाथ कविया आदि राष्ट्रीय धारा के कवि रहै है। दूसरी श्रेणी के कवियों में विजयसिंह पथिक, माणिक्यलाल वर्मा, जयनारायण व्यास आदि भी शामिल थे। व्यास जी ने लिखा , -

कह दो आ डंके री चोट मारवाड नहीं रहसी ठोटं

इसी तरह नाथूदान महियारिया ने वीर सतसई, गांधी शतक चंडी शतक आदि कृतियों के माध्यम से राष्ट्रीयता के नए विचारों को अभिव्यक्ति दी हैं वीर सतसई में राष्ट्रीय का प्रभावी चित्रण है -

''सूत मरिया हित देस में, हरख्यौ बंधु समाज।
मां नह हरखी जनम ने जितरी हरखी आज।''

13.7.2.2 स्वातन्त्र्योत्तर काव्य एवं प्रवृत्तियाँ

(1) **जागरण का स्वर:** (प्रगततिशील कविता) प्रारम्भ में गाँधीवादी चेतना विविध समाज सुधार आन्दोलन, समाजवादी चेतना के फलस्वरूप जागरण और चेतना परक काव्य लिखा गया। आजादी के पश्चात कवियों के सामने दोगुनी चुनौतियाँ थी। राज तो मिल गया पर सुराज नहीं प्राप्त हुआ था। आधुनिक काव्य पर साम्यवाद और समाजवाद का जबरदस्त प्रभाव पड़ा हैं। इनसे प्रभावित कविता में प्रगतिवादी स्वर विद्यमान रहा। इनमें किसानो, मजदूरों और गरीबो की पीड़ा और दुख को उजागर किया गया है। रेवतदान चारण नंदभारद्वाज, सुमनेश जोशी, आईदान सिंह भाटी, श्याम महर्षि, चन्द्रप्रकाश देवल और चेतन स्वामी आदि प्रमुख प्रगतिशील कवि रहै है। रेवत दान चारण 'मांग्या खेत मिळे नीं करसा' की वाणी से किसानों को चेताया तो जमना प्रसाद ठाडा 'जाग-जाग री बस्ती' कविता के माध्यम से जागरण का स्वर भरा।

(2) **वीर, भक्ति और नीति प्रधान काव्य:** यद्यपि आधुनिक काल की कविता में प्रगतिशीलता का स्वर गुंजारित हो रहा था तथापि वीर, भक्ति और नीति सम्बन्धित परम्परागत काव्य रचनाएँ भी लिखी जाती रही है। क्योंकि वर्तमान में संदर्भो में भी इनकी महत्ता है। आज के युग में कौरे उपदेश से काम नहीं हो सकता। जहाँ मनुष्य को सच्ची शिक्षा मिलती है वहां कविता प्रभावित करती है। रमणिया रा सोरठा (कन्हैयालाल सेठिया) में जीवन की सच्चाई इस तरह व्यक्त हुई है।

''अस्थिर है संसार, गरब न कीजै भूल कर
ले ज्योसी जण च्यार रथी बणकर रमणिया।।''

(3) **प्रकृति काव्य**:- प्रकृति मानव की चिरसह चारिणी रही है। प्रकृति अपने कोमल और कठोर दोनों रूपों से मानव को प्रभावित करती रही है। राजस्थानी काव्य में प्रकृति का सोवणा मोवणा चित्रण मिलता है। बादळी के लिए कवि चंद्रासिंह ने लिखा है -

आस लगायां मरूधरा, देख रही दिन रात।
भागी आ तूं बादळी आई रूत बरसात।।

श्री रेवतदान चारण की कविता बिरखा-बींनणी कविता घणी प्रसिद्ध है -

लूम-झूम मदमाती मन बिलमाती सौ बळखाती।
गीत प्रीत रा गातीए हंसती आवै बिरखा बींनणी।।

(4) **हास्य व्यंग्य प्रधान कविता**: आधुनिक राजस्थानी कविता में स्वतन्त्रता पश्चात की परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक परिवेश के प्रति असंतोष को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया गया है -

बध बध होगी घेर घुमेर, छाया फैली च्यारूँ मेर
आई ऊमर के औसाण, दूध्या नीमड़ी
खुद का जोबण सूं उणजांग दूध्या नीमड़ी।

गणेशीलाल व्यास उस्ताद की 'राज बदलग्यौ कहानै काई' और 'खाय गधेड़ा केसर क्यारी' जैसी रचनाएँ व्यंग्य के उदाहरण है। सामाजिक विषमताओं भ्रष्टाचार, काला बाजरी, अंध विश्वास और सामाजिक परिस्थितियों पर व्यंग्य किया गया है।

(5) **गीतिकाव्य**:- राजस्थानी के आधुनिकताल कविता के गीतात्मक स्वरूप का अच्छा विकास हुआ है। गीतकारों ने कविताओं को मंचो के माध्यम से देश विदेश में पहुंचाया । इन गीतों में कन्हैयालाल सेठिया का 'पातल और पीथळु' और 'धरती धोरा री' रचना अमूल्य निधि है और आज तक पाठक और श्रोताओं की जुबान पर है।

अरे घास री रोटी नू, जद बन बिलावड़ा ले भाग्यो।
नान्हो सो अमर्यो चीख पड्यों, राणा रो सोयो दुख जाग्यों।
हूं लड्यों घणो, हूं सह्यो घणो, मेवाडी आण बचावणनै।
पण पाछ नही राखी रण में, बैरया रो खूण बहावणनै।
जद याद करूँ, हळदीघाटी नैणा सूं रगत उतर आवै।
सुख दुख रो साथी चेतकडो, सोती सी हूंक जगा जावै। (पातल और पीथळ)

इसी तरह मेघराज मुकुल की 'सैनाणी' इसी तरह की प्रसिद्ध रचना है। गीतकाव्य के दो रूप (1) भावनापरक निजीगीत और (2) समाजचेतना परक सांस्कृतिक गीत में से दूसरा रूप ज्यादा प्रचलित रहा है। इन गीतों की भाषा, लय, ध्वन्यातमकता, भावात्मकता और अनुभूति की तीव्रता बेजोड़ है। इन गीतकारों में सत्यप्रकाश जोशी, रघुनाथ सिंह हाडा, शान्ति भारद्वाज, भीमपांडिया प्रेम जी प्रेम, हरीश भादानी जैसे प्रसिद्ध नाम है। इसी क्रम में नवगीतकारों में, दुर्गादान सिंह गोड़, मुकुट गणिराज, आईदान सिंह भाटी, वीरेन्द्र लखावत, राजेन्द्र सोलंकी आदि नाम उल्लेखनीय है।

(6) **नयी कविता और समकालीन कविता:** स्वतंत्रता के पश्चात् धीरे-धीरे साहित्यकार नये जीवन दर्शन परिवेश, समाज में सरोकारों से जुडे। विज्ञान और तकनीकी के प्रभावस्वरूप उपस्थित परिवर्तन को खुली आँखों से देखा और स्वीकार किया। नयी कविता नए जीवन की धडकन है। आज की कविता सभी व्यवस्थाओं से मोहभंग की कविता है। नयी कविता बिखरते जीवन मूल्या संत्रास, अजनबीपन, मानव की घुटन, पीडा, हताशा, अकेलापन को व्यक्त करती है। मोहन आलोक, श्याम महर्षि, नंदभारद्वाज गणपति चन्द्र भण्डारी, डॉ. शक्तिदान कविया, सांवर दइया, डॉ. अर्जुन देव चारण मालचंद तिवाड़ी, अम्बिका देव आदि की गणना नऐ कवियों में की जाती है। इसके अतिरिक्त कन्हैयालाल सेठिया की 'लीलटांस' नारायण सिंह भाटी 'मिनख रो समझावणौ दौरा है, भगवतीलाल व्यास 'सबदराग', हरीश भादाणी 'बाथां में भूगोल' श्याम महर्षि 'अड़वौ', अर्जुनदेव चारण 'रिंधरोही' आईदान भाटी 'हसतोड़ा होठा रो साच', नन्दभारद्वाज 'अधार पंख', 'बोल डूंगरी ढब ढबूक', अतुल कनक 'आवां बातां करा' मीठेश नि मोंही आपै रे आळै दौळै आदि नई कविता के प्रसिद्ध कवि और उनकी रचनाएँ है जिन्होने आधुनिक राजस्थानी काव्य धारा को समृद्ध किया है।

(7) **आधुनिक राजस्थान काव्य की भाषा शैली** - राजस्थानी काव्य का शब्द भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। आधुनिक राजस्थानी काव्य की भाषा में अपने क्षेत्र के अनुसार मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूढाडी, हाडौती बोली के रूप देखने को मिलते है। राजस्थानी भाषा का शब्द भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। राजस्थानी भाषा में विविध बोलियों के अनुसार शब्दों का चयन हुआ है। भाषा सरस सरल व प्रवाहमयी है। संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी जैसी भाषाओं में शब्द भी राजस्थानी काव्य में आये है। आधुनिक राजस्थानी भाषा काव्यशास्त्र के बंधनो से दूर है। भाषा में बिम्बात्मकता व प्रतीकात्मकता विद्यमान है। कविता के साथ गीत और गजलों में भाषा की प्रवाध्यमता, सरसता आधुनिक और ध्यनयातमकता विद्यमान है राजस्थानी भाषा नए भाव बोध को प्रभावी रूप से व्यक्त करने में सक्षम है।

13.7.3 गद्य की विविध विधाएँ: परिचय

(1) **उपन्यास:** कथा साहित्य में गद्य लेखन का सबसे बड़ा स्वरूप उपन्यास है। जिस प्रकार पद्य में महाकाव्य का स्थान है उसी प्रकार गद्य में उपन्यास का है राजस्थानी उपन्यासों में राजस्थान की संस्कृति, समसामयिक परिवेश व मूल्यों का वर्णन मिलता है। साथ ही आंचालिकता के माध्यम से माटी की गंध का मनोहारी चित्रण है। उपन्यास लेखन में सर्वप्रथम नाम आता है श्रीलाल नथमल जोशी। 1956 में प्रकाशित इसका उपन्यास 'आभैपटकी' ने नए युग की शुरूआत की। इसके पश्चात 1966 ई. प्रकाशित अन्नाराम सुदामा कृत 'मैकती काया मुळकती धरती', 'अचूक इलाज' 'मैवे रा रूख' यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र कृत हूं गौरी किण पीव की', विजयदान देथा कृत 'आठा राजकुंवर' 'मा रौ बदळौ', 'तीडौराव', करणीदान बारहठ 'मंत्री की बेटी' बडी बहनजी आदि उल्लेखनीय कृतियाँ है। राजस्थानी उपन्यासों में विषय-वस्तु की विविधता रही है। ऐतिहासिक मनौवैज्ञानि आंचलिक, आदर्शवादी यथार्थवादी, सामाजिक सभी

प्रकार के उपन्यासों का सृजन हुआ है। 'मैकती काया मुलकती धरती' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में, तो तीडौराव में प्रतीक शैली है।

(2) **कहानी:-** राजस्थान के जनजीवन में प्रकृति नए भावबोध के अनुसार नई कहानियाँ नए शिल्प में लिखी गई है। राजस्थानी कहानीकारों में मणिकधुकर (पगफेरो), चेतन स्वामी (धांय, गूंगली, पुण्याई और पान लागग्यो), डॉ. पुरूषोत्तम छांगाणी (बिचालै कहानी संग्रह), मीठेस निरमोही (बानगी), भरल ओला (जीवन री जात कहानी संग्रह), महिला कथाकार डॉ. जबा रसीद (नांव विहूणा किसता, कहानी संग्रह), डॉ. चांद कौर जोशी (सांचो सुपनौ), पुष्पलता कश्यप (मैला हाथ-उजला हाथ) आदि कहानीकार अपनीकृतियों में आधुनिक काल की संवेदना और शिल्प को बखूबी व्यक्त किया है।

(3) **निबन्ध:** आधुनिककाल में निबन्धकारों ने समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए रचना की। विविध भाव, विचार, व्यंग्य, विनोद से जुड़े भाव आदि लेखन में आधार रहै है। रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, डॉ. मनोहर शर्मा, रावत सारस्वत, सुमेरसिंह शेखावत, डॉ. किरण नाहटा, अमोलकचंद जांगिड, डॉ. कल्पना सिंह शेखावत आदि उल्लेखनीय है। आधुनिक काल में प्रमुख निबन्ध संग्रह है रोहिडै रा फूल (डॉ. मनोहर शर्मा), सुसर तो कथता भला (सूर्यशंकर पारीक), राजस्थानी संस्कृति रा चितराम (जहूर खां मेहर), भळ लूवां बाजो कती (डॉ. किरण नाहटा), माटी सूं मजाक (बी.एल. माली अशांत) मणिमाला (डॉ. कल्याणसिंह शेखावत) आदि।

(4) **नाटक** - एकांकी: आधुनिक गद्य विधाओं की तरह नाटक और एकांकी (सेकाकी) के क्षेत्र में कई कृतियां सामने आई। आधुनिक यग में सिनेमा के प्रचार-प्रसार के कारण नाटक लेखन की ओर रूझान कम होने लगा था। साहित्यिक नाटकों में डॉ. आज्ञाचन्द भण्डारी कृत पंन्नाधाय गोवन्दिलाल माथुर कृत 'दहैज', यादवेन्द्र शर्मा कृत 'तास रौ घर' निर्मोही व्यास कृत 'ओळमों' भीखो ढोली 'सांवतो' आदि। इस काल में गीत नाट्य भी प्रचलित रहा।

इस काल में नाटको की अपेक्षा एकांकी विधा का विस्तार हुआ। 1966 में राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा सम्पादित एकांकियों के संकलन में इन लेखको के एकांकी लिए गए थे। पारीक जी का 'बौळापण' लक्ष्मीकुमार चूण्डावत का 'सामधरमीमाजी', डॉ शक्तिदान कवियो का वीरमती डॉ आज्ञाचन्द भण्डारी का देस भगत भामासा, दामोदर प्रसाद जी का 'कामरान की आंखड़ल्या' बेजनाथ पॅवार का 'आपणो खास आदमी', अम्बालाल जोशी का मिनखपणौ और यादवेन्द्र चन्द जी का 'देवता' इत्यादि का सम्मिलित है। श्री गणपति लाल डांगी और श्रीमंत व्यास भी अच्छे एकांकीकार रहै है।

(5) **रेखाचित्र:** किसी मनुष्य, वस्तु, घटना या भावना का कम से कम शब्दों में जीवन्त चित्र अंकन करना रेखाचित्र कहलाता है। राजस्थानी साहित्य में यह गद्य विधा हिन्दी साहित्य से आई है। मुरलीधर व्यास ओर मोहन लाल पुरोहित ने 'जूनां जीवता चितराम' शीर्षक से रेखाचित्र लिखा। इसके अतिरिक्त श्री नथमल जोशी कृत 'सबड़का', भंवर लाल नाहटा कृत बानगी, शिवराज छंगाणी कृत 'उणियारा' ब्रजनारायण पुरोहित कृत अटाखां और प्रो. नेमनारायण जोशी कृत कूदण बाबो आदि रेखाचित्र विधा से सम्बन्धित रचनाऐं है।

(6) **जीवनी:** राजस्थानी में जीवनी साहित्य आजादी के बाद लिखा गया और तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं जैसे 'मसवाणी' 'आळमो' और 'हरावल' आदि में प्रकाशित भी हुआ। श्री लाल नथमल जोशी की गाँधी जी की जीवनी आपणा बापू जी डॉ. किरण नाहटा की 'शिवचन्द भरतिया' दीनदयाल ओझा की 'देस रा गौरव' भारत रा निर्माता आदि उल्लेखनीय रचनाएं है।

इसके अतिरिक्त इस काल में संस्मरण, यात्रा साहित्य और रिपोर्ताज इत्यादि अन्य गद्य विधाओं का भी विकसित रूप देखने को मिलता है।

13.8 सारांश:

प्रस्तुत इकाई में राजस्थानी साहित्य के इतिहास के विविध कालों और प्रत्येक काल की पृष्ठभूमि साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, रचनाकारों ओर रचनाओं की जानकारी आपने प्रापत की है। शौरसेनी अपभ्रंश के नागर (गुर्जर) रूप से राजस्थानी भाषा का विकास हुआ। भारतीय संविधान में उल्लेखित भाषाओं में राजस्थानी भी सर्वप्रमुख भाषा है जो मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाणी, हाडौती, मेवाती, मालवी बागड़ी आदि प्रमुख बोलियों के साथ पूरे प्रदेश (राजस्थान) में बोली और लिखी जाती है। इन प्रमुख बोलियों में राजस्थानी साहित्य का सृजन हुआ है। डिंगल और पिंगल राजस्थान की एक विशेष काव्य शैली है। जिसका रूप आदिकाल और मध्यकाल में वीर, भक्ति और शृंगार प्रधान काव्यों में मिलता है। राजस्थान के आदिकाल व मध्यकाल में डिंगल बोलचाल की राजस्थानी से अलग एक साहित्यिक भाषा थी। राजस्थानी साहित्य का आदिकाल जैनकवियों से शुरू होकर लोकजीवन से जुडकर चारण कवियों के हाथों में सजधज कर आगे बढ़ा ओर मध्यकाल में और पुष्पित पल्लवित हुआ। 15 वीं सदी से 19 वीं सदी का राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल विषय वस्तु ओर शिल्प (काव्य-कला) दोनों दृष्टि से उपलब्धिपूर्ण रहा है। क्रिसन-रूकमणी री वैली, राम रासौ, हाला झाला री कुण्डलियां, मीरां के पद, राजिया रा दूहा दादू-वाणी (अनमैवाणी ओर काया वेलि) जैसी रचनाओं से इस काल का साहित्य परिपूर्ण है। काव्य भाषा काव्य रूपों (रास, रासौ, वेलि, वचनिका, विलाज, ख्यात) और छंद अलंकारों (वयण सगाइ इत्यादि) लक्षण ग्रन्थों की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट रचनाओं का सृजन किया गया। राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल (1850 से अद्यतन) में राजस्थानी गद्य और गय की विविध विधाओं के क्षेत्र में देशकाल व परिस्थितियों के अनुसार उत्तरोत्तर विकास व परिवर्तन देखने को मिलता है। इस काल को स्वतन्त्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात दो कालों में विभाजित किया है। कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से इस काल में परम्परागत और आधुनिक भावबोध का निर्वाह किया गया है। जहाँ परम्परागत वीर, भक्ति ओर नीति प्रधान काव्य है, तो प्रगतिशील स्वर नई कविता, समकालीनता, हास्य व्यंग्य गीत-गजल आदि विविध स्वर आधुनिक कविता में दृष्ख्य है। राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल गद्य और पद्य दोनों रूपों की विविध विधाओं में जीवन के सभी पक्षों और समसामयिक समाज के सरोकारों के साथ आगे बढ़ रहा है।

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो. (डॉ.) कल्याण सिंह शेखावत: राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1989
2. बी.एल. माली 'अशांत': राजस्थानी साहित्य का इतिहास रचना प्रकाशन, जयपुर 2004
3. डॉ. किरण नहटा: आधुनिक राजस्थानी साहित्य: प्रेरणा स्त्रोत और प्रवृत्तियाँ, चिन्मय प्रकाशन, बीकानेर।
4. डॉ. मोतीलाल मेनारिया: राजस्थानी भाषा और साहित्य।
5. डॉ. हीरालाल माहैश्वरी: राजस्थानी भाषा और साहित्य, जयपुर।
6. डॉ. शक्तिदान कविया: डिंगल के ऐतिहासिक प्रबंध काव्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर सन् 2007
7. डॉ. जगमोहन सिंह परिहार: राजस्थानी भाषा साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, जोधपुर सन् 1987।
8. माधवदास दधवाड़िया: राम रासौ, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 2005।
9. नरोत्तमदास स्वामी: क्रिसन-रूकमणी री वेली, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर सं. 2009।
10. प्रो. कल्याण सिंह शेखावत: राजस्थानी भाषा और साहित्य, त्रिवेणी प्रकाशन, जयपुर।
11. प्रो. सोहनदान चारण: ईसरदास ग्रन्थावली, साहित्य अकादमी, जयपुर।

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी साहित्य के इतिहास पर एक लेख लिखिए।
2. राजस्थानी साहित्येतिहास का कालविभाजन कीजिए तथा आदिकालीन राजस्थानी साहित्यिक परिवेश पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी लिखिए -

(1) आधुनिक राजस्थानी गद्य में उपन्यास लेखन
(2) आधुनिक राजस्थानी कविता में प्रगतिशीलता
(3) माधवदास दधवाड़िया
(4) स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी काव्य